

अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

ग्रहवर्षफल.

सर्वत्र भूर्विरेलसस्ययुता वनानि देवादिनक्षत्रिपुदंष्ट्रिसमावृतानि । स्वन्दिने
 नैव च पयः प्रचुरं स्रवन्त्यो रुग्णेष्वनानि न तथातिवलान्वितानि ॥ १ ॥ तीक्ष्णं
 तपस्यदितिजः शिशिरेऽपि काले नात्यम्बुदा जलमुचोऽचलसन्निकाराः । नक्ष-
 भर्क्षगणशीतिकरं नभश्च सीदन्ति तासकुलानि सगोकुलानि ॥ २ ॥ हस्त्यम-
 त्तिमदसह्यश्लेरुपेता बाणासनासिमुशलातिशयाश्चरन्ति । घ्नन्तो नृपा युधि
 नृपालुचैश्च देशान् संवत्सरे दिनकरस्य दिनेऽथ मासे ॥ ३ ॥ ध्यातं नक्ष-
 प्रचलिताचलसन्निकाशैर्ग्यालाजनालिगवलच्छविभिः पयोदेः । गां पुरयन्ति
 खिलाममलाभिरद्भिर्लृक्कण्ठकेन गुरुणा ध्वनितेन चाशाः ॥ ४ ॥ तोयानि प-
 कुमुदोत्पलवन्त्यतीव फुल्लद्रुमाण्युपवनान्पलिनादितानि । गावः प्रभूतस्यतो
 नयनाभिरामा रामा रतैरविरतं रमयन्ति रामान् ॥ ५ ॥ गोधूमशालिपवधान-

यदि सूर्य वर्षका स्वामी, मासका स्वामी, दिनका स्वामी हो तौ तब जगह पृथ्वीप-
 धान्य थोडा हो, वनमें जगह २ वृक्षोंमें कीड़े लग जाय, नदियोंमें बहुतसा जड़
 न रहे, मारे पीडाके औषधियोंमें अत्यन्त बल न रहे, शीतकालमेंभी सूर्य तीव्र
 धूप करे, पर्वतके समान मेघगण अधिक जल नहीं वर्षावें, आकाशमें चंद्रमा और
 तारोंकी दीप्ति जाति रहे, गाय और तपस्वी कुलको शोक हो, हाथी, घोड़े, पक्ष-
 तिकरूप सहनीय बलयुक्त राजा लोग बहुतसे बाण, धनु, असि और मुसल लेकर
 अपने अनुचरोंको साथ ले युद्ध करके समस्त देशोंको ध्वंस करते हुए घूमें ॥ १ ॥
 ॥ २ ॥ ३ ॥ जो चंद्रमा वर्षका मालिक हो तौ चलायमान पर्वतकी समान काले
 सर्प अञ्जन, भ्रमर और माहिपीकी नाई काली श्वातिवाले मेघवृन्द आकाशको व्याप्त
 करते हैं, उत्कण्ठासूचक मारी शब्द करके समस्त दिशाओंको पूर्ण करते हुए
 अमल जलसे पृथ्वीको पूर्ण करते हैं; सरोवरोंमें, कमल बबूले और उत्पल फूल
 जाते हैं; उपवन (बाग) प्रफुल्ल वृक्षयुक्त और भ्रमरोंके शब्दसे शब्दायमान होते
 हैं; गाय दूध बहुतसा देती हैं; नेत्रोंको आनंद देनेवाली स्त्रियां आसक्तिसे अतिरक्त
 पुरुषोंको रमण कराती हैं; ईश्वर, शङ्ख, जौ, धान्य श्रेष्ठ और युक्त समूह समृद्धि-
 सक्त चैत्य अर्थात् छोटे २ देवमंदिरोंसे अंकित और यज्ञ व होमके पवित्र शब्दोंसे

बरेक्षुषाटा भूः पाल्यते नृपतिभिर्नगराकराद्या । चित्पाङ्किता कतुवरेष्टिविधुष्ट-
नादा संवत्सरे शिशिरगोराभिसम्भवृत्ते ॥ ६ ॥ वातोद्धतश्चरति वह्निरतिप्रचण्डो
ग्रामान् वनानि नगराणि च सन्दिपयति । हाहेति दस्युगणपातहता रटन्ति निःस्वी-
कृता विपशवो भुवि मर्त्यसङ्घाः ॥ ७ ॥ अभ्युन्नता वियति संहतमूर्तयोऽपि
मुञ्चन्ति न कचिदपः प्रचुरं पपोदाः । सीम्नि प्रजा तमपि शोपमुपैति सस्मं
निष्पन्नपप्यविनयादपरे हरन्ति ॥ ८ ॥ भूषा न सम्यगाभिपालनसक्तचित्ताः
पित्तोत्पल्लवनचुरता भुजगप्रकोपः । एवंविधैरुपहता भवति प्रजेयं संवत्सरेऽवनि-
सुतस्य विपन्नसस्या ॥ ९ ॥ मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणां गान्धर्वलेख्यग-
णिताद्याविशं च वृद्धिः । पिपीपया नृपतयोऽद्भुतदर्शनानि दिक्कान्ति तुष्टिजननानि
परस्परेभ्यः ॥ १० ॥ वार्ता जगत्पवितयाविकला प्रयी च सम्यक् चरत्यपि
मनोरिव दण्डनीतिः । अप्यक्षरं स्वभिनिविष्टपियोऽत्र केचिदान्वीक्षिकीषु
च परं पदमीहमानाः ॥ ११ ॥ हास्यज्ञदूतकविपालनपुंसकानां युक्तिज्ञसेतु-

शब्दापमान होकर पृथ्वी राजाओंसे पाली जाती है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ मंगल
वर्षका स्वामी हो तो वायुसे उठी हुई अतिमचंड अग्नि ग्राम, वन और नगरोंको
जलानेकी इच्छा करती है; पृथ्वीके मनुष्य चारोंसे मार डाले जाकर सहायहीन
और पशुहीन होकर हाहाकार करते हुए विचारण करते हैं; मेघकुल शून्यमें कम
जंघा और संदूत पूर्ति होकरभी कहीं बहुतसा जल नहीं वर्षाते; पका हुआ धान्य
लगभग खरबही जाना है और किसी प्रकारसे निवटकरभी आविनयके हेतुसे दूसरे
आदमी उसको हण कर लेते हैं. मंगलके संवत्सरमें राजालोग मलोंमांतिसे
प्रजाको नहीं पालने, पिच्छसे उत्पन्न हुए रोगोंकी अधिकता होती है. सपोंका कोप
होता है. इस प्रकार प्रजाके लोग बिना नाजके दीन हीन और मृतकवत् हो जाते
हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ बुध वर्षका स्वामी हो तो माया, इन्द्रजाल और भानमती
करनेवाले मनुष्य और गंधर्व, लेख्य, गणित व अस्त्र जाननेवालोंकी वृद्धि होती है;
राजालोग भौतिकी कामनासे अद्भुतदर्शन और वृष्टिकर द्रव्य, परस्पर एक दूसरेको
दान करनेकी इच्छा करते हैं; जगत्में वार्ता और प्रयी शास्त्र अविकल और सत्य
रहता है; मनुकी समान दंडनीति मली भांतिसे विराजमान रहती है; कोई शास्त्र-
ज्ञानमें अपनी बुद्धिको लगाता है, कोई २ आन्वीक्षिकी शास्त्रसे परम पदके पानेकी
चेष्टा करता है; बुधग्रह अपने वर्षमें अथवा मातमें इस प्रकारसे पृथिवीकी हास्यज्ञ-

जलपर्वतवासिनां च । हार्दिं करोति मृगलाञ्छनजः स्वकेऽन्द्रे मासेऽथ वा यत्र-
 रतां भुवि चौपधीनाम् ॥ १२ ॥ ध्वनिरुच्चरितोऽध्वरे द्युगामी विपुले यत्रमु-
 मनांसि भिन्दन् । विचरत्यनिशं दिजेत्तमानां हृदयानन्दकरोऽध्वरंशसाजम्
 ॥ १३ ॥ क्षितिरुत्तमसस्यवत्यनेकाद्विपपत्यश्वधनोरुगोकुलाढ्या । क्षितिपैरिजि-
 लनप्रवृद्धा द्युचरस्पर्द्धिजना तदा विजाति ॥ १४ ॥ विविधैर्वियदुन्नतैः पर्यो-
 तमुर्वीपयसाभितर्पयाद्भिः । सुरराजगुरोः शुभेऽत्र वर्षे बहुसस्या क्षितिरुच-
 र्द्धियुक्ता ॥ १५ ॥ शालीश्रुमत्यपि धरा धरणीधराभधाराधरोज्ज्वलपयसा-
 पूर्णवशा । श्रीमत्सरोरुहतताम्बुतडागकीर्णा योपेव भात्यभिनवाभरणोन्न-
 लाङ्गी ॥ १६ ॥ क्षत्रं क्षितौ क्षपितृरिधलारिपक्षमुद्धटनैकजयशब्दविराजि-
 तम् । संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गा गां पालयन्त्यवनिषा नगराकराढ्याम् ॥ १७ ॥
 पेपीयते मधु मयौ सह कामिनीभिर्जगीयते श्रवणहारि सवेणुवीणम् । बोधुन्

दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्तिके जाननेवाले, सेतु, जल और पर्वतवासियों
 वृत्ति करता है और पृथ्वीपर औपधियां बहुतायतसे होती हैं ॥ १० ॥ ११
 ॥ १२ ॥ पृथ्वीपति वर्षका स्वामी हो तो यत्रमें उच्चारण की हुई विपुल आका-
 गामी वेदध्वनि, यत्रध्वंस करनेवालोंके मनको विदीर्ण कर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके
 यत्रांश मागियोंके हृदयको आनन्द कराकर भ्रमण करती हैं; उत्तम सस्यवती
 अनेक इस्ती, घोड़े, चतुरंगसेना, महाधन, गोकुल और धनयुक्त पृथ्वी राजा
 पाली जाकर और वारित होकर मानो स्वर्गवासियोंकी समान स्पर्द्धा करनेवाले
 माय विराजमान होनी है; आगमानी पानीसे वृत्तिकारक विविध रंगके वा-
 पृथ्वीसे दृढ़ छेदे हैं। इन देवनाथके गुरु पृथ्वीपतिजीके शुभवर्षमें इस प्रकार
 पृथ्वी बहुतसे धान्यपायी और ऋद्धियुक्त होती है ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६
 वर्षका स्वामी हो तो परमाकार बादलों करके छोड़े हुए जलसे परिपूर्ण हुई
 सुन्दर कमलोंमें तिनका जल टका हुआ है ऐसे तडागोंसे आकीर्ण होकर नये
 गहनोंमें नत्ती हुई उज्ज्वल अंगपायी नारीकी समान शोभा पाती है, और नये
 ईश पैदा करती है; मधुओंको क्षय करनेवाले और पोषण करते हुए जयश-
 दिताओंको शब्दायमान करने हुए गजालोग शिष्ट जनोंको संतोष और इ-
 न्नाम करके नगर व स्थानके मदिन ऋद्धिशांती पृथ्वीका पालन करने हैं, व-
 ऋद्धि मधुप्रागम कामिनीयोंके माय वारिकार मधुपान करके वेणुवीणाके साथ
 वर-मधुप्रागम वर गान किया करने हैं और अनिये युद्ध व भार व

तेऽतिथिसुहृत्स्वजनैः सहाजमन्दे सितस्य मदनस्य जयावधोषः ॥ १८ ॥
 उद्धृतदस्युगणभूरिरणाकुलानि राष्ट्राण्यनेकशुबितविनाशतानि । रोह्यमाणह-
 तबन्धुजनैर्जनेभ्य रोगोत्तमाकुलकुलानि बुभुक्षया च ॥ १९ ॥ यतोद्धताम्बुधर-
 वर्जितमन्तरिक्षमारुग्णैकवित्पं च धरातलं द्यौः । नष्टार्कचन्द्रकिरणाति-
 रजोऽवनद्धा तोपाशयाश्च विजलाः सरितोऽपि तन्व्यः ॥ २० ॥ जातानि कुत्र-
 चिदतोयतया विनाशमृच्छन्ति पुष्टिमपराणि जलोक्षितानि । सस्यानि
 मन्दमभिवर्षन्ति वृत्राघ्नौ वर्षे दिवाकरसुतस्य सदा प्रवृत्ते ॥ २१ ॥ अणुरपटु-
 मूलो नोचगोऽन्यैर्जितो वा न सकलफलदाता पुष्टिदोऽन्यथा यः । यदशु-
 भमशुभेऽन्दे मासजं तस्य वृद्धिः शुभफलमपि चेवं याप्यमन्योऽन्यतायाम् ॥ २२ ॥
 इति श्रीवराहमिहिरकृती बृहत्संहितायां ग्रहवर्षफलमेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

साय अन्नमोजन किया करते हैं, शुरुके वर्षमें इस प्रकारसे फलदेवकी जय हुआ
 करता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ अथ जनि वर्षका स्वामी होता है नभ खोटे
 मनवाले, चोर और बहुतसे संभ्रामोंके होनेसे समस्त राज्य आकुल होते हैं; बहुतोंका
 पशु धन जाता रहता है; बन्धुओंका वियोग होनेसे मनुष्यगण बहुतही रोते हैं;
 दुधाके मारे और रोगोंके मारे बहुतही व्याकुल होते हैं; आकाशमें जितेही बादल
 आते वैसेही पवन उनको उड़ा देता है, पृथ्वीपर एक पक्षामी सौ आरोग्य नहीं
 रहता, आकाशमें सूर्य चन्द्रमाकी किरणें धूँसे बन्ध जाती हैं; जलाशय जलहीन
 और नादियां कृशांग हो जाती हैं; वहाँ पर नाज जलके अमारसे नष्ट हो जाता है;
 वहाँ जल भरी हुई भूमिमें पल जाता है । इस प्रकार जिस वर्षमें जनि स्वामी होता
 है तब इन्द्र मन्द मन्द धान्यका देनेवाला जल वर्षाता है ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥
 जो ग्रह शुद्ध, अपटुविरण, नीचगामी या किसीसे विजित हो जाता है, वह समस्त
 फलका दाता और पुष्टिकारी नहीं हो सकता । जो अशुभ ग्रह वर्षका स्वामी या
 मासका स्वामी होता है सौ उसके मारसे उत्पन्न हुए फलकी प्राप्ति होती है अन्यथा
 होवे सौ शुभ फलभी प्राप्त हो जाता है ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचित्तायां बृहत्संहितायां ...

अथ विंशोऽध्यायः ।

ग्रहशृङ्गाटक.

यस्यां दिशि दृश्यन्ते विशन्ति ताराग्रहा रविं सर्वे । भवति भयं दिशि तस्मात्
 मायुधकोपशुधानङ्कैः ॥ १ ॥ चक्रधनुःशृङ्गाटकदण्डपुरमासवज्रसंस्थाताः ।
 शुद्धवृष्टिकरा लोके समराय च मानवेन्द्राणाम् ॥ २ ॥ यस्मिन् सप्तो एता
 ग्रहमाला दिनकरे दिनान्तगते । तत्रान्यो भवति नृपः परचक्रोदवध महान्
 ॥ ३ ॥ यस्मिन्नृक्षे कुर्युः समागमं तज्जनान् ग्रहा इन्धुः । अविभेदनाः परस्मिन्
 ममलमयरा शिवास्तेषाम् ॥ ४ ॥ ग्रहसंवर्तसभागमसम्मोहसमाजसन्नि
 तास्याः । कोशभेत्तेषामभिधास्ये लक्षणं सफलम् ॥ ५ ॥ एकक्षं चलात्
 मह परिप्रापिनोऽथवा पञ्च । संवर्तो नाम भवेच्छिखिरादुद्युतः स सम्मोहः ॥ ६ ॥
 पीरः पीरममेवो यापी सह यापिना समाजाख्यः । यमजीवसङ्गमेऽन्यो यमा
 न्तेन्दरा कीरः ॥ ७ ॥ उदितः पश्चादेकः प्राक् चान्यो यदि स सन्निधानाख्यः ।

जिस दिशामें तागग्रह गीमें प्रवेश करते हुए देखे जाते हैं, उसी दिशामें
 रांगपोंकी मयराय, शुभ्र और आतंकमे मय होता है ॥ १ ॥ ग्रहसंस्थान का
 पञ्च, धनु, शृङ्गाटक (शत्रुणय), दण्डपुर, माग या वज्रकी रामान दिसाई देता
 है और शुभ्र, अर्द्धाष्ट और राजाओंका समर हुआ करता है ॥ २ ॥ सूर्यमय
 नक्षत्र दिग्दे धनमे चले जाने पर जिस देशके आकाशके अंशमें ग्रहमाला शि
 काई दे बहाता दुर्ग राजाका अधिकार होता है और परचक्रका महान् उदय
 होता है ॥ ३ ॥ जिस नक्षत्रमें ग्रह आया कहते हैं, उस नक्षत्रके वशीभूत जनोंका
 विजय करे है । यमराजकी विजय और निमल शिखा होनेपर बहोके मनुष्योंका
 मेल होता है ॥ ४ ॥ ग्रहोंका संवर्त, समागम, सम्मोह, समाज, सन्निधान और
 कोशभेद इन दृष्टा करता है इन सबके मयल लक्षण कहे जाते हैं ॥ ५ ॥
 यह नक्षत्रके पीर अर्थके माय भाव या पाप यापि ग्रहोंके मिलनेसे होता है
 होता है । सूर्यदेवका संवर्त कहलाता है ॥ ६ ॥ पीरके माय पीरता है
 सूर्यदेवके मय सूर्यका मयल होनेपर समाज नाम होता है
 सूर्य और सूर्यदेवके संवर्त याद कोई और ग्रह या माय पीर देव
 का उदय ॥ ७ ॥ यदि किसीमें पञ्च और दूर्गमे दुर्ग उदय हो तो उसमें

अविकृततनवः स्निग्धा विपुलाश्च समागमे धन्याः ॥ ८ ॥ समौ तु संवर्तसमा-
गमाख्यौ सम्मोहकोशी भयदौ प्रजानाम् । समाजसंतः सुसमः प्रदिष्टो वैरप्रकोपः
खलु सन्निपाते ॥ ९ ॥

इति श्रीबराहमिहिरकृती बृहत्संहितायां ग्रहशुद्धाटकं नाम
विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः ।

गर्भलक्षण.

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम् । यस्मादनः परीक्ष्यः
प्रावृट्कालः प्रयत्नेन ॥ १ ॥ तल्लक्षणानि मुनिभिर्यानि निपद्धानि तानि रद्वेदम् ।
क्रियते गर्गपराशरकाश्यपवात्स्यादिरचितानि ॥ २ ॥ देवविदषादिनाचितो
द्युनिशं यो गर्भलक्षणे भवति । तस्य मुनेरिव पाणी न भवन्ति मिथ्यागुनि-
र्देशे ॥ ३ ॥ किं वातः परमन्यच्छास्त्रं ज्यायोऽस्ति याद्विदित्वैव । प्रप्यमिन्यपि

सन्निपात षट्ते हैं, समागममें अर्थात् चंद्रमाके मिलनमें ग्रहगण विचारसहित,
स्निग्ध, विपुल और धन्य होते हैं ॥ ८ ॥ संवर्त और समागमका पल समता है;
गम्मोह और कोशमें प्रजाओंको भय होता है; समाज संतामें उत्तम समता और
सन्निपातमें वैर और खोप होता है ॥ ९ ॥

इति श्रीबराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयगुगुदायादश-
स्तव्य-पंडितयलदेवप्रगादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अच्छरी जगत्का प्राण है और अच्छरी वर्षाकालके वशमें है इस कारण इस वर्षके
यत्नके सहित वर्षाकालकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ १ ॥ जैसे गर्ग, पराशर,
काश्यप और वात्स्यादि मुनियोंके द्वारा रचे हुए और बांधे हुए वर्षाके समस्त
लक्षण देववर यह गर्भलक्षण बनाया है ॥ २ ॥ जो देवका जाननेवाला पुरुष एक
दिन गर्भलक्षणमें मन लगाय सावधान बिलसे रहते हैं, उनके हाथप मुनिपेरे
समान मेघगणितमें बड़ी मिथ्या नहीं होते ॥ ३ ॥ इससे बैनता भेद साफ है,
यदि बिल भेद साफसे जानकर निर्भय बलिबालमें भी लोग रहते हैं

स्निग्धाः । परिवेपाश्वासकलाः कपिलस्ताम्रो रविश्च शुभः ॥ २१ ॥ पवनचक्रं
 पृथुक्काश्वैत्रे गर्भाः शुभाः सपरिवेपाः । घनपवनसलिलविद्युत्स्तनितैश्च हितं
 वैशाखे ॥ २२ ॥ मुक्तारजतनिकाशास्तमालनीलोत्पलाञ्जनाभासः । जलचर
 त्वाकारा गर्भेषु घनाः प्रभूतजलाः ॥ २३ ॥ तीव्रदिवाकरकिरणामितानि
 मन्दमारुता जलदाः । रूपिता इव धाराभिर्विसृजन्त्यग्निः प्रसवकाले ॥ २४ ॥
 गर्भोपघातलिङ्गान्युल्काशनिपांशुपातादिग्दाहाः । क्षितिकम्पस्वपुरकीलककेकु
 ह्युद्धनिर्घाताः ॥ २५ ॥ रुधिरादिवृष्टिवैकृतपरिधेन्द्रधनूपि दर्शनं राहोः । इत्
 त्वातिरोभिष्टिविधैश्चान्यैर्हतो गर्भः ॥ २६ ॥ स्वर्तुस्वभावजनितैः सामान्यै
 लक्षणेर्वृद्धिः । गर्भाणां विपरीतैस्तैरेव विपर्ययो भवति ॥ २७ ॥ भाद्रपदादि
 विश्वाम्बुदेवप्रेतामहेष्वथर्षेषु । सर्वेष्वृतुषु विवृद्धो गर्भो बहुतोयद्वो भवति ॥ २८ ॥
 शतभिषगाष्टेपाद्रास्वातिमघासंयुतः शुभो गर्भः । पुष्पाति बहून्दिवासां हन्त
 त्वातिर्हतस्त्रिविधैः ॥ २९ ॥ भृगमासादिष्वष्टौ षट् षोडश विंशतिभ्यतुयंका

साम्रवर्ण हो ती शुभ होता है ॥ २१ ॥ यदि चैत्रमें सब गर्भ पवन, मेघ, वृष्टि
 और परिवेपयुक्त हो ती शुभ है । जो वैशाखमें मेघ, वायु, जल और शब्दपवन
 मिजलीमें युक्त हो ती गर्भसे हितसाधन होता है ॥ २२ ॥ मोती या चांदीकी स
 वा तमाल, नील उत्पल और अंजनकी छुतिके समान या जलचर प्राणियों
 समान आकारवाले मेघ बहुतसा जल वर्षावे और सूर्यकी किरणसे गर्भ तपे और मं
 परनके चलनेमें यादल प्रसवकालमें मानो रूपित होकर जलधारा वर्षावे ॥ २३ ॥ २४
 उल्का, वज्र, भूँरका गिरना, दिग्दाह, भौंचाल, गन्धर्वनगर, कीलक, वेद, प्रपु
 तिपात, राधगादिके वर्णनेमें विकारपन, परिध, इन्द्रधनुष, राहुदर्शन इन सब उल्
 नांमे व और तीन उत्पातोंमें गर्भका नाश हो जाता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ क
 स्वभारमें साधारण लक्षणढाग जो गर्भ बढ़ते हैं; उनके विपरीत लक्षणोंसे उल्
 कद हो जाता है ॥ २७ ॥ सब ऋतुओंमेंही पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पु
 षादा, उज्जगादा और रोहिणीनक्षत्रमें षट् द्रुप गर्भ बहुतगा जल देते हैं ॥ २८
 शशभिषा, शार्ङ्गशा, आर्द्रा, स्वाति और मघासंयुक्त गर्भ शुभदायी और ब
 दिनकर संवत्सर करने हैं, तीन उत्पातोंमें इने द्रुप हो ती इनन करने हैं ॥ २९
 जब संवत्सर इन पांच नक्षत्रोंमें किसी एक नक्षत्रमें रहता है तब अपराध
 वैश्वदेवक छः नाममें क्रमानुसार ८।९।१०।११।१२ और तीन दिनकर

विंशतिरथ दिवसत्रयमेकतमशेण पञ्चाभ्यः ॥ ३० ॥ कूरग्रहसंयुक्ते करकाश-
निमत्स्यवर्षदा गर्भाः । शशिनि रवी वा शुक्लसंयुतेक्षिते भूरिवृष्टिकराः ॥ ३१ ॥
गर्भसमयेऽतिवृष्टिगर्भाभावाप निर्निमित्तकता । द्रोणादशोऽभ्याधिके वृष्टे गर्भः
स्रुतो भवति ॥ ३२ ॥ गर्भः पुष्टः प्रसवे ग्रहोपघातादिभिर्पदि न वृष्टः । आत्मी-
यगर्भसमये करकामिभं ददात्यम्भः ॥ ३३ ॥ काठिन्यं यानि यथा विरकाल-
धृतं पयः पयस्विन्याः । कालातीतं तद्वत्सलिलं काठिन्यमुपयानि ॥ ३४ ॥
पञ्चनिमित्तेः शतयोजनं तदर्धमेकहान्यातः । वर्षनि पञ्च समन्नात्तद्रूपेणैव यो
गर्भः ॥ ३५ ॥ द्रोणः पञ्चनिमित्ते गर्भं श्रीण्याटकानि पवनेन । पट्टं विद्युता
नवाभैः स्तनितेन द्वादश प्रसवे ॥ ३६ ॥ पवनसलिलविद्युद्गर्जिताभान्वितो यः
स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः । विसृजति यदि तोयं गर्भकालेऽतिभार
प्रसवसमयमित्या शीकरान्भः करोति ॥ ३७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकजी बृहत्संहितायां गर्भलक्षणमेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

पर वर्षा हुआ करती है ॥ ३० ॥ कूरग्रहसंयुक्त होनेपर समस्त गर्भ ओले, अशानि
और मछली वर्षाया करते हैं और चंद्रमा या सूर्य शुभग्रहयुक्त या शुभग्रहसे दूरे
जानेपर बहुतही वर्षा करते हैं ॥ ३१ ॥ यदि गर्भसमयमें अवागणही बहुतही
वर्षा होवे तो गर्भका अभाव होता है, द्रोणके अष्टांशसेमी अधिक वर्षण करनेपर
गर्भ नष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥ जो पुष्टगर्भ ग्रहोपघातादिसे न बचे तो प्रसवकालमें
आत्मीय गर्भके समय ओलेका मिला हुआ जल वर्षाते हैं ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार
गायोंका बहुत फलतक धरा हुआ दूध कटोपनकी प्राप्त हो जाता है, वैसेही गर्भ
अनेक दिन भीतनेपर फटिनताकी प्राप्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ जो गर्भ पांच प्रकार-
के निमित्तसे पुष्ट होता है वह गर्भ शतयोजनतक फैलकर वर्षा करता है, उन्हे
एक २ निमित्तके अभावमें शत योजनके अर्द्धांशकी हानि होकर वर्षा होती है
॥ ३५ ॥ अर्थात् चतुर्निमित्तक गर्भ ५० योजन (२०० कोश), त्रिनिमित्तक
२५ योजन (१०० कोश), द्विनिमित्तक १२॥ योजन (५० कोश) और एक-
निमित्तकगर्भ ५ योजन (२० कोश) तक जल वर्षाता है, पांचनिमित्तकगर्भ
एक द्रोणजल वर्षाता है, पवननिमित्तक तीन (३) आदक और विद्युदनिमित्तक
५ आदक जल वर्षाता है ॥ ३६ ॥ जो गर्भ पवन, जल, बिजली, आदि —

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ।

गर्भधारण.

ज्येष्ठसितेऽष्टम्याद्याश्वत्वारो वायुधारणादिवसाः । मृदुशुभपवनाः शस्ताः
स्निग्धघनस्थगितगगनाश्च ॥ १ ॥ तत्रैव स्वात्याद्ये वृष्टे भवतुष्टये क्रमान्मासाः ।
श्रावणपूर्वा ज्ञेयाः परिस्रुता धारणास्ताः स्युः ॥ २ ॥ यदि ताः स्युरेकस्याः
शुभास्ततः सान्तरास्तु न शिवाय । तस्करभयदाः प्रोक्ताः श्लोकाभ्याम्ब
वासिष्ठाः ॥ ३ ॥ सविद्युतः सपृषतः सपांशुत्करमारुताः । सार्कचन्द्रपरिच्छन्ना
धारणाः शुभधारणाः ॥ ४ ॥ यदा तु विद्युतः श्रेष्ठाः शुभाशाप्रत्युपरिगताः ।
तदापि सर्वसस्यानां वृद्धिं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥ ५ ॥ सपांशुवर्षाः सापञ्च शुभा
बालक्रिया अपि । पक्षिणां सुस्वरा वाचः क्रीडा पांशुजलादिषु ॥ ६ ॥ रवि-
चन्द्रपरिवेयाः स्निग्धा नात्यन्तदूषिताः । वृष्टिस्तदापि विज्ञेया सर्वसस्यानि

रूप पंचानिमित्तयुक्त है सो बहुतसा जल देता है; यदि गर्मकालमें बहुतसा जल
वर्षे तो प्रसवकालको लांघकर जलकण वर्षा करते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादावादा-
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकाविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी अष्टमी आदिको चार दिनतक वायुसे गर्भधारणज्ञान
होनेके दिन हैं । सो मृदु शुभ वायुयुक्त होनेपर या चिकने मेघसे ढके हुए बाद-
लके होनेपर श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ तिसमें स्वाति आदि चार नक्षत्रोंके वर्षा हो तो क्रमसे
श्रावणादि महीनेमें गर्भधारण परिस्रुत जानना अर्थात् वर्षा न होगी ॥ २ ॥ यदि
यह चारों दिन एकसे हों तो शुभ होता है, जो इससे विपरीत हो तो मंगलशुभ
नहीं होते; वरन तस्करोंका भय होता है । वसिष्ठजीके कहे हुए श्लोक इस विषयमें
कहे हैं यथा ॥ ३ ॥ दामिनी, जलकण और धूरि मिला हुआ पवन चले, चन्द्रमा
वा सूर्यका मेघोंसे ढके रहना इस प्रकारका जो गर्म धारण है सो श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥
जिस समय श्रेष्ठ बिजली शुभ दिशाओंमें दमके तब बुद्धिमान् पुरुषको जानना
चाहिये कि धान्यकी वृद्धि होगी ॥ ५ ॥ जो बालक खेलते २ जल या धूरिको वर्षा
या पक्षियोंका मधुर २ शब्द हों; पक्षी जलादिमें किलोलें करें तो शुभ होता है ॥ ६ ॥
चन्द्रमा सूर्यके मण्डल स्निग्ध है और अत्यन्त दूषित नहीं हो तो तिस बालक

वृद्धये ॥ ७ ॥ मेघाः स्निग्धाः संहताश्च प्रदक्षिणगतिक्रियाः । तदा स्यान्महती
वृष्टिः सर्वसत्स्यार्थसाधिका ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मेघगर्भधारणं नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।

प्रवर्षण.

ज्येष्ठमास समतीतायां पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन । शुभमशुभं वा वाच्यं परिमाणं
चान्नसरतज्ज्ञैः ॥ १ ॥ हरतविशालं कुण्डकमधिकृत्याऽनुप्रमाणनिर्देशः । पञ्चा-
शत्पलमाढकमनेन मितुयाज्जलं पतितम् ॥ २ ॥ येन धरित्री मुद्रा जनिता वा
विन्दवस्तृणाग्रेषु । वृष्टेन तेन वाच्यं परिमाणं वारिणः प्रथमम् ॥ ३ ॥ केचि-
दध्याभिवृष्टं दशयोजनमण्डलं वदन्त्यन्ये । गर्गवसिष्ठपराशरमतमेतद्द्वादशान्न

वर्षादी सप्त धान्योक्तं षट्पानेवाली है ॥ ७ ॥ मेघ चिकने, गाढे और प्रदक्षिण
गतिसे परिक्रमा करते हुए चलते हैं तो सर्व धान्य और अर्यकी साधन कर
नेवाली षट्ठी मारी वर्षा होती है ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयपुरादावाद-
वास्तव्य-पण्डितबलदेवमत्तादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ज्येष्ठके पूर्णिमाक मलीभाति वर्ष जानेपर यदि पूर्वाषाढादि नक्षत्रमें वर्षा हो तो
जलका परिमाण और शुभाशुभ बुद्धिमानोंको कहना उचित है ॥ १ ॥ एक हाथ
लम्मे और एक हाथ चौड़े कुण्डको धारण करके जलका प्रमाण कहना चाहिये,
यह पानीसे भर जाय तो उस वर्षे हुए जलको तोलकर वर्षाका परिमाण बहे ।
उक्त पात्रका परिमाण पचास पल है । यह जलसे भर जाय तो वर्षे हुए जलका
परिमाण एक आदक होता है ॥ २ ॥ जिसके गिरनेसे पृथ्वीपर चिह्न पड़ जाय
या तृणोंकी नोकोंपर पानीकी बुँदें टहर जाय, उस वर्षासेही जलका प्रथम परिमाण
कहना चाहिये ॥ ३ ॥ कोई २ कहते हैं, कि जहांतक देखा जाय तहांहीतक वर्षा
होती है; कोई २ ऊपर बहे हुए लक्षणसे दश योजन मण्डलमें वर्षाका होना कहते
हैं, परन्तु गर्ग, वसिष्ठ और पराशरके मतसे बारह योजन अर्थात् ४८ कोशके आगे

परम् ॥ ४ ॥ येषु च भेष्वभिवृष्टं भूयस्तेष्वेव वर्षति प्रायः । यदि नाप्यादि
 वृष्टं सर्वेषु तदा त्वनावृष्टिः ॥ ५ ॥ हस्ताप्यसौम्यचित्रापीष्णधनिष्ठासु षोडश
 द्रोणाः । शतभिर्गन्धर्वातिषु चत्वारः कृत्तिकासु दश ॥ ६ ॥ श्रवणे मन्वा-
 राधाभरणीमूलेषु दश चतुर्थ्युक्ताः । फल्गुन्यां पञ्चकृतिः पुनर्वसौ विंशतिर्द्रोणः
 ॥ ७ ॥ ऐन्द्राग्राख्ये वैश्वे विंशतिः सार्पभे च दश त्र्यधिकाः । आहिर्बुध्न्यायन्य-
 भाजापत्येषु पञ्चकृतिः ॥ ८ ॥ पञ्चदशाजे पुष्ये कीर्तिता च वानिजे दश द्वी
 च । रौद्रेऽष्टादश कथिता द्रोणा निरुपद्रवेष्वे ॥ ९ ॥ रविरविसुतकेतुपीडिते द्वे
 क्षितितनयत्रिविधाद्भुताहते च । भवति हि न शिवं न चापि वृष्टिः शुभमसिद्धिं
 निरुपद्रवे शिवं च ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रवर्षणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

वर्षा नहीं होती ॥ ४ ॥ जिन नक्षत्रोंमें वर्षा होती है; बहुधा प्रसवकालके समय वर्षा
 सब नक्षत्रोंमें वर्षा हुआ करती है, परन्तु यदि पूर्वाषाढासे लेकर मूलनक्षत्रतक किसी
 नक्षत्रमें वर्षा न हो तो सब नक्षत्रोंमें अनावृष्टि होती है ॥ ५ ॥ जो उपद्रवहीन चंद्रमा हस्त,
 पूर्वाषाढा, मृगशिर, चित्रा, रेवती और धनिष्ठामें हो तो सोलह द्रोण, शतभिषा, ज्येष्ठा
 और स्वातीमें ४ द्रोण, कृत्तिकामें १० दश, श्रवण, मन्वा, अतुलाधा, भरणी और
 मूलमें चतुर्दश, फाल्गुनीमें पचीस, पुनर्वसुमें २० बीस, विशाखा और उत्तराषाढा
 नक्षत्रमें बीस, आश्लेषा नक्षत्रमें तेरह, उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी और रौद्रे-
 णीमें पचीस, पूर्वाभाद्रपदा, पुष्य और आश्विनी नक्षत्रमें बारह और आर्द्रा में अठारह
 द्रोण जल वर्षाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ यदि सब नक्षत्र सूर्य, शनि वा वेदके
 पण्डित हों और मंगल करके त्रिविध अद्भुतद्वारा आहत हों तो वर्षा नहीं होती
 परन्तु मुत्तके साथ निरुपद्रव होनेपर शुभ होता है ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयपुण्ड-
 वादनास्तक्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां मापाटीकायां ।
 त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।

रोहिणीयोगः ।

कनकशिलाचपविवरजतरुकुमुमासङ्गिमधुकरानुसृते । बहुविहगकलहसुर-
श्रुवतिगीतमन्द्रस्वनोपवने ॥ १ ॥ सुरनिलपशिखरिशिखरे बृहस्पतिनारदाय
यानाह । गर्गराशरकारपत्रमयाभ यात्रिष्ठम्पसङ्गम्यः ॥ २ ॥ तानवलोक्य यथा-
वदं प्राजापत्येन्दुसम्पयोगार्थान् । स्वल्पमन्येनाहं तानेवाभ्युदयो वक्तुम् ॥ ३ ॥
प्राजेयमापादतामिस्रशो क्षराकरेणोपगतं समीक्ष्य । वक्तव्यमिदं जगतोऽशुभं
वा शास्त्रोपदेशाद्ब्रह्मचिन्तकेन ॥ ४ ॥ योगो यथानामत एव वाच्यः न धिष्ण्य-
योगः करणे मपोक्तः । चन्द्रप्रमाणद्वयवर्णमार्गेरुत्पातपातैश्च फलं निगा-
द्यम् ॥ ५ ॥ पुरादुदयत्पुस्तोऽपि वा स्थलं ग्रहोपितस्तत्र हुताशतत्परः ।
ग्रहान् सप्तशतगणान् समालिखेत् सधूपपुष्पैर्बलिभिश्च पूजयेत् ॥ ६ ॥
सरजतोषीषधिभिश्चतुर्दशं तरुमयालानिहितैः सुपूजितैः । अकालमूलेः कलशै-

मुमेरुपर्वतके शिखरपर लगे हुए वृक्षोंके फूलोंपर आसक्त हुए भ्रमरोंके गुंजा-
रसे, अनेक प्रकारके पक्षियोंकी चहकारसे और देवाङ्गनाओंके मृदु गंभीर गीतोंके
स्वरसे परिपूर्ण, पर्वतकी चोटीपर स्थित रमणीक उपवनोमें बृहस्पतिजीने नारद-
जीसे जो रोहिणीयोग कहा था और गर्ग, पराशर, काश्यप ऋषियोंने और मयज-
सूरने अपने शिष्योंसे जो कहा था, तिसकी देखकर इस छोटेसे ग्रंथमें उसही रोहिणी
और चंद्रमाके योगका अर्थ यथार्थ २ वर्णन करनेको हम उत्साही हुए हैं ॥ १ ॥ २ ॥
॥ ३ ॥ आपाद मासके कृष्णपक्षमें रोहिणीका चंद्रमाके साथ मेल देखकर जगत्का
इष्ट या अनिष्ट शास्त्रके उपदेशानुसार देवता कह सकता है ॥ ४ ॥ मेल होनेसे पहलेही
उनका योग जिस प्रकारसे होना चाहिये, करण (पंचसिद्धान्तिका) में वह धि-
ष्ण्ययोग हमारे द्वारा कहा जा चुका है; चंद्रमाका प्रमाण, द्युति, वर्ण, मार्ग और
उत्पातके द्वाराही फल कहना चाहिये ॥ ५ ॥ ग्रहसंस्थानके जाननेवाले नगरकी
पूर्व उत्तरदिशामें नक्षत्रसहित ग्रहोंको लिखकर धूप, फूल और बलिसे पूजा करे ॥ ६ ॥
चारों ओरमें वृक्ष और कोंपलसे ढका हुआ रत्नसहित जल और औषधियुक्त,
तिसकी तलीकामी न हो ऐसे पूजनीय कलशके द्वारा कुश बिछे हुए यज्ञस्थानमें

रलंकृतं कुशास्तृतं स्थण्डिलमावसेद्विजः ॥ ७ ॥ आलभ्य मन्त्रेण महाव्रते
बीजानि सर्वाणि निधाय कुम्भे । प्राव्यानि चामीकरदर्भतोपेर्होमो मरुदास्य
सौम्यमन्त्रैः ॥ ८ ॥ शृङ्गणां पताकामसितां विदध्यादण्डप्रमाणां त्रिगुणोच्छ्रित
च । आदौ कृते दिग्ग्रहणे नमस्वान् ग्राह्यस्तथा योगमते शशाङ्के ॥ ९ ॥ तत्र
धर्मासाः प्रहरैर्विकल्प्या वर्षानिभित्तं दिवसास्तदंशैः । सव्येन गच्छन्नुत्तमः
सदैव यस्मिन्प्रतिष्ठा बलवान् स वायुः ॥ १० ॥ वृत्ते तु योगेऽङ्कुरितानि पा
सन्तीह बीजानि धृतानि कुम्भे । येषां तु योऽंशोऽङ्कुरितस्तदंशस्तेषां विशु
समुपैति नान्यः ॥ ११ ॥ शान्तपश्चिमृगराविता दिशो निर्मलं विपदनिन्दितं
ऽनिलः । शस्यते शशिनि रोहिणीयुते मेघमारुतफलानि वक्ष्यतः ॥ १२ ॥
कचिदसितसितैः सितैः कचिच्च कचिदसितैर्भुजगैरिवाम्बुवाहैः । बलितजग

ग्राहणको बैठना चाहिये ॥ ७ ॥ महाव्रत नामके मंत्रोंसे अभिमंत्रित का
प्रकारके बीज घड़ेमें डालकर सुवर्ण और दमयुक्त जलसे उसको धुावित करे
मारुत, वरुण और सौम्य मंत्रसे होम करे ॥ ८ ॥ चन्द्रमाका योग होनेपर दंड
समान बारह हाथ ऊंचे बांसपर ४ हाथ लम्बी असित पताका धारण करे । पा
दिन निर्णय करके उस पताकासे कितने क्षणतक कौन दिशामें हवा चलती है
जाने ॥ ९ ॥ एक प्रहरतक एक दिशामें हवा चले तो १५ दिनतक वर्षा होगी
इस प्रकार वायु बहनेके कालसे दिवसके अंशको निर्णय करे (श्रावणसे कार्तिक
इन चार मासके आठ पक्षका एक २ पक्ष एक २ अंशसे निर्देश करना चाहिये
बायीं दिशामें वायु गमन करे तो शीघ्रही शुभदायी होती है और जो एक निप
लक्ष्यमें अर्थात् एक दिशामेंही गमन करे तो वह वायु प्रतिघावान्
बलवान् होता है ॥ १० ॥ इस योगके चले जानेपर घड़ेमें धरे हुए बीजोंमें
जो अङ्कुरित हों, उनका वही २ अंशही वृद्धिको प्राप्त होगा; और अंश नहीं ॥ ११ ॥
रोहिणीके माघ चन्द्रमाका मेल होनेपर यदि सब दिशाये शान्त हो जाय, पश्चिम
या मृगशिरा उनमें मनोहर शब्द करे, आकाश निर्मल और वायु आनादेत हो
भूमिकी श्रेष्ठ सिद्धि होती है । इसके उपरान्त मेघ मारुतके फल क्रमानुसार
जाने हैं ॥ १२ ॥ आकाशमें कहीं काला, कहीं श्वेत, कहीं कृष्ण वर्ण, कहीं
कालेन, जल, पृथु मात्र दृश्य अर्थात् कुण्डली मारकर सर्पके मारनेसे जैसे जितने

उमावदश्येः स्फुरिततडिदसनेवृत विशालैः ॥ १३ ॥ विकसितकमलोदरावदाते-
रुणकरद्युतिराजितोपकण्ठैः । छुरितामिव वियदनेर्विचित्रैर्मधुकरकुंकुमकिंशु-
कावदातैः ॥ १४ ॥ असितघननिरुद्धमेव वा चलिततडित्पुरचापचित्रितम् ।
द्विपमहिपकुलाकुलीकृतं वनमिव दावपरीतमम्बरम् ॥ १५ ॥ अथवाजनशैल-
शिलानिचयप्रतिरूपधरेः स्थागितं गगनम् । हिमर्माकिकशंसखशाङ्ककरद्युतिहा-
रिभिरम्बुधरेरथवा ॥ १६ ॥ तडिद्धमकक्षैर्बलाकाग्रदन्तैः सवद्वारिदानेभ्यलत्पा-
न्तहस्तैः विचित्रेन्द्रचापध्वजोच्छ्रायशोभैस्तमालालिनीलेवृतं चान्दनागैः ॥ १७ ॥
सन्ध्यानुरक्ते नभसि स्थितानामिन्दीवरश्यामरुचां घनानाम् । वृन्दानि पीताम्बरवे-
दितस्य कान्तिं हरेभ्योरयतां यदा वा ॥ १८ ॥ सशिशिचातकदन्दुरनिस्त्वन-
र्पादि विमिभिनमन्द्रपटुस्वनाः । खमवतस्य दिगन्ताविलम्बिनः सलिलदाः सलि-
लीधमुचः क्षितौ ॥ १९ ॥ निगदितरूपैर्जलधरजालैरुपहमवरुद्धं द्रव्यहमयवाहः ।
पादि वियदेयं भवति सुभिक्षं मुदितजना च प्रचुरजला भूः ॥ २० ॥

पीठ और पेट दीख पड़ती हो, घमवती हुई बिजलीकी समान जीमशाले
और शब्दयुक्त विशाल भुजंगाकार मेघोंके द्वारा जो आकाश घिर जाय, रिले हुए
कमलकी समान निर्मल व अरुण है समीपभाग जिनका, मधुकर, पुंजुम, टेसके
कूलकी समान निर्मल विचित्र मेघोंसे रंगनेकी समान जो आकाश शोभायमान हो,
काले मेघोंसे रंगनेकी समान जो आकाश शोभायमान हो, काले मेघोंसे दृश्य हुआ
हो या घमवती हुई बिजली और इन्द्रधनुषके द्वारा चित्रित आकाश मानो हाथी
और भैंसोंके द्वारा आलुल किया हुआ दावानलयुक्त वनकी समान दिरलार्ह दे या
अञ्जन पहाडके काले पत्थरोंकी समान मेघोंसे 'आकाश छा जाय, अथवा हिम,
मुक्ता, शंख और चन्द्रकिरणोंकी ज्योति हरण करनेवाले बादलोंसे जो आकाशम-
ण्डल दृश्य जाय या बिजलीरूप हैमकक्षासम्पन्न वायुका रूप अप्रदन्तरूप जलरूप
मद घुआता मान्तरूप कर चलनेवाला, विचित्र इन्द्रका रूप ऊंची ध्वजामे शोभा-
यमान और तमाल वा भ्रमरकी समान नीलवर्ण हाथीरूप बादलने सब आकाश
छा जाय, जो सांझके रागसे रंगे हुए आकाशमें स्थित नीले पक्षकी समान मेघहुं
पीतांबर परे हुए हरिकी कान्तिकी हरण करे और मोर घातक व मेंढकोंके शब्दके
साथ यदि मेघका गंभीर शब्द मिल जाय तो दिशाओंमें फैले हुए आकाशकापी
बादल पृथ्वीपर बहुतसा जल बर्षाने हैं ॥१३॥१४॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९ ॥
इस उक्त प्रकारके बादलोंसे आकाश दो या तीन दिन घिरे रहे तो सुभिक्ष होवे,

गच्छेत् कदाचिदनृपिर्मनसापि पारम् ॥ ४ ॥ होराशास्त्रेऽपि राशिहोरादेका-
 णनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलाबलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थानकालचेष्टा-
 भिरनेकप्रकारबलनिर्धारणं प्रकृतिधातुद्रव्यजातिचेष्टादिपरिग्रहो निपेकजन्मका-
 लविस्मापनप्रत्ययादेशसद्योमरणाप्युर्दायदशान्तर्दशाष्टकवर्गराजयोगचन्द्रयोगद्वि-
 ग्रहादियोगानां नाभिसादीनाञ्च योगानां फलान्याश्रयभावावलोकननिर्याणगत्यनु-
 कानि तात्कालिकप्रश्नशुभाशुभानिमित्तानि विवाहादीनाञ्च कर्मणां करणम् ।
 यात्रायाञ्च तिथिदिवसकरणनक्षत्रमुहूर्तविलग्नयोगदेहस्पन्दनस्वप्नविजयस्नान-
 ग्रहयज्ञगणयागाग्निलिङ्गहस्त्यश्वेज्जितसेनाप्रवादचेष्टादिग्रहपाङ्गुण्योपायमंगला-
 मङ्गलशकुनसैन्यनिवेशभूमिमयोऽग्निवर्णा मन्त्रिचरदूतादिविकानां यथाकालं प्रयो-
 गाः परदुर्गलम्भोपायोश्चत्युक्तं चाचार्यैः । जगति प्रसारितमिवालिखितमिव भूतौ

तन्त्रको जानता हो, छाया, जल, यन्त्र आदि द्वारा लग्नको जान सकता हो और
 होराशास्त्रमें निपुण हो ऐसे पुरुषकी वाणी कदाचित् भी मिथ्या नहीं हो सकती ।
 आर्य विष्णुगुप्तने कहाभी है—कि कदाचित् कोई पुरुष समुद्रको तैरकर पार होना चाहे
 तो वायुके वेगसे तैरकर पार हो सकता है परन्तु यह कालपुरुषका रूप जो ज्योतिष
 शास्त्र समुद्र है उसको ऋषिभिन्न मनुष्य मनसेभी पार नहीं हो सकता है । होरा
 शास्त्रमेंभी राशि, होरा, द्रव्याण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश और बलाबल, परिग्रह,
 स्थान, काल और चेष्टा आदि अनेक प्रकारसे ग्रहबलका निर्धारण है; प्रकृति,
 धातु, द्रव्य, जाति और चेष्टा आदिका परिग्रह, निपेक, जन्मकाल, विस्मापन,
 प्रत्यय (विश्वास), आदेश, शीघ्रमरण, आयुर्दाय, दशा, अन्तर्दशा, अष्टवर्ग,
 राजयोग, चन्द्रयोग, द्विग्रहादियोग और नाभिसादि सब योगोंका फल; आश्रय,
 भाव, दृष्टि, निर्याण, गति और अनुकूलि व तिस कालके सब प्रश्नोंका शुभाशुभ
 कारण, सबही विवाहादि कर्म समूहोंका हेतु, यात्राका वर्णन; तिथि, दिवस, करण,
 नक्षत्र मुहूर्त, लग्न, योग, शरीरके अंगोंका फटकना, स्वप्न, विजय, स्नान, ग्रहयज्ञ,
 गणयात्रा, अग्निलिङ्ग, दायीं चोडेके संकेत, सेनाप्रवादकी चेष्टा इत्यादि, पाङ्गुण्य-
 उपाय, मंगल अमंगलके शकुन, सेनाके वास करनेकी भूमियें, अग्नियोंका वर्ण,
 भंत्री, चर, दूत और वनचारियोंका कालानुसार प्रयोग, परदुर्गोपालम्भका उपाय,
 सब यात्राओंका हेतु स्वरूप; यह सब बातें होराशास्त्रमें कही हैं । आचार्योंने
 कहा है; जगन्में प्रचार हुएकी समान, बुद्धिमें लिखे हुएकी समान, हृदयमें ढाले
 हुएकी समान भगवत्सहित शास्त्र अर्थात् इस ज्योतिषशास्त्रको जो भलीभाँतिसे

निषिक्तमिव हृदये । शास्त्रं यस्य सभगणं नादेशा निष्फलास्तस्य ॥५॥ संहिता
 पारगम्य देवचिन्तको भवति । यत्रैते संहितापदार्थाः । दिनकरादीनां ग्रहाणां चारा
 स्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्त
 रवक्रानुवक्रक्षग्रहसमागमचारादिभिः फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचार
 सप्तर्षिचारो ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहशृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगतं
 लक्षणरोहिणीस्वात्यापादीयोगाः सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपथनो
 ल्कादिगदाहक्षितिचलनसन्ध्यारागमन्धर्वनगररजोनिर्घातार्थकाण्डसस्यजन्मेन्द्र-
 ध्वजेन्द्रचापवारस्तुविद्याकुविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्राश्वचक्रवातचक्रमा
 सादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिप्रापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनीराजनखअनोत्पानशान्ति-
 मयूरचित्रकधृतकम्बलखड्गपट्टकवाकु कूर्मगोऽजाश्वेभपुरुषर्षीलक्षणान्यन्तःपु-
 रचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेदवसच्छेदचामरदण्डशम्पासनलक्षणरत्नपरीक्षा दीप
 जानता है, उसका आदेश यमी निष्फल नहीं होता है ॥ ५ ॥ ज्योतिषशास्त्र
 संहिताओंमें चतुर पुरुषही देवता हो सकते हैं । क्योंकि संहिताओंमें इन गुरु
 बातोंका निरूपण होता है; यथा,—सूर्यादिग्रहकी चाल, तिनमें सूर्यादि गुरु ग्रहोंका
 स्वभाव, विकार, प्रमाण, वर्ण, किरण, ज्योति, संस्थान, उदय, अस्त, मार्ग, पृथक्
 मार्ग, वक्र, अनुवक्र और नक्षत्र, ग्रह, व समागमादिके फलका निरूपण करना
 नक्षत्रविभाग और कूर्मविभागके सब देशोंमें उसका फल, अगस्त्यकी चाल, सप्त
 र्षियोंकी चाल, ग्रहभक्ति, नक्षत्रव्यूह, ग्रहशृङ्गाटक, ग्रहयुद्ध, ग्रहसमागम, ग्रहण,
 वर्षाका फल, गर्भलक्षण, रोहिणीयोग, स्वातीयोग, आपादीयोग, शीघ्र वर्षाका
 होना, पुष्पम, लता, परिधि (घेरा), परिवेश, परिघ, वायु, उल्का, दिग्दाह,
 मौंचाल, संध्याका पूलना, गन्धर्वनगर, धारे, निर्घात, वस्तुओंका भेदना हो जाना,
 नाजका उत्पन्न होना, इन्द्रध्वज, इन्द्रधनुष, वास्तुविद्या (राजगौरी घरई आदि),
 अंगविद्या, वायनविद्या, अन्तरचक्र, मृगचक्र, अश्वचक्र, वातचक्र, प्रगादलक्षण
 प्रतिमालक्षण, प्रतिमाप्रतिष्ठा, वृक्षआयुर्वेद, वृक्षदोहद, उदगार्गल, नीराजन (तिन-
 जैन), राजन, उत्पानशान्ति, मयूरचित्र, धृतलक्षण, कम्बललक्षण, पट्टलक्षण,
 पट्टलक्षण, वृत्तककु (पुष्ट) लक्षण, कूर्मलक्षण, गोदलक्षण, अजालक्षण, पु
 (पुष्ठा) लक्षण, अजालक्षण, दक्षिणलक्षण, पुरषलक्षण, र्षीलक्षण, अन्तःपु-
 रचिन्ता, पिटक (बैठादिसे घना हुआ पिटाग) लक्षण, मोतीके लक्षण, दण्डच्छेद-
 लक्षण, चामरलक्षण, दण्डलक्षण, शम्पालक्षण, वायनलक्षण, राजगौरी, दण्डल-

गच्छेत् कदाचिदनुपिर्मनसापि पारम् ॥ ४ ॥ होराशास्त्रेऽपि राशिहोरादेका-
 णनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलावलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थानकालचेष्टा-
 भिरनेकप्रकारबलनिर्धारणं प्रकृतिधातुद्रव्यजातिचेष्टादिरिग्रहो निपेकजन्मका-
 लविस्मापनप्रत्ययादेशसद्योमरणायुर्द्वयदशान्तर्दशाष्टकवर्गराजयोगचन्द्रयोगादि-
 ग्रहादियोगानां नाभिसादीनाञ्च योगानां फलान्याश्रयभावावलोकननिर्याणगत्यनु-
 कानि तात्कालिकप्रभृशुभाशुभानिमित्तानि विवाहादीनाञ्च कर्मणां करणम् ।
 यात्रायाञ्च तिथिदिवसकरणनक्षत्रमुहूर्ताविलग्नयोगदेहस्पन्दनस्वप्नविजयस्नान-
 ग्रहयज्ञगणयागाग्निलिङ्गहस्त्यश्वेज्जितसेनाप्रवादचेष्टादिग्रहाङ्गुण्योपायमंगला-
 मङ्गलशकुनसैन्यनिवेशभूमिमयोऽग्निवर्णा मन्त्रिचरदूतादिविकानां यथाकालं प्रयो-
 गाः परदुर्गलम्भोपायोऽथत्युक्तं चाचार्यैः । जगति प्रसारितमिवालिखितमिव मतौ

तन्त्रको जानता हो, छाया, जल, यन्त्र आदि द्वारा लग्नको जान सकता हो और
 होराशास्त्रमें निपुण हो ऐसे पुरुषकी वाणी कदाचित् भी मिथ्या नहीं हो सकती ।
 आर्य विष्णुगुप्तने कहाभी है—कि कदाचित् कोई पुरुष समुद्रको तैरकर पार होना चाहे
 तो वायुके वेगसे तैरकर पार हो सकता है परन्तु यह कालपुरुषका रूप जो ज्योतिष
 शास्त्र समुद्र है उसको ऋषिभिन्न मनुष्य मनसेभी पार नहीं हो सकता है । होरा
 शास्त्रमेंभी राशि, होरा, द्रेकाण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश और बलावल, परिग्रह,
 स्थान, काल और चेष्टा आदि अनेक प्रकारसे ग्रहबलका निर्धारण है; प्रकृति,
 धातु, द्रव्य, जाति और चेष्टा आदिका परिग्रह, निपेक, जन्मकाल, विस्मापन,
 प्रत्यय (विश्वास), आदेश, शीघ्रमरण, आयुर्द्वय, दशा, अन्तर्दशा, अष्टवर्ग,
 राजयोग, चन्द्रयोग, द्विग्रहादियोग और नाभिसादि सब योगोंका फल, आश्रय,
 भाव, दृष्टि, निर्याण, गति और अनुकादि व तिस कालके सब प्रश्नोंका शुभाशुभ
 कारण, सबही विवाहादि कर्म समूहोंका हेतु, यात्राका वर्णन; तिथि, दिवस, करण,
 नक्षत्र मुहूर्त, लग्न, योग, शरीरके अंगोंका फटकना, स्वप्न, विजय, स्नान, ग्रहयज्ञ,
 गणयात्रा, अग्निर्लिङ्ग, हाथी घोड़ेके संकेत, सेनाप्रवादकी चेष्टा इत्यादि, पाङ्गुण्य-
 उपाय, मंगल अमंगलके शकुन, सेनाके वास करनेकी भूमियें, अग्नियोंका वर्ण,
 भन्त्री, चर, दूत और वनचारियोंका कालानुसार प्रयोग, परदुर्गोपालम्भका उपाय,
 सब यात्राओंका हेतु स्वरूप; यह सब बातें होराशास्त्रमें कही हैं । आचार्योंने
 कहा है; जगत्में प्रचार हुएकी समान, बुद्धिमें लिखे हुएकी समान, हृदयमें दाले
 हुएकी समान भगणसहित शास्त्र अर्थात् इस ज्योतिषशास्त्रको जो भलीभाँतिसे

निषिक्तमिव हृदये । शास्त्रं यस्य सप्तगणं नादेशा निष्फलास्तस्य ॥५॥ संहिता-
 पारगन्ध देवचिन्तको भवति । यत्रैते संहितापदार्थाः । दिनकरादीनां ग्रहाणां चारा-
 स्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्त-
 रवक्रानुवक्रांशग्रहसमागमचारादिभिः फलानि नक्षत्रकूर्मविभागैर्न देशेष्वगस्त्यचारः
 समर्पिचारो ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहशृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भ-
 लक्षणरोहिणीस्वात्यापादीयोगाः सद्योवर्षकुमुदलतापरिधिपरिवेपारिघपवनो-
 त्कादिग्दाहक्षितिचलनसंख्यारागगन्धर्वनगररजोनिर्घातार्धकाण्डस्तस्य नन्मेन्द्र-
 ध्वनेन्द्रचापवास्तुविद्याद्गन्धर्वविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्राक्षचक्रवातचक्रमा-
 सादलक्षणमतिमालक्षणप्रतिमापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनीराजनरञ्जनोत्पानशान्ति-
 मयूरचित्रकघ्नकम्बलखड्गपट्टककबाहुकूर्मगोऽजाश्वेभपुरुषर्षालक्षणान्यन्तःपु-
 राचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेदवसच्छेदचामरदण्डशप्यासनलक्षणरत्नपरीक्षा दीव-
 जानता है, उसका आदेश कभी निष्फल नहीं होता है ॥ ५ ॥ ज्योतिषशास्त्रकी
 संहिताओंमें चतुर पुरुषदी देवता हो सकते हैं । क्योंकि संहिताओंमें इन सब
 बातोंका निरूपण होता है; यथा,—सूर्यादिग्रहकी घाल, तिनमें सूर्यादि सब ग्रहोंका
 स्वभाव, विकार, प्रमाण, वर्ण, किरण, ज्योति, संस्थान, उदय, अस्त, मार्ग, पृथक्-
 मार्ग, वक्र, अनुवक्र और नक्षत्र, ग्रह, व समागममादिसे बालका निरूपण करना,
 नक्षत्रविभाग और कूर्मविभागमें सब देशोंमें उसका फल, अगस्त्यकी घाल, सम-
 र्पियोंकी घाल, ग्रहभक्ति, नक्षत्रव्यूह, ग्रहशृङ्गाटक, ग्रहयुद्ध, ग्रहसमागम, ग्रहण,
 वर्षाका फल, गर्भलक्षण, गोहेणीयोग, स्वातीयोग, आषाढीयोग, शीघ्र वर्षाका
 होना, कुमुद, लता, परिधि (घेरा), परिवेश, परिघ, वायु, उल्का, दिग्दाह,
 भौंचाल, संध्याका पूलना, गन्धर्वनगर, धूमि, निर्घात, वस्तुओंका भंङ्ग हो जाना,
 नाजका उत्पन्न होना, इन्द्रध्वज, इन्द्रधनुष, वास्तुविद्या (राजगोरी घरई आदि),
 अंगविद्या, वायनविद्या, अन्तरचक्र, मृगचक्र, अक्षचक्र, वातचक्र, ममादलक्षण
 प्रतिमालक्षण, प्रतिमाप्रतिष्ठा, वृक्षआयुर्वेद, वृक्षदोहद, उदगार्गल, नीराजन (नि-
 जेन), रञ्जन, उत्पानशान्ति, मयूरचित्रक, पृतलक्षण, कम्बललक्षण, पट्टलक्षण,
 पट्टलक्षण, कृत्वाहु (कुन्ट) लक्षण, कूर्मलक्षण, गोलक्षण, अगलक्षण, पु. ४
 (सुधा) लक्षण, अञ्जलक्षण, दितिलक्षण, पुरषलक्षण, र्षलक्षण, अन्तःपु-
 चिन्ता, पिटक (बेंनादिमें बना हुआ पिठाग) लक्षण, मोतीदे लक्षण, वस्त्रच्छेद-
 लक्षण, चामरलक्षण, दण्डलक्षण, शर्यालक्षण, आसनलक्षण, रत्नपरीक्षा, दीव-

क्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानि शुभाशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगतः
 तिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन देवज्ञेन चिन्तयितव्यानि । न
 वैकाकिना शक्यन्तेऽर्हर्निशमवधारयितुं निमित्तानि । तस्मात् सुभृतेनैव देव-
 नान्ये तद्विद्वत्पारो भर्तव्याः । तत्रैकेनैन्द्रीचाग्नेयी च दिगवलोकयि-
 तव्या । यान्या नैर्जती चान्येनैवं वारुणी वायव्या चोत्तरा चेशानी चेति ।
 तस्मादुल्कापातादीनि निमित्तानि शीघ्रमुपगच्छन्तीति । तेषां चाकारवर्णस्नेह-
 ममाणादियहर्शाभिधातादिभिः फलानि भवन्ति ॥ ६ ॥ उक्तञ्च गर्गेण महर्षिणा ।
 कृत्वाङ्गेषाङ्गकुशलं होरागणितनैष्ठिकम् । यो न पूजयते राजा स नाशमुप-
 गच्छति ॥ ७ ॥ वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिश्रहाः । अपि ते परि-
 पृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम् ॥ ८ ॥ अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा
 नभः । तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्य इवाध्वनि ॥ ९ ॥ सुहृत्तं तिथिनक्षत्रमृ-
 तवत्थायने तथा । सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात् सांवत्सरो यदि ॥ १० ॥

क्षण और दन्तकाष्ठादि आश्रित समस्त शुभाशुभनिमित्त इस संहितासे प्रगट हो
 जाते हैं । देवज्ञलोगोंको उचित है कि हमारे कार्योंमें मन न लगाकर संसारके और
 प्रत्येक पुरुषके लिये समस्त पार्थिव बातोंमें साधारण, असाधारण, समस्त शुभा-
 शुभको सर्वदा विचारें । परन्तु दिनरात इन बातोंका शुभाशुभ निर्णय करना अकेले
 आदमीका काम नहीं है; अन एव गृह्यत देवज्ञके साथ इस प्रकारके ज्ञात जानने-
 वाले औरमी चार आदमियोंको राजा नियत करे । तिनमेंसे एक आदमीको पूर्व
 और अग्निकोणकी बातें देखनी चाहिये । दूसरेको दक्षिण और नैर्ऋतकी, तीसरेको
 पश्चिम और वायुकोणकी, चौथेको उत्तर और ईशानकोणकी बातें देखनी चाहिये
 कि जिसने उल्कापातादि निमित्त शीघ्र भाव्य हो जाय । क्योंकि इन उल्कापा-
 तादिक फल भातार, वर्षा, ग्रेहममाणादि और ग्रह नक्षत्र व अभिधातादि के साहि-
 त्य होना है । गर्गसाधने कहा है—गाद्वीपांग कुशल, होरा और गणितविषयमें
 चतुर देवज्ञको जो गाना नहीं पृथक्ता है, वह शीघ्रही नाशको प्राप्त हो जाता है
 ॥ ६ ॥ ७ ॥ वनवासी, मनसादीन और कुठ न ग्रहण करनेवाले पुरुषमी, ग्रहन-
 क्षयदिनी गति जाननेवाले पंडितोंमें सब बातें पृच्छा करते हैं ॥ ८ ॥ दीपकहीन
 गांधी और गृह्यहीन आवागमनी ममान देवज्ञहीन राजामी ओभायमान नहीं होता;
 वान वर अन्येकी ममान कुपंयमें धूमा करता है ॥ ९ ॥ जिना देवज्ञके सुहृत्तं, तिथि,

तस्मादाज्ञाभिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणीः । जयं यशः श्रियं भोगान्
 श्रेयश्च समर्थाप्सता ॥ ११ ॥ नासांवत्सारिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता ।
 पशुर्भूतो हि यत्रैव पापं तत्र न विद्यते ॥ १२ ॥ न सांवत्सरपाठी च नरकेषूप-
 पद्यते । ब्रह्मलोकप्रतिष्ठायां लभते देवचिन्तकः ॥ १३ ॥ ग्रन्थतत्त्वार्थतथैतत्
 कृतं जानाति यो द्विजः । अथभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पञ्क्तिपावनः ॥ १४ ॥
 स्तेच्छा हि ययनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् । अपिबन्धेऽपि पूज्यन्ते
 किं पुनर्दशदिग्निजः ॥ १५ ॥ कुहकावेशापिहितः कर्णापश्रुतिहेतुभिः ।
 कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो न स देववित् ॥ १६ ॥ अपिदित्येव यः शास्त्रं
 देवज्ञत्वं प्रपद्यते । स पञ्क्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ॥ १७ ॥
 नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः । स व्रजत्यन्धतामिसं सार्धमृशविडं-
 पिना ॥ १८ ॥ नगरद्वारलोष्टस्य यद्वत् स्यादुपपाचितम् । आदेशस्तद्वदज्ञानां
 नक्षत्र, ऋतु और अयनादि सब उलट पलट हो जाय ॥ १० ॥ इस कारण
 जय, यश, श्री, भोग और मंगलार्थी राजाका विद्वान् और अग्रणी देवज्ञके निकट
 जाना अर्थात् सब कुछ जान लेना उचित है ॥ ११ ॥ जिस देशमें देवज्ञ न रहता
 होय, उस देशमें वास करना उचित नहीं है; क्योंकि सब बातोंका नेत्ररूप देवज्ञ
 जहां वास करता है वहांपर कोईभी पाप नहीं रहता है ॥ १२ ॥ देवज्ञके
 पास पढ़नेसे या देवज्ञको पढ़ानेसे नरकमें नहीं जाना पड़ता, वरन देवचिन्तक
 होनेसे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा मिलती है ॥ १३ ॥ जो ब्राह्मण इस विषयको ग्रंथके
 अनुसार वा अर्थके अनुसार वा मलीमांति जान लेते हैं, वह श्राद्धमें मथम
 भोजन करनेवाले और पंक्तिपावन होकर सब जगह पूजे जाते हैं ॥ १४ ॥
 स्तेच्छ या यवनके पागमी जो यह शास्त्र हो तो श्रद्धालोगोंकी समान उनकी
 भी पूजा करनी चाहिये; फिर देवचिन्तक ब्राह्मणके लिये इससे अधिक
 विशेष क्या कहा जाय ॥ १५ ॥ किसी प्रकारसे कुहक (माया, धोखा,
 जादूसाजी) गर्भसे टकरा हुआ अथवा कानोंसे श्रवण करनेके हेतु विशिष्ट अर्थात्
 निन्दामाजन होनेपर दौड़ते कोई बात न पूछे और देवज्ञमी न करे ॥ १६ ॥ जो
 पुरुष मित्र शत्रुके लोभे हुए देवज्ञ हो जाय, उस पंक्तिदूषक पापात्माको " नक्षत्र-
 सूचक " (पटिया) जाने ॥ १७ ॥ नक्षत्रसूचकके उपदेश दिये हुए उपरस्ता-
 दिको जो पुरुष पढ़ता है, वह आदमी उस नक्षत्रसूचकके साथ अंधतामिश्र नामक
 अरकमें पड़ता है ॥ १८ ॥ नगरद्वारलोष्टकी भार्येनाके (पक्षीशालग्रामादि

यः सत्यः स विभाव्यते ॥ १९ ॥ सम्पत्त्या योजितादेशस्तद्विच्छिन्न-
 कथाप्रियः । मत्तः शास्त्रैकदेशेन त्याज्यस्तादृक् महीक्षिता ॥ २० ॥
 यस्तु सम्पत्तिं जानाति होरागणितसंहिताः । अन्त्यर्च्यः स नरेन्द्रेण
 स्वीकर्तव्यो जयैषिणा ॥ २१ ॥ न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां वा चतुर्गु-
 णम् । करोति देशकालज्ञो यदेको दैवचिन्तकः ॥ २२ ॥ दुःस्वप्नदुर्विचिन्तित-
 दुःप्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि । शिप्रं प्रयान्ति नाशं शशिनः श्रुत्वा भसंवादम् ॥
 २३ ॥ न तथेच्छति भूपतेः पिता जननी वा स्वजनोऽथवा सुहृत् । स्वय-
 शोऽभिविवृद्धये यथा हितमानः सबलस्य दैववित् ॥ २४ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सांवत्सरसूत्रं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

आष्टेपार्थादक्षिणमुत्तरमयनं धनिशायम् । नूनं कदाचिदासीद् येनोक्तं
 पूर्वशास्त्रेषु ॥ १ ॥ साम्प्रतमयनं सावितुः कर्कटकायं मृगादितश्चान्यत् । उक्ता-
 जमिलापकी) समान, अज्ञानी पुरुषका आदेश कमी सत्यमी हो जाता है ॥ १९ ॥
 सम्पत्तियुक्त अर्थात् अनेक प्रकारके अर्थको बतानेवाले, अथवा सम्पत्तिहीन बातें
 निगमके अत्यन्त प्यारी हों, और थोड़ेसेही ज्ञानसे मतवाले होनेवाले दैवज्ञको
 राजा त्याग देवे ॥ २० ॥ होरा, गणित और संहितामें उत्तम ज्ञान रखनेवाले दैव-
 ज्ञको, जीतकी इच्छा करनेवाले राजा लोग पूजें और उसको अंगीकार करें ॥ २१ ॥
 एक देशकालका जाननेवाला दैवचिन्तक जो काम करनेकी सामर्थ्य रखता है उस
 कार्यको हजार दार्था या चार हजार घोंडे नहीं कर सके ॥ २२ ॥ दैवज्ञके मुखसे
 चन्द्रका नक्षत्रमंवाद श्रवण करनेसे बुरे स्वप्न, बुरे देखे हुए और बुरे कर्म इनका
 शीघ्रही नाश हो जाता है ॥ २३ ॥ दैवज्ञयोग अपना यश बढ़ानेके अर्थ चलवाले
 गुजावा इस प्रकार हित करने हैं कि जिस प्रकार उस राजाके पिता, माता, स्वजन
 और माई बन्धुमी नहीं कर सके ॥ २४ ॥

इति श्रीवाराहमिहिराचार्यविरचितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमृगदायादवास्तव्य-
 पाण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

निधरई किमी नमयमें आष्टेपा नक्षत्रके अर्द्धभागसे दक्षिणायन और धनि-
 शके प्रथमसे उत्तरायण प्रचलित था, नहीं तो पहिले शास्त्रोंमें इनका वर्णन क्यों

भावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः ॥ २ ॥ दूरस्थचिद्वेधादुदयेऽस्तमयेऽपि
वा सहस्रांशोः । छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति ॥ ३ ॥ अमाप्य मक-
रमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम् । कर्कटकमसम्प्राप्तो विनिवृत्तश्चोत्तरां
सैन्द्रीम् ॥ ४ ॥ उत्तरमयनमतीत्य व्यावृत्तः क्षेमसस्यवृद्धिकरः । प्रकृतिस्थधा-
प्येवं विकृतगतिर्नयकदुष्प्रांशुः ॥ ५ ॥ सप्तमस्कं पर्व विना त्वष्टा नामार्क-
मण्डलं कुरुते । स निहन्ति सप्त भूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षः ॥ ६ ॥ ताम-
सकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवग्रयपिंशात् । वर्णस्थानाकरिस्तान् दृष्ट्वां कलं
ह्यात् ॥ ७ ॥ ते चार्कमण्डलगताः पापफलाभ्यन्त्रमण्डले सीम्याः । ध्यातृस्त-
कबन्धमहरणरूपाः पापाः शशाङ्केऽपि ॥ ८ ॥ तेषामुदये रूपाण्यन्तः कलुषं
रजोवृत्तं व्योम । नगररुशिखरविमर्दां सशर्करो मारुतगण्डः ॥ ९ ॥ क्रतुपि-
परीतास्तरवो दीप्ता भृगुपाक्षिणो दिशां दाहः । निर्घातमहीकम्पादयो भवन्त्यत्र

होता ? परन्तु सूर्यका जो अयन इस समयमें प्रचलित है वह कर्कटकी आदि
और मकरके मध्यमसेही आरम्भ होता है इस विषयके अभावकोही विवृति करते
हैं; प्रत्यक्ष परीक्षा करनेसे जो टीक होगा उसकोही मध्यस्थित किया जायगा ॥ १॥२॥
सूर्यके उदय वा अस्तकालमें महामंडलकी दूरीके चिह्नोंके बंधमें अथवा महामण्ड-
लमें छायाके प्रवेश और छायाके निकलनेके चिह्नोंसे अयनकी परीक्षा होती
है ॥ ३ ॥ सूर्य विना मकराशिममें गये यदि लौट आये तो दक्षिण-पश्चिम दिशाका
नाश करते हैं, और जो विना कर्कराशितक गये लौट आये तो पूर्व उच्च दिशाको
नष्ट करते हैं, यदि उत्तरायणको लांघन लौट आये तो मंगल होता है, धान्यकी
पृष्टि होती है, इसको ही प्रकृतिस्थ सूर्य कहते हैं, सूर्यकी गति विवृत होनेमें भय
होता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ यदि विना पर्वकालके सूर्य अपने मंडलको ग्राह्युक्त से तम
मान राजाओंकी मृत्यु होयगी, और शत्रु अग्नि वा दुर्मिष आदिते मनुष्योंका
नाश होयगा ॥ ६ ॥ तामस और बौद्धकादे नामवाने गहरे पुत्र देतु के नाम
मकरके हैं, वर्ण, स्थान और आकाशदिसे सूर्यमंडलमें उनकी देखने पर निर्णय
करना चाहिये ॥ ७ ॥ यह यदि सूर्यमंडलमें जाय तो अमंगलकार है, परन्तु
चन्द्रमंडलमें जाय तो शुभफलकी देने हैं, जो यह चन्द्रमंडलमें बाध, बन्धन वा
शत्रुके रूपसे प्रकाशित होये तो अमंगलदायक है ॥ ८ ॥ इन बेनुओंका उदय
होनेसे मघहीमें उषल हुयल हो जाती है, जल मरने हो जाता है, व्याधिरोग
भूरी जा जाती है, परंतु और पृथक्के दिग्गजों में देन करनेवाला मण्डल परत परत ।

त्याताः ॥ १० ॥ न पृथक् फलानि तेषां शित्तिकीलकराहुदर्शनानि यदि ।
 दयकारणमेषां केत्वादीनां फलं ब्रूयात् ॥ ११ ॥ यस्मिन् यस्मिन् देशे
 नमायान्ति सूर्यविम्बस्थाः । तस्मिंस्तस्मिन् व्यसनं महीपतीनां परित्यज्यम्
 १२ ॥ शुत्प्रम्लानशरीरा मुनयोऽप्युत्सृष्टधर्मसंचरिताः । निर्मांसवालहस्ताः
 ऋणायान्ति परदेशान् ॥ १३ ॥ तत्स्करविलुप्तचित्ताः प्रदीर्घनिःश्वासमुकु-
 ताशिपुटाः । सन्तः सन्नशरीराः शोकोद्भववाष्परुद्धदृशः ॥ १४ ॥ क्षामा
 पुष्पमाताः स्वनृपतिपरचक्रपीडिता मनुजाः । स्वनृपतिचरितं कर्म च पराकृतं
 व्यन्त्यन्ये ॥ १५ ॥ गर्भेष्वरि निष्पन्ना वारिमुचो न प्रभूतवारिमुचः । सरितो
 न्ति तनुत्वं क्वचित् क्वचिज्जायते सस्यम् ॥ १६ ॥ दण्डे नरेन्द्रमृत्युव्याधिजयं
 त्व कवन्धसंस्थाने । घ्वाङ्क्षे च तत्स्करजयं दुर्भिक्षं कीलकेऽर्कस्थे ॥ १७ ॥
 नौपकरणरूपैश्छत्रध्वजचामरादिभिर्विद्धः । राजान्यत्वल्लदर्कः स्फुलिङ्गधू-
 ती है, वृक्ष ऋतुमे विपरीत हो जाते हैं मृग और पक्षी इत्यादि प्रदीप्त दिशा-
 की ओर दौड़ते या शब्द करते हैं, दिग्दाह, निर्घात और भौंचाल आदि बडे़ २
 पात होते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ इन राहुके पुत्रोंमें यदि बाण या माम्भादि रूप-
 डे राहुका दर्शन होय तो पहिलेकी समान फल कहना चाहिये इस प्रकारसे उनके
 इसका कारण और वेतु आदिका फलाफल निर्णय करे ॥ ११ ॥ सूर्यविम्बवाले
 नु जिन जिन देशोंमें दिखाई दें, उन्हीं २ देशोंके राजाका अमंगल होयगा ॥ १२ ॥
 के उदय होनेसे मुनिलोगभी भृंगसे थकित देहवाले और स्वधर्म व श्रेष्ठ चरित्रसे
 न होकर मांसहीन चालमैको हाथमें लेकर अतिकष्टसे दूसरे देशोंमें जायेंगे ॥ १३ ॥
 धुओंके पिछने तत्सर चुरा लेंगे, इस कारण वह लम्बे लम्बे मांस छोड़ने हुए
 में आँख बंदने व्याकुल देहसे शौम्नके मारे गद्गद धँट होकर रहेंगे ॥ १४ ॥
 त कारणसे मनुष्य अपने राजा या दूसरे राजघरसे अत्यन्त दुचले होकर निन्दा-
 ती हो जायेंगे, कोईस्वदेशीय राजाके चरित्र या पगलून कर्मकी निन्दा करेंगे
 १५ ॥ वे ३ गर्भभुक्त होगएहो गँगे, बहुनता जल नहीं देंगे, नदियों कम जलवाली
 जायेंगी, धान कहीं कहीं उत्पन्न होगा ॥ १६ ॥ सूर्यमण्डलमें दण्डाकार
 दृशितर्द देनेसे राजाका मरण होता है, कवन्ध दिखाई देनेसे व्याधिका
 य उत्पन्न होता है, घ्वाङ्क्षज दिग्गर्द देनेसे चोरभय और स्वाम्यका
 मरण होयदेने अकार्य होता है ॥ १७ ॥ राजाके उपकरणरूप छत्र,

१. दिग्दा इत्यादि दिशाभौंका वर्जन शत्रुनाशकायमें गरेंगे ।

मादिभिर्जनहा ॥ १८ ॥ एको दुर्भिक्षकरो द्वयादाः स्युर्नरपतेर्विनाशाय ।
 सितरक्तपीतकृष्णैस्तेर्विद्वोऽर्कोऽनुवर्णव्रतः ॥ १९ ॥ दृश्यन्ते च यतस्ते रविवि-
 ष्वस्योत्थिता महोत्पाताः । आपच्छति लोकानां तेनैव त्रयं प्रदेशेन ॥ २० ॥
 ऊर्ध्वकरो दिपसकरस्ताम्रः सेनापतिं विनाशयति । पीतो भरेन्द्रपुत्रं श्वेतस्तु
 पुरोहितं हन्ति ॥ २१ ॥ चित्रोऽथवापि धूम्रो रविरग्निर्व्याकुलां करोति
 महीम् । तत्करशस्त्रनिपनिर्पदि सलिलं नाशु पातयति ॥ २२ ॥ ताम्रः कपिलो
 वाकः शिशिरे हरिकुंकुमच्छविभ मधो । आपाण्डुकनकवर्णो ग्रीष्मे वर्षासु
 शुद्धय ॥ २३ ॥ शरदि कमलोदराग्नौ हेमन्ते रुधिरसन्निभः शस्तः । प्रावृद्ध-
 काले स्निग्धः सर्वतुलितोऽपि शुभदायी ॥ २४ ॥ रुक्मः श्वेतो विमान् रक्ताग्नः
 क्षत्रियान्विनाशयति । पीनो वैश्यान् कृष्णस्ततोऽपराण् शुभकरः स्निग्धः ॥ २५ ॥

ध्वज, चामरादि चिह्न यदि सूर्यमण्डलमें विधे हुए हों तो राज्यकी बदली होती है
 और चिनगारी या भूमादिते दक जानेपर सब मनुष्योंकी मृत्यु होती है ॥ १८ ॥
 पूर्वोक्तोक्त छत्रादि एक चिह्नसे सूर्य विद्व होवे तो दुर्भिक्ष होता है, दो आदिसे
 विद्व होवे तो राजाका नाश होता है, सपेद, लाल, पीला और काला इन वर्णवाले
 पूर्वोक्त चिह्नसे विद्व होनेपर क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका नाश होता
 है ॥ १९ ॥ उत्पन्न हुए यह महाउत्पात रविविष्वममें जहां कहीं दिखाने देंगे, उस
 देशके रहनेवाले सब लोगोंको मय होगा ॥ २० ॥ सूर्यके ऊपर भागकी किरण जो
 ताम्ररंगकी होय तो सेनापनिका नाश होता है, पीतरंगकी होय तो राजपुत्रका और
 श्वेतवर्णकी होय तो राजपुरोहितका नाश होता है ॥ २१ ॥ सूर्यका किरणमण्डल यदि
 अनेक रंगोंसे रंगा हुआ होय अथवा धूम्रवर्ण होय, यदि शीघ्र वर्षा न हो तो
 सीरोंसे या शस्त्रनिपानादिमें समस्त पृथ्वी व्याकुल होपगी ॥ २२ ॥ सूर्यमण्डल
 शिशिरकालमें ताम्रवर्ण या कपिलवर्ण, वसन्तकालमें हरित कुमकुमकी समान,
 ग्रीष्मकालमें कुण्डलक पाण्डुवर्ण (श्वेत और पीत मिला हुआ) और स्वर्णकी
 समान, वर्षाकालमें शुद्धवर्ण, शरदकालमें कमलके गर्भकी छविके समान और हेम-
 न्तकालमें रक्तवर्ण होनेपर शुभकारक है, परन्तु वर्षाकालमें सिन्ध होनेपर अशुभ
 होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ रुक्म या श्वेतवर्ण होनेसे ब्राह्मणोंका नाश होता है,
 रक्ताग्नि आमायुक्त होनेपर क्षत्रीका नाश, पीतवर्णसे वैश्यका और काला वर्ण होनेसे
 शूद्रका नाश होता है, सूर्यके इन सब रंगोंमें चमक हो तो शुभ होता है ॥ २५ ॥

ग्रीष्मे रक्तो भयरुद्धर्पास्वासितः करोत्यनावृष्टिम् । हेमन्ते पीतोऽर्कः करोत्यचिरेण
 रोगभयम् ॥ २६ ॥ सुरचापपाटिततनुर्नृगतिविरोधप्रदः सहस्रांशुः । प्रावृष्ट-
 काले सद्यः करोति विमलद्युतिवृष्टिम् ॥ २७ ॥ वर्षाकाले वृष्टिं करोति सद्यः
 शिरोपपुष्पाक्षः । शिखिपत्रनिभः सलिलं न करोति द्वादशाब्दानि ॥ २८ ॥
 श्यामेऽर्के कीटभयं भस्मनिभे भयमुशान्तिं परचक्रात् । यस्यर्क्षे सच्छिद्रस्तस्य
 विनाशः क्षितीशस्य ॥ २९ ॥ शशरुधिरनिभे भानो नभस्तलस्ये भवन्ति
 संध्रामाः । शशिसदृशे नृपतिवधः क्षिप्रं चान्यो नृगो भवति ॥ ३० ॥ शुन्मार-
 रुद्धनिभः खण्डो नृपहा विदीधितिर्भयदः । तोरणरूपः पुरहा छत्रनिभो देश-
 नाशाय ॥ ३१ ॥ ध्वजचापनिभे युद्धानि भास्करे वेपने च रूक्षे च । कृष्णा-
 रेखा सवितरि यदि हन्ति नृपं ततः सचिवः ॥ ३२ ॥ दिवसकरमुदयसंस्थित-

ग्रीष्मकालमें सूर्यका मण्डल लाल होवे तो प्राणियोंको भय होता है, वर्षाकालमें
 कृष्णवर्ण हो तो अनावृष्टि होती है और हेमन्तकालमें पीतवर्ण होय तो शीघ्रही
 रोगमय होता है ॥ २६ ॥ जो सूर्यमण्डल वर्षाके समय इन्द्रका चाप सन्मुख आ
 पदनेसे खण्डित देहवाला दिखाई दे तो राजाओंमें विरोध होता है, यदि निर्मल
 किरणवाला दीखे तो शीघ्रही वृष्टि होती है ॥ २७ ॥ यदि वर्षाकालमें सूर्यविम्ब
 शिरीषके फूलकी समान आभावाला ज्ञात हो तो शीघ्र वर्षा होयगी, परन्तु मोरकी
 पंखके समान आभावाला दिखाई दे तो बारह वर्षतक अनावृष्टि होयगी ॥ २८ ॥
 सूर्यका विम्ब श्यामवर्णवाला हो तो (देशमें) कीटभय, राखकी समान वर्णवाला
 हो तो पराक्रम भय होता है और जिस राजाके जन्मनक्षत्रमें विराजमान
 सूर्यमें छिद्र दिगाई दे तो उस राजाका नाश हो जाता है ॥ २९ ॥
 जो सूर्यका रंग सफेदके समान शोणित हो तो युद्ध होता है और चन्द्रमा-
 की समान रंगवाला दिखाई दे तो शीघ्रही उस देशके राजाका नाश होकर दूसरा
 राजा हो जाता है ॥ ३० ॥ जो सूर्यमण्डल घड़ेके आकारसा दिखाई दे तो (प्राणि-
 मय) सुख का भय होने पर प्राण छोड़ें, खण्डाकार होनेपर राजाका नाश होता है;
 शिखीरूप का होता है, तोरण (फाटक) रूप होनेपर नगरका नाश
 होता है, उ॥ ३१ ॥ जो सूर्यका विम्ब कम्पो-
 यनाकार का अथवा धनुष या ध्वजके समान हो तो संध्राम होता है, यदि सूर्यम-
 ण्डलमें रेखा दिखाई दे तो मंत्रीमें राजाका नाश होता है ॥ ३२ ॥ उल्का,
 यत्र या विजयो जो उदयकालमें सूर्यको टकरा दे तो वर्तमान राजाका नाश होकर

सुल्काशनिविद्युतो यदा हन्युः । नरानिमरणं विद्यात् तदान्यराजपतिष्ठां
च ॥ ३३ ॥ पतिदिवसमहिमाकिरणः परिवेषी सन्ध्यपोद्गपोरथवा । रक्तोऽस्त-
मेनि रक्तोऽदितश्च भूवं करोत्यन्यम् ॥ ३४ ॥ ग्रहरणमदृशोर्जलदः स्यागितः
सन्ध्यद्वयेऽपि रणकारी । मृगमहिषविहगखरकरभमदृशरूपश्च भयदायी ॥ ३५ ॥
दिनकरकरागितानादक्षमवानोति सुमहती पीडाम् । भवति च पश्चाच्छुद्धं
कनकमिव हुताशरस्तापात् ॥ ३६ ॥ दिवसकृतः पतिसूर्यो जलरुदुग्दक्षिणे
स्थितोऽविलकृत् । उभयस्यः सलिलभयं नृमुगारि निहन्त्यधो जनहा ॥ ३७ ॥
रूपिनिभो विपत्यवनिसान्तकरो न चिरात् । परपरजोऽर्णोरुनननुपदि
वा दिनकृत् ॥ ३८ ॥ अस्तिविचित्रनीलपुरुषो जनवानकरः । सगमृग-
भैरवखररुन्ध निशाद्यमुखे ॥ ३९ ॥ अमलवपुरवक्रमण्डलः स्फुटाविपुलामल-

दूसरे राजाकी प्रतिष्ठा होती है ॥ ३३ ॥ जिस देशमें सूर्यदेव पतिदिन प्रातःकालमें
और सन्ध्याकालमें परिधिवाले (पीपयुक्त) होते हैं अथवा लाल रंगवाले धारण करते
उदय होते और छिपते हैं उम देशमें निधपदी दृग्गता गजा होना है ॥ ३४ ॥
यदि प्रातःकाल और सन्ध्याकालमें सूर्यधिम्य शरवरी गमान आकाशवाण बादलोंमें
धिर जाय तो शुद्ध होगा और मृग, महिष, पक्षी, गधे और हाथीकी गमान मर्गमें
दृक् जाय तो अत्यन्त भय होगा ॥ ३५ ॥ जैसे अग्निमें तापमें मृगण अत्यन्त
पीडाको प्राप्त होकर पीछेसे शुद्ध हो जाता है, वैसेही गमरन नक्षत्र सूर्यकी चित्रणोंसे
गन्तापमें पाठ पाकर फिर शुद्ध होते हैं ॥ ३६ ॥ सूर्यदेवकी उत्तर दिशामें यदि
पतिनृप्य दिखलाई दे तो वृष्टि होगी, दक्षिणदिशामें दिखलाई देनेसे आर्षा मृकान
होगा, सूर्यकी दोनों ओर दिखलाई देनेसे जलमय, नीचे दीप्तनेसे लोहदिनाश और
ऊपर दीप्तनेसे राजाका विनाश होता है ॥ ३७ ॥ यदि आकाशमें ऊपर भागमें
सूर्य लालरंगवा दिखलाई दे, या भयंकर भूगिरी गतिसे लाल वर्णवा दिखलाई दे
तो शीघ्रही राजाकी मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥ जो सूर्यका चित्र कृष्णवर्ण, शिथि-
भरण अथवा नीलवर्ण होकर भयंकर आकर धारण करे और जो सन्ध्याकालमें
पक्षी और मृगोत्त शब्द गधेके शब्दकी गमन भयंकर हो तो उष लोकोत्त
विनाश हो जात है ॥ ३९ ॥ जो सूर्य निर्मल देहवाला, मोदकदन्तावा, गच्छ २
आयत निर्मल दीर्घ चित्रणवाला हो और उमकी देह चित्रणवाला हो रंगही दिख-
१ सूर्योऽदयकालमें जो रक्तार्थ सूर्यकी समान पदार्थ दिखता है उसको ही
प्रतिमूर्त्य कहते हैं ।

मगधान्मथुरां च पीडयेद् वेणायाश्च तटं शशाङ्कजः । अपरत्र कृतं युगं वदेद् यदि
 भित्त्वा शशिनं विनिर्गतः ॥ २६ ॥ क्षेमरोग्यसुमिदाविनाशी शीतांशुः शिस्तिना
 यदि भिन्नः । कुर्प्यादायुधजीविनिनाशं चौराणामधिकेन च पीडाम् ॥ २७ ॥
 चल्कया यदा शशी ग्रस्त एव हन्यते हन्यते तदा नृपो यस्य जन्मनि स्थितः
 ॥ २८ ॥ भस्मनिजः परुषोऽरुणमूर्तिः शीतकरः किरणैः परिहीणः । श्यावतनुः
 स्फुटितः स्फुरणो वा क्षुत्समरामयचौरभयाय ॥ २९ ॥ भ्रात्रेयकुन्दकुमुदस्फटि-
 कायदातो यत्रादिवाद्रिसुतया परिमृज्य चन्द्रः । उच्चैः कृतो निशी भविष्यति मे
 शिवाय यो दृश्यते स भविता जगतः शिवाय ॥ ३० ॥ यदि कुमुदमृणालहारगौर-
 स्तिथिनियमात् क्षयमेति वर्द्धते वा । अविकृतगतिमण्डलांशुयोगी भवति नृणां
 विजयाय शीतरश्मिः ॥ ३१ ॥ शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे प्रवृद्धिं ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं
 प्रजाश्च । हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन ॥ ३२ ॥
 इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां चन्द्रचारश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

करके नाश कर देता है ॥ २५ ॥ जो बुध ग्रह चन्द्रमाको मेदकरके निकलता हो
 तो मगध, मथुरा और वेणा नदीके किनारे बसे हुए देशोंको पीडित करता है और
 पश्चिम देशमें सतयुगकी उत्पत्ति होती है ॥ २६ ॥ जो केतुसे चन्द्रमा पीडित
 होता ही तो अमंगल, व्याधि, दुर्भिक्ष व शस्त्रसे जीविका करनेवालोंका नाश होता
 है और तस्कर लोगोंको अत्यन्त पीडा होती है ॥ २७ ॥ राहु या केतुसे ग्रस्त
 चन्द्रमाके ऊपर जो उल्का गिरे तो जिस राजाके जन्मनक्षत्रपर चन्द्रमा हो, उस
 राजाकी मृत्यु होती है ॥ २८ ॥ जो चन्द्रमाका देह भस्मतुल्य रूखा, अरुणवर्ण,
 विरणहीन, श्यामवर्ण, फूटा हुआ अथवा कम्पमान दिखाई दे तो क्षुधा, संग्राम,
 रोग अथवा चोरोंका भय होता है ॥ २९ ॥ मानो कि राधिकालमें हमारे लिये यह
 अत्यन्त सुखदायक होगा इस विचारसे हिमाचलमुक्ता पार्वतीजीके द्वारा यत्नसाहित
 मार्गित होकर बढनेसे जो चन्द्रमा हिमकण, कुन्दपुष्प, कुमुदकुसुम अथवा
 स्फटिक (बिट्टौर) की समान शुभ्रवर्णवाला होता है, वह चन्द्रमाही जगत्की
 शुभदाई है ॥ ३० ॥ जो शीतरश्मि चन्द्रमा कुमुद, मृणाल या हारकी समान
 शुभ्रवर्णवाला होकर तिथिके नियमानुसार घटता घटता है, जिसके मण्डलमें विकार
 नहीं आता, जो गाने और किरणोंसे युक्त होता है, विससे सब मनुष्योंकी विजय
 होती है ॥ ३१ ॥ शुक्लपक्षमें किसी तिथिके बढ जानेसे पक्ष बढ जाय और चंद्रमा

पञ्चमोऽध्यायः ।

अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः क्लिप्तानुरस्येदम् । प्राणैरपरित्यक्तं
ग्रहतां यातं वदन्त्येके ॥ १ ॥ इन्द्रकर्मण्डलाकृतिरसितत्वात् किल न दृश्यते
गगने । अन्यत्र पर्वकालाद् वरप्रदानात् कमलयोनेः ॥ २ ॥ मुखपुच्छाविभ-
क्ताङ्गं भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये । कथयन्त्यमूर्तमपरे तमानयं सैहिकेया-
स्पम् ॥ ३ ॥ यदि मूर्ता भावेचारी शिरोऽथवा भवति मण्डली राहुः । भगणा-
र्थेनान्तरितो गृह्णाति कथं नियतचारः ॥ ४ ॥ अनियतचारः खलु चेदुपलब्धिः
सङ्ख्यया कथं तस्य । पुच्छानमाभिधानोऽन्तरेण कस्मान्न गृह्णाति ॥ ५ ॥
अथ तु भुजगेन्द्ररूपः पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णाति । मुखपुच्छान्तरसंस्थं
अनिशय वृद्धिके प्राप्त होवे तो ब्राह्मण, क्षत्री और प्रजागण अत्यन्त बढ़ते हैं, जो
ऐसेही चन्द्रमा हीन हो तो सबकी हानि होती है, सम होवे तो सबको समता प्राप्त
होती है, परन्तु कृष्णपक्षमें हो तो इसका फल विपरीत होता है ॥ ३९ ॥

इति श्रीबराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पञ्चमोत्तरदेशीयपुरा-
दावादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रनादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

कोई २ पण्डित कहते हैं कि राहुनामक अमुरका यह मस्तक कट जाने-
परमी अमृत पीनेके विशेष हेतुकरके प्राणहीन न होकर (राहुरूप) ग्रहपनको प्राप्त
हुआ है, परन्तु सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डलकी समान आकृतिवाला राहु कृष्णवर्ण
हीनेसे अक्षरार्थके वरदान हेतुकरके ग्रहण समयके अतिरिक्त और किसी समय
आकाशमें दिखाई नहीं देता ॥ १ ॥ २ ॥ कोई २ पण्डित कहते हैं कि यह राहु
शुद्ध और पृष्ठवाला सर्पाकारका है और पण्डित कहते हैं कि इस राहुका कोईभी
आकार नहीं है, वरन यह अंधकारमय है ॥ ३ ॥ यह आकाशमें घूमनेवाला राहु
जो शरीरधारी या मस्तकाकार अथवा मंडलमय होता नो यह नियत गतिवाला राहु
सगणार्थ अर्थात् छः राशिके अंतरपर होकरमी किन् प्रकारसे ग्रहण करता है ॥ ४ ॥
यदि राहुकी गतिमें किसी प्रकारकी स्थिरता न होनी तो गणितके द्वारा वित्त
प्रकारसे उसका ज्ञान हो सकता और यदि यह मुखपृष्ठवाले आकारका होता तो
अमावस्या या पूर्णिमाके सिवाय और समय ग्रहण क्यों नहीं होता ॥ ५ ॥ जो
इसका आवरण सर्पकी समान होता तो बगी मुखसे और बगी पृष्ठसेभी ग्रहण

स्थगयति कस्मान्न भगणार्थम् ॥ ६ ॥ राहुद्वयं यदि स्याद् ग्रस्तेऽस्तमितेऽथो
 दिते चन्द्रे । तत्समगतिनान्येन ग्रस्तः सूर्योऽपि दृश्येत ॥ ७ ॥ भृच्छायां स्वयं
 हणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः । प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्जनोश्च पूर्वार्धात्
 ॥ ८ ॥ वृक्षस्य स्वच्छाया यथैकपार्श्वेन भवति दीर्घा च । निशि निशि तद्वत्
 भूमेरावरणवशाद्विनेशस्य ॥ ९ ॥ सूर्यात् सप्तमराशौ यदि चोद्गदक्षिणेन नाति
 गतः । चन्द्रः पूर्वार्धेमुखश्छायाभौर्विं तदाविशति ॥ १० ॥ चन्द्रोऽधःस्थः
 स्थगयति रविमम्बुदवत्समागतः पश्चात् । प्रतिदेशमतश्चित्रं दृष्ट्विशाब्दात्करय
 हणम् ॥ ११ ॥ आवरणं महदिन्द्रोः कुण्ठविषाणस्ततोऽर्धसञ्छन्नः । स्वत्
 रवेर्यतोऽनस्तीक्ष्णविषाणो रविर्भवति ॥ १२ ॥ एवमुपरागकारणमुक्तमि
 दिव्यदग्निराचार्यैः । राहुः कारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः ॥ १३ ॥
 योऽस्तावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणायमाज्ञतः । आप्यायनमुपरागे दत्तहुता

हो जाया करता और कमी मध्यस्थलद्वारामी ग्रहणकी सम्भावना हुआ करती ॥ ६ ॥
 यदि कोई कहे कि दो राहु हैं, तो एक राहुसे चन्द्रमा ग्रस्त होता, उदय होता
 अथवा छिप जाता, तब यह दिखाई देता कि उसकी समान चलनेवाले दूसरे राहुसे
 सूर्यभी ग्रसित हो गया है ॥ ७ ॥ जो कुछमी हो, चंद्रग्रहणके समय चंद्रमा
 पृथ्वीकी छायामें प्रवेश करता है और सूर्यग्रहणके समय सूर्यमेंडलमें प्रवेश करता
 है, यही कारण है कि पश्चिम दिशासे चंद्रग्रहण और पूर्व दिशासे सूर्यग्रहण
 आरम्भ नहीं होता ॥ ८ ॥ जिस प्रकार किसी एक वृक्षकी छाया सूर्यका आवरण
 करके एक ओरहीकी फैलती है, वैसेही सूर्यके आवरण होनेके कारण पृथ्वीकी
 छायामें प्रतिदिन दीर्घ होती है ॥ ९ ॥ जिस समय चंद्रमा सूर्यकी सातवीं राशि
 रहकर उत्तर दक्षिणकी अधिक दूर नहीं गमन करता, तब चंद्रमा पूर्वमुखमें आगम
 करके पृथ्वीकी छायामें प्रवेश करता है ॥ १० ॥ (सूर्यग्रहणके समय) सूर्य
 नीचे स्थित हुआ चन्द्रमा, पश्चिम दिशासे आकर मेघकी समान सूर्यविम्बको दृ
 ष्टेता है, यही कारण है कि सूर्यका ग्रहण दृष्टिके वश होकर प्रतिदेशमें अनेक
 प्रकारसे होता है ॥ ११ ॥ इस प्रकार चन्द्रमाका आवरण अधिक होनेसेही अर्द्ध
 ग्रस्त चन्द्रमाका शृङ्ग अनिशय कुण्ठित होता है और सूर्यका आवरण बहुत
 कम होता है, इमां कारणसे सूर्यका शृङ्ग अत्यन्त तीक्ष्ण होता है ॥ १२ ॥ दिव्य
 दृष्टिवाले आचार्य लोगोंने इस प्रकारसे ग्रहणका कारण बताया है, परन्तु ग्रहण होने
 विषयमें राहुके कारण कहना शास्त्रसद्भाव मात्र है ॥ १३ ॥ राहुनामक मा

रोन ते भाविता ॥ १४ ॥ तस्मिन् काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते
राहुः । याम्योत्तरा शशिशिर्गणितेऽप्युपचर्यते तेन ॥ १५ ॥ न कथञ्चिदपि
निमित्तेर्यहणं विज्ञायते निमित्तानि । अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्ययो
त्यातरूपाणि ॥ १६ ॥ पञ्चग्रहसंयोगात् किल ग्रहणस्य सम्भवो
भवति । तैलश्च जलेऽष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विप्रश्नादिः ॥ १७ ॥ अवन-
त्पार्के ग्रासो दिग् ज्ञेया वलनयावनत्या च । विव्यवसानाद्रेला करणे कथि-
तानि तानि मया ॥ १८ ॥ पण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वशाः सम देवताः क्रमशः ।
ग्रहशरीन्द्रकुबेरा वरुणाग्रियमाश्च विज्ञेयाः ॥ १९ ॥ मासे दिनशुद्धि-
क्षेमरोगपाणि सस्यसम्पच । तद्वत्सीम्ये तस्मिन् पीटा विदुषामवृष्टिश्च ॥ २० ॥
पेन्ने भूपविरोधः शरदसस्यक्षयो न च क्षेमम् । कीबेरेऽर्पणीनामर्थविनाशः

रको ब्रह्मजीन पेसा वर दिया था कि “छोग ग्रहणके समय जो होम
करोगे उसहीके अंशसे तुम रुत होगे = ॥ १४ ॥ इसी कारणसे ग्रहणके
समय राहुका सान्निध्य होना है और इसीसे गणितमें चन्द्रमाकी गतिभी
उत्तराशिममें होती है; भत और विस्ती समयमें ग्रहण नहीं हो सकता ।
यदि और किसी समयमें ग्रहणका लक्षण निरूपित किया जाय तो वह
उत्पातका रूप गिना जाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ पांच ग्रहोंके एकडे मेलने भी ग्रहण
नहीं हो सकता और अहमीके दिन जलमें तेल डालना जो शास्त्रमें लिखा है हम
लिखेकामी पाँदित लोगोंको विश्वास न करना चाहिये ॥ १७ ॥ अवनतिके द्वारा
सूर्यका ग्रास और वलन व अवनतिके द्वारा दिक् और तिथिके अरसानानुसार
समयका ग्रास प्रकार निरूपण करना चाहिये तो हम अपने बनाये बरण ग्रन्थमें
बढ़ आये हैं ॥ १८ ॥ ब्रह्मा, चन्द्र, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि और यम ये गान
देवता पण्मासोत्तर वृद्धिके अनुसार ग्रहणके मालिक हैं ॥ १९ ॥ गिया ग्रहणमें
ब्रह्मा मालिक है उस समयमें दिन और पशुओंकी वृद्धि होती है, बंगल आरोग्य
और धान्यसम्पत्ति होती है । चन्द्रमाके समयमेंभी पेसा हो होता है और पंडितोंको
पीटा व अनावृष्टि होती है ॥ २० ॥ ग्रहणमें इन्द्रके मालिक होनेके समय राजाओंमें
विरोध होता है, शरदऋतुके धान्यका नाश होता है, अमंगल होता है, कुबेरके

१ शास्त्रमें लिखा है कि अहमीके दिन पानीमें तेल डालनेसे वह तेल जिस दिशामें न
फेले उसी दिशामें ग्रहणकी शक्ति होगी, जिसकी दिशामें दिशामें ग्रास होगा । तदा च
गर्गः-तज्जहम्यां जले तैलं श्लेष्यता स्वानं विनिर्दिशेत् । ” इत्यादि ।

सुनिश्चिं च ॥ २१ ॥ वारुणमवनीशाशुतमन्येषां क्षेमसत्यवृद्धिकरम् । आषेयं
मित्राख्यं सत्पारोग्याभयान्धुकरम् ॥ २२ ॥ याम्यं करोत्यवृष्टिं दुर्मिश्रं संज्ञं
च सत्पानाम् । यदतः परं तदशुभं शुन्मारावृष्टिदं पर्व ॥ २३ ॥ वेलाहो
पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च । अतिवेले कुसुमफलक्षयो भयं सत्पना-
शश्च ॥ २४ ॥ हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् । स्फुटगणित-
विदः कालः कथञ्चिदपि नान्यथा भवति ॥ २५ ॥ यद्येकस्मिन् मासे
ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपाः । स्वयलक्षोभैः संक्षयमायान्यतिशङ्को-
यन् ॥ २६ ॥ यस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ । सर्वप्रती-
दुर्मिश्रमरक्षदौ पासदंष्ट्रौ ॥ २७ ॥ अर्धोदितोऽरोको नैऋतिकावृ हनि-
मन्वरहोऽथ । अम्बुपुर्जाविशुणाधिकविप्राभमिणोऽ्युगाभ्युदितः ॥ २८ ॥

समय धनियोक्ते धनका नाश होता और सुमिश्र होता है ॥ २१ ॥ वरुणके सम-
यमें गताष्टोत्तर अशुभ होता है, सौम्योका भंगल होता है, धान्यकी वृद्धि होती है,
अग्नि, मार्ग, होनेके मित्र कहते हैं, इसके समयमें धान्य, आरोग्य, अमय और
निराशा होती है ॥ २२ ॥ तिसा समयमें ग्रहणका मालिक यम होता है, उस
समयमें धान्य होनेमें अनावृष्टि, दुर्मिश्र और धान्यकी हानि होती है, इसके अति-
शय, हीन समयमें ग्रहण होनेमें शुभा, महामारी और अनावृष्टि होती है ॥ २३ ॥
देवर्षि, सारद, रविको अनाथे हुए बालके पहले ग्रहण होनेसे गर्भोंको मय
होता है, अथवा बला होता है और अतिवेला अर्धोत् गणितके नियत किये काष्ठके
कोष्ठे धान्य होनेमें अम्बुपुर्जा नाश, मय और धान्यका नाश होता है ॥ २४ ॥
हीन काल अतिवेला कालमें ग्रहणका काल पहले जात्रोंको देवर्षि इस प्रकार
निर्दिष्ट हुए, धान्य, शुभ, गणितका जाननेवाला जो समय बतावेगा ॥
२५ ॥ यदि एक महीनेमें सूर्य चन्द्रम-
से एक बार हो तो गताष्टोत्तर अनाथे अनाथे हलवाली मय जानेमेही शायदे
मय होते हैं और अशुभ और अशुभही होता है ॥ २६ ॥ जो सूर्य चन्द्रम-
से एक बार हो तो अशुभ अशुभ हो या मय हो और
के अशुभके अन्व और अशुभ नाश होता है और मयही पाव ग्रहण
होने होने हुए जो अशुभ अशुभ होनेका दुर्मिश्र और अति वेदनी है ॥ २७ ॥
जो सूर्य चन्द्रम-से एक बार हो तो अशुभ अशुभ हो या मय हो निरुद्धि
(अतिवेला होने हुए जो अशुभके अन्व) समयमें अशुभ नाश काला है भी

कर्पक रापण्डिवणिक् सत्रियबलनाथकान् द्वितीयेशे । कालकशूदम्लेच्छान् स्वतृ-
तीयांशे समन्त्रजनान् ॥ २९ ॥ मध्याह्ने नरपतिमध्यदेशहा शोभनभ्र धान्यार्यः ।
तृणभुगमात्पान्तःपुरवैश्वन्नः पञ्चमे स्वांशे ॥ ३० ॥ स्रीशूद्रान् पष्ठेशे दस्यु-
प्रत्यन्तहास्तमयकाले । यस्मिन् स्वांशे मोक्षस्तत्प्रोक्तानां शिवं भवति ॥ ३१ ॥
दिनवृत्तीनुदगपने विद्वद्भूतान् दक्षिणायने हन्ति । राहुरुदगादिदृष्टः प्रदक्षिणं
हन्ति विमादीन् ॥ ३२ ॥ म्लेच्छान् विदिक्स्थितो पापिनभ्र हन्यादुताथ-
सत्कांश्च । सलिलचरदन्तिघातो याम्येनोदगवामशुभः ॥ ३३ ॥ पूर्वणं सलिल-
पूर्णां करोति वसुधां समागता दैत्यः । पश्चात्कर्पकसेवकबीजविनाशाय नि-

यदि अयुष्म १ ३ ५ ७ आकाशोदशमें ग्रहणका आरम्भ हो जाय तो अग्निसे
जीविका करनेवाले मुनार मुरजी आदि, गुणाधिक ब्राह्मण और आश्रममें रहनेवा-
लोंका नाश करता है ॥ २८ ॥ जो आकाशके दूसरे अंशमें ग्रहणका आरम्भ हो
जाय तो किसान, पाखण्डी, वणिक्, क्षत्री और मेनांक स्वामीका नाश हो जाता
है, जो आकाशके तीसरे अंशमें ग्रामका आरम्भ होवे तो कारुक (शिल्पसे
जीविका करनेवाले), शूद्र, म्लेच्छ और मंत्रियोंका नाश हो जाता है ॥ २९ ॥
जो आकाशके बीच भागमें अर्थात् मध्याह्न कालमें ग्रहण आरम्भ होवे तो राजाका
मध्यदेश नष्ट होता है, धान्यका मूल्य मुहता हुआ होता है । आकाशके पंचम भाग-
में ग्रहणका आरम्भ होनेसे तृणमोजन करनेवाले, मंत्री, अन्तःपुर और वैश्योंका
नाश होता है ॥ ३० ॥ आकाशके छठे भागमें ग्रहण होनेसे स्त्री, शूद्र और सप्तम
भागमें अर्थात् अस्तकालमें ग्रहणका आरम्भ होनेसे चोर और गद्दर आदि म्लेच्छ-
देशवातियोंका नाश होता है परन्तु आकाशके जिस अंशमें मोक्ष अर्थात् ग्रहणका
शेष होता है, तिस २ भागके कहे हुए देशोंका और तहांके प्राणियोंका शुभ होता
है ॥ ३१ ॥ उत्तरायणमें ग्रहण होनेसे ब्राह्मण और सत्रियोंकी हानि होती है,
दक्षिणायनमें होनेसे वैश्य और शूद्रोंकी हानि होती है और उत्तर, पूर्व, दक्षिण
और पश्चिम इन चारों दिशाओंमेंसे जो किसी दिशामें राहु दिखाई दे तो दक्षिण
पर्यायक्रमसे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रजातिकी हानि है ॥ ३२ ॥ ईशानको-
णमें दिखाई दे तो म्लेच्छजाति, अप्रिकोणमें दिखाई दे तो पायिक, दक्षिणमें जल-
चर और हस्ती और उत्तरमें गायदोगोंका अशुभ होता है ॥ ३३ ॥ राहु पूर्वोद-

१ ग्रहण होनेके दिनके राजिमान या दिनमानके सात भाग करनेसे जो हो वही राहु
या दिनका सातवां भाग और आकाशका सातवां भाग है ।

दिष्टः ॥ ३४ ॥ पाञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः काम्बोजोड्रकिरातशस्त्रवार्ताः । जीवन्ति
 च ये हुताशवृत्त्या ते पीडामुपयान्ति मेघसंस्थे ॥ ३५ ॥ गोपाः पशवोऽथ गोमिनो
 मनुजा ये च महत्त्वमागताः । पीडामुपयान्ति भास्करे ग्रस्ते शीतकरेऽथवा
 वृषे ॥ ३६ ॥ मिथुने प्रवराङ्गना नृपा नृपमात्रा बालिनः कलाविदः । यमुना-
 तटजाः सवाहिका मत्स्याः सुहृजः समन्विताः ॥ ३७ ॥ आभीराञ्छ्वरान्
 सपहवान् महान् मत्स्यकुलञ्छकानपि । पाञ्चालान्विकलांश्च पीडयत्यन्तं
 चापि निहन्ति कर्कटे ॥ ३८ ॥ सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्वयुक्तान् राजोपमा-
 न्नरपतीन् वनगोचरांश्च । षष्ठे तु सस्यकविलेखकगेयसक्तान् हन्त्यश्वकविपुर-
 शालियुतांश्च देशान् ॥ ३९ ॥ तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून् वणिग्दशार्णान् मल-
 कच्छरांश्च । अलिन्यथोदुम्बरमद्रचोलान् द्रुमान् सयौधेयविपायुधीयान् ॥ ४० ॥

शास्त्रे आवे तो पृथ्वी जलसे पूर्ण हो जाय, पश्चिम दिशासे आवे तो किस्तान,
 सेवक और बीजोंका नाश होता है ॥ ३४ ॥ यदि मेघराशिमें राहुका दर्शन हो तो
 पंजाब, कर्लिंग, शूरसेन, काम्बोज, ओड्र, किरात और शस्त्रवार्ता (शस्त्रधारी)
 आदि समस्त देश और जो अग्निसे आजीविका करनेवाले हैं, वे सबही अत्यन्त
 पीडित होते हैं ॥ ३५ ॥ सूर्य या चंद्रमा जो वृषराशिमें राहुसे ग्रसे जायें तो गोप,
 पशु, अधिक करके गायदोर पालनेवाले लोक और अत्यन्त गुणी लोग अत्यन्तही
 पीडित होंगे ॥ ३६ ॥ मिथुनराशिमें ग्रहण हो जाय तो श्रेष्ठ रमणी (स्त्री),
 राजा, साधारण राजा (जमींदार), बलवान् आदमी, नाचने गाने और वजाने-
 वाले, यमुनाके किनारेपर रहनेवाले और बाह्योक्तदेश, मत्स्यदेश और शुद्ध देशवासी
 मनुष्योंको पीडा होती है ॥ ३७ ॥ जो कर्कटराशिमें चंद्रमा या सूर्यका ग्रहण हो
 तो आभीर, शबर जातिके पुरुष और पहव, मल्ल, मत्स्य, कुरु, शक, पाञ्चाल
 और विरट्टदेश पीडित होंगे, अन्नोंका नाश होवे ॥ ३८ ॥ सिंहराशिमें ग्रहण
 होनेसे पुलिन्दगण, मेकल, बलिष्ठ राजा, राजाकी समान पुरुष और वन
 चारोंपोंका नाश होता है, कन्याराशिमें ग्रहण होवे तो कवि, लेखक, गीत
 गाकर आजीविका करनेवालोंका नाश होता है, धान्य नष्ट होते हैं और अश्मक,
 त्रिपुर व शालि इन प्रधान देशोंका ध्वंस होता है ॥ ३९ ॥ जो तुलाराशिमें सूर्य
 या चन्द्रमाका ग्रहण होवे तो अन्नही देश, पश्चिम गमुद्रके निकटका देश, दशार्ण-
 देश, साधु पुरुष, वणिक और मच्छकच्छदेशके राजाका नाश होवे, वृश्चिकराशिमें
 ग्रहण होवे तो उदुम्बर, मद्र और चोत्रदेशके आदमी, वृक्ष, श्रेष्ठ योधा और विष्ट

धान्विन्यमात्यवरवाजिविदेहमहान् पाञ्चालवैद्यवणिजो विपमायुधज्ञान् ॥
हन्त्यान्मृगे तु शपमन्त्रिकुलानि नीचान् मन्त्रौषधीषु कुशलान् स्थविरायुधीयान्
॥ ४१ ॥ कुम्भोऽन्तर्गिरिजान् सराश्विमजनान् भारोद्वहंस्तस्करान् आभीरान्दर-
शर्यसिंहपुरकान् हन्त्यात्तथा बर्बरान् । मीने सागरकूलमागरजलद्रव्याणि मान्यान्
जनान् प्राज्ञान्बायुपुर्जाविनश्च भ्रफले कूर्मोपदेशाद्वदेत् ॥ ४२ ॥ सव्यापसव्यले-
ह्यसननिरोधामर्दनारोहाः । आघातं मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते दश प्रासाः
॥ ४३ ॥ सव्यगने तमसि जगजलप्लुतं भवति मुदितमत्तयश्च । अपसव्ये नर-
पतितस्करावमर्दः प्रजानाशः ॥ ४४ ॥ जिह्वेव लेडि परितस्तिमिरतुदो मण्डलं
यदि स लेहः । प्रमुदितसमस्तज्ञता प्रभूततोषा च तत्र मही ॥ ४५ ॥ प्रसनमिति
यदा च्यंशः पादो वा गृह्यतेऽथवाप्यर्द्धम् । स्फीतनृपचित्तहानिः पीडा च स्फीत-

देनेवाले आदमियोंका नाश हो जाता है ॥ ४० ॥ धनराशिमें ग्रहण होवे तो मंत्री,
श्रेष्ठ अश्व, विदेह, महि और पांचाल देश, वैद्य, वणिज और विपम अस्त्रोंके जान-
नेवाले पुरुषोंका नाश हो जाता है । मयनराशिमें सूर्य ग्रहण होनेसे मत्स्य, मोग्रे-
कुल, नीच, सलाह व औषधि जानने या बनानेमें निपुण और वृद्ध अश्वधारी
पुरुषोंका नाश होता है ॥ ४१ ॥ कुम्भराशिमें ग्रहण होवे तो पहाड़ी आदमी,
पाश्चात्य, बोझा देनेवाले, तस्कर, अहीर और दरद, आर्य और सिंहनगा तथा
बर्बर देशके लोगोंका नाश हो जाता है । मीनराशिमें ग्रहण होनेसे समुद्रतीरके और
समुद्रजलसे उत्पन्न हुए द्रव्य, मान्यपुरुष, पंडित और जलसे आजीविका करनेवाले
मच्छीमार, महाहादिकोंका नाश हो जाता है । इस प्रकार कूर्मोपदेशके वंशसे अर्थात्
कूर्मसंस्थानके अनुमागसे ग्रहणका फल कहा जाता है ॥ ४२ ॥ चन्द्रसूर्यके ग्रह-
णमें दश प्रकारके ग्राम हैं यथा,—१ सव्य, २ अपसव्य, ३ लेह, ४ प्रसन, ५
निरोध, ६ अमर्द, ७ आगेह, ८ आघात, ९ मध्यम और १० तमोन्त्य हैं ॥ ४३ ॥
जो राहु सव्यमें गमन करे अर्थात् सव्य नामक ग्रहण हो तो संसार जलसे पूर्ण हो
जाय, हर्षित होकर भयहीन होवे । अपसव्यप्राप्तमें राजा या चोरोंके पीडा देनेसे
प्रजाका नाश हो ॥ ४४ ॥ यदि राहु जीभकी समान चन्द्रमण्डलको चाटे तो उस
ग्रहणको लेह कहते हैं । इस ग्रहणके होनेसे पृथ्वीके प्राणिमण्य हर्षित होते हैं और
पृथ्वीपर बहुतसा जल वर्षता है ॥ ४५ ॥ जब ग्रहमण्डलका एकपाद, अर्द्धभाग
वा त्रिपाद प्रस्त हो जाता है तब उसको प्रसन कहते हैं, इससे गर्वित राजाके

देशानाम् ॥ ४६ ॥ पर्यन्तेषु गृहीत्वा मध्ये पिण्डीकृतं तमास्तिष्ठेत् । स निरोधो विज्ञेयः प्रमोदरुत् सर्वभूतानाम् ॥ ४७ ॥ अवमर्दनमिति निशेषमेव सञ्जाय यदि चिरं तिष्ठेत् । हन्यात् प्रधानदेशान् प्रधानगुणांश्च तिमिरमयः ॥ ४८ ॥ वृत्ते ग्रहे यदि तमस्तत्क्षणमावृत्य दृश्यते भूयः । आरोहणमित्यन्योऽन्यमर्दनं यकरं राज्ञाम् ॥ ४९ ॥ दर्पण इवैकदेशे सबाष्पनिःश्वासमारुतोपहतः । दृश्येताघातं तत् सुवृष्टिवृद्ध्यावहं जगतः ॥ ५० ॥ मध्ये तमः प्रविष्टं वितमस्कं मण्डलं च यदि परितः । तन्मध्यदेशनाशं करोति कुक्ष्यामयभयं च ॥ ५१ ॥ पर्यन्तेष्वतिबहुलं स्वल्पं मध्ये तमस्तमोऽन्त्याख्ये । सस्यानामीतिभयं जयमस्मिस्तस्कराणां च ॥ ५२ ॥ श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडां च निर्दिशिद्राही । अभिभयमनलवर्णे पीडा च हुताशवृत्तीनाम् ॥ ५३ ॥ हरिते रोगोत्पणता

धनका नाश होता है और गर्वित देशोंको पीडा होती है ॥ ४६ ॥ सूर्य वा चन्द्र-मण्डलतक देश अर्थात् पिछली सीमातक ग्रस करके जो राहु मध्यस्थानमें पिण्डाकारकी समान विराजमान होवे तो उसको निरोध कहते हैं इससे समस्तही प्राणियोंको हर्ष होता है ॥ ४७ ॥ जो राहुविम्ब मण्डलको मलीभांति पूर्णतासे ढककर अधिक कालतक विराजमान रहे, तो उसको अवमर्दन कहते हैं; इससे प्रधान देश और प्रधान व प्रधानराजाका नाश होता है और अंधकारका मय होता है ॥ ४८ ॥ जो गोलाकार ग्रहमण्डलको राहु ढककर अर्थात् ग्रहण होकर जो राहु फिर तत्काल दिखाई दे तो उसको आरोहण कहते हैं, इससे राजाओंको परस्पर युद्धका अत्यन्त भय होता है ॥ ४९ ॥ बाष्पयुक्त सांसकी पवनसे जिस प्रकार दर्पण मलीन हो जाता है वैसेही यदि राहुसे चन्द्र या सूर्यका मंडल एक ओरको मलीन दीख पड़े तो उस ग्रसको आघात कहते हैं; इससे जगत्में सुवृष्टि होती है और सब जगत्की वृद्धि होती है ॥ ५० ॥ यदि चन्द्रमाके विचले भागमें राहु प्रवेश कर आवे और चन्द्रमंडलके चारों ओर यदि निर्मल रहे तो इस ग्रसको मध्यतम कहते हैं, यह मध्यदेश नाशक और कोखके रोगोंको करनेवाला है ॥ ५१ ॥ जो चन्द्र-मण्डलकी पिछली सीमामें राहु अत्यन्त घट्टायातसे और बीचके भागमें थोडासा स्नात हो तो इसको तमोन्त्यनामक ग्रस कहते हैं; इससे धान्योंको ईति करनेवाला मय होता है और चोरोंका मय होता है ॥ ५२ ॥ राहु श्वेतवर्ण होवे तो मंगल सुभिक्ष और ब्राह्मणोंको पीडा होती है, अभिवर्ण होनेसे अभिभय और अभिसे जीदिक्य करनेवाले लुहारादिकी पीडा होती है ॥ ५३ ॥ हरे रंगका राहु होवे तो

सत्पानामानिजिथ विध्वंसः । कपिले शीघ्रगमसन्मलेच्छध्वंसोऽथ दुर्मिसम् ॥ ५४ ॥ अरुणकिरणानुरूपे दुर्मिसावृष्टयो विह्वयीडा । आध्रमे क्षेममुज्जि-
समादिशेन्मन्दवृष्टिं च ॥ ५५ ॥ कापोनारुणकपिलश्यामाभे धृजयं विनिर्दे-
श्यम् । कापोनः शूद्राणां ध्याधिकरः कृष्णवर्णभ ॥ ५६ ॥ विमलकमणि-
पीताभो वैश्वध्वंभो भवेत् सुमिक्षाप । सार्चिष्मत्पमिभयं गौरकरूपे तु पु-
द्धानि ॥ ५७ ॥ दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे वापि निर्दिशेन्मरकम् । धगानिभयसम्प-
दापी पाटलिद्रुमुमोपमो राहुः ॥ ५८ ॥ पांशुविलोहितरूपः क्षमध्वंसाय गदति
वृष्टेभ । मालरविकमलमुरचापरूपभृच्छस्त्रकोपाय ॥ ५९ ॥ पश्यन् घनं सौम्यो
घृतमधुर्तलक्षयाय राज्ञां च । भीमः समरविमदं शिखिकोपं तत्स्करभयं च ॥ ६० ॥
शुकः सत्पविमदं नानात्रेशांभ जनपति धरिष्याम् । रविजः करोत्यवृष्टिं दुर्मिसं
तत्स्कर भयं च ॥ ६१ ॥ पदशुभमवलोकनाभिरुक्तं घटजनिनं घट्णे प्रमोक्षणे

रोगकी अधिकार्य और नाजकर इतिने नाश होता है । कपिलवर्णका राहु होने तो
शीघ्र चलनेवाले प्राणी, मलेच्छोंका नाश और दुर्मिस होगा ॥ ५४ ॥ राहुका वर्ण
अरुण दिखाई दे तो दुर्मिस, अनावृष्टि और पक्षियोंका पीडा होती है । वृद्धक. वृष-
केता वर्ण हो तो मंगल, सुमिक्ष और वृष्टि मन्दी होती है ॥ ५५ ॥ कापोन, मरण,
कपिल वा कपिश वर्णका राहु दिखाई देय तो क्षुधाका भय होता है और कपुताक.
वर्णका या बाले रंगका होने तो शूद्रोंको पीडा होती है ॥ ५६ ॥ जो राहु निम्न-
मणिकी समान पीत वर्ण होय तो वैश्योंका नाश और सुमिक्ष होगा है, अग्रवी
शिखाको समान हो तो अग्निमय और गेलकी समान दिखाई दे तो युद्ध होता है
॥ ५७ ॥ दूर्वादलकी समान श्यामवर्ण या हल्दीकी समान राहु दिखाई दे तो
मरी पड़ती है । पाटलपूतकी समान राहुका रंग होने तो वज्र गिरनेका डर रहता
है ॥ ५८ ॥ कुरिषी समान या लाल वर्णका दिखाई दे तो बर्षा होती है और
क्षत्रियोंका नाश होता है । प्रमानकालीन सूर्यकी समान, बामन या हनुमन्पुरके
समान राहुका वर्ण होय तो शस्त्रकोप होता है ॥ ५९ ॥ अब टोकरन बढ़ते हैं :-
मरतमदमेडलमें क्षुधकी दृष्टि होने तो घी, दारु, तेल तेज हो और राजाओंका भय
होता है । मंगलकी दृष्टि होने तो युद्धमें मारन, अग्निप्रलेप और रोगका भय होता है
॥ ६० ॥ शुककी दृष्टि होने तो धूम्रकी धान्योंका नाश होता है, अनेक प्रकारके उप-
द्रव होने हैं । दानिकी दृष्टि होने तो दुर्मिस, अनावृष्टि और खेतभय होता है ॥ ६१ ॥
घट्णके. आरम्भसमयमें या मोक्षसमयमें दर्शनादिके इत्यादि अमुकप्रकार बरे बरे

वा । मुरपतिगुरुणावलोकिते तच्छममुपयाति जलैरिवाग्निरिद्धः ॥ ६२ ॥
 ग्रस्ते क्रमान्निमित्तैः पुनर्ग्रहो मासपट्कपरिवृद्ध्या । पवनोल्कापातरजःक्षितिक-
 म्पतमोऽशानिनिपातैः ॥ ६३ ॥ आवन्तिका जनपदाः कावेरीनर्मदातटाश्रयिणः ।
 दत्ताश्व मनुजपतयः पीडयन्ते क्षितिमुने ग्रस्ते ॥ ६४ ॥ अन्तर्वेदी सरयुं नेपा-
 लं पूर्वसागरं शोणम् । सीतृपयोधकुमारान् सह विद्वद्भिर्बुधो हन्ति ॥ ६५ ॥ ग्रह-
 णोपगते जीवे विद्वन्नुपमन्त्रिगजहयध्वंसः । सिन्धुतटवासिनामप्युदादिशं संक्षि-
 तानां च ॥ ६६ ॥ भृगुतनये राहुगते दसेरकाः कैकयाः सयीधेयाः । आर्या-
 वर्त्ताः शिवयः सीसचिवगणाश्च पीडयन्ते ॥ ६७ ॥ सीरे मरुभवपुष्करसीराष्ट्रा
 धावतोऽर्बुदान्त्यजनाः । गोमन्तरारियात्राश्रिताश्च नाशं व्रजन्त्याशु ॥ ६८ ॥
 कार्तिक्यामनलोपजीविमगधान् प्राच्याधिपान् कोशलान् कल्माषानय शूरसेन-
 सहितान् काशीश्च सन्तापयेत् । हन्याच्चाशु कलिङ्गदेशनृपतिं सामान्यवृत्त्यं
 तमो दृष्टं क्षत्रियतापदं जनयति क्षेमं सुमिश्रान्वितम् ॥ ६९ ॥ कार्मरकाद्
 वे समस्त बृहस्पतिकी दृष्टिसे इस तरह शान्त हो जाते हैं जैसे जलराशिसे बड़ी हुई
 आग ॥ ६२ ॥ वायु, उल्कापात, धूरि वर्षना, भौंचाल, अंधकार और वज्रपात-
 रूप निमित्तद्वारा बहुधा छः मासके पीछे ग्रहण होता है ॥ ६३ ॥ मंगलका ग्रहण
 होवे तो अवन्तीदेश, कावेरी और नर्मदाके निकटके देश और सब गर्वित राजा-
 ओका नाश होता है ॥ ६४ ॥ जो बुधग्रहसे राहुका ग्रहण होवे तो अन्तर्वेदी,
 सरयु, नेपाल, पूर्वसागर और शोणादिदेशोंकी स्त्रियें, राजा, योद्धा, पंडित और बाल-
 कोंका नाश होता है ॥ ६५ ॥ बृहस्पतिका ग्रहण होवे तो विद्वान्, राजमंत्री, हाथी
 और घोडोंका नाश होता है । सिन्धुनदीके निकट रहनेवाले या उत्तरदिशाके रहनेवाले
 पुरुषोंका नाश होता है ॥ ६६ ॥ शुक्रका ग्रहण होवे तो दासेरक, काश्मीर,
 यौधेय, आर्यावर्त, क्षात्रि आदि देशको व स्त्रियों और मंत्रियोंको पीडा होती है
 ॥ ६७ ॥ जो शनिग्रह राहुसे ग्रस्त होवे तो मरुभव, पुष्कर, सीराष्ट्र आदि देशके
 लोग, पैदल, अर्बुदादि अन्त्यजाति, गोमन्त और पारियात्र पहाडके रहनेवाले शीघ्रही
 नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ६८ ॥ जो राहु कार्तिक महीनेमें दिखाई दे तो आग्नेसे
 आजीविका करनेवाले पुरुष अपांत सुनार, लुहार और मगध, कोशल, कल्माष,
 शूरसेन व काशीआदि देशोंके रहनेवाले प्राणी पीडित होते हैं और इस प्रकार क्षत्रि-
 योंको ताप देनेवाले राहुके दिखाई देनेपर मंत्री और नौकर चाकरोंको साथ कलिङ्ग-
 देशके गजाका नाश हो जाता है और मंगल व सुमिश्र होता है ॥ ६९ ॥ अग्रदा-

कौशलकान् सपुण्ड्रान् भृगांश्च हन्यादपरान्तकांश्च । ये सोमपास्तांश्च निहन्ति
 सौम्ये सुवृष्टिर्द्वे क्षेमसुभिक्षकश्च ॥ ७० ॥ पीपे द्विजशत्रुजनोररोधः ससैन्य-
 वाह्याः कुकुरा विदेहाः । ध्वंसं व्रजन्त्यत्र च मन्दवृष्टिं भयं च विश्वासुतिस-
 युक्तम् ॥ ७१ ॥ माये तु मातृवितृमन्त्रसंतिउगात्रान् स्वाध्यायधर्मनिरात्र
 करिणस्तुरङ्गान् । बह्नाङ्गनाशिमनुजांश्च दुनोति राहृवृष्टिं च कर्पकजनात्तुमतां
 करोति ॥ ७२ ॥ पीडाकरं फाल्गुनमासि पर्वं बह्नाभमकवन्तमेकल्लानाम् ।
 नृतज्ञसम्पन्नवराङ्गनानां धनुष्करक्षत्रनस्त्रिणां च ॥ ७३ ॥ चित्रं तु चित्रकर-
 लेखकगेयसक्तान् स्तोत्रजोविनिगमज्ञाहिरण्यवृणान् । पीण्डाङ्गैरेकयजनानय
 चारमकांश्च तारः स्पृष्टत्यमरपोऽत्र विचित्रवर्षा ॥ ७४ ॥ वैशाखमासि पक्षे
 विनाशमायान्ति कार्गसातिल्हाः समुद्राः । इक्ष्वाकुर्याधेयवकाः कलिङ्गः क्षीर-
 द्रवाः किन्तु सुभिक्षमस्मिन् ॥ ७५ ॥ ज्येष्ठं नरेन्द्रद्विजराजतन्याः सरयानि

चणमहीनेमें ग्रहण होवे तो काश्मीर, योशर, पुण्ड्र आदि देश, पश्चिम और दक्षि-
 णदेशके भृग और समस्त सोम पीनेवालोंपर नाश हो जाता है और अच्छी वर्षा,
 मंगल और सुभिक्षमी होता है ॥ ७० ॥ पीप मासमें ग्रहण होय तो ब्राह्मण
 और क्षत्रियोंमें उपद्रव हो, सैन्य, कुकुर और विदेहदेशके गजनेवालोंपर पड़ता होता
 है और अकाल पड़ता है ॥ ७१ ॥ माघमासमें ग्रहण होवे तो क्षत्रियोंमें उत्पन्न
 हुए मातापिताकी मक्ति पानेवाले लोग, स्वाध्याय और अपने धर्म धर्मसे वृ-
 न्नेवाले लोग, बहुतही ऊंचे हाथी और घंताल, भ्रम और बगरी आदि देशोंमें
 उत्पन्न हुए मनुष्योंको दुःख होता है, परन्तु वर्षा बिलानोंकी मनमानी होती है
 ॥ ७२ ॥ फाल्गुनमासमें ग्रहण होवे तो घंताल, अश्वमेध, अरुन्नी और मेरुणादि दे-
 शोंके लोगोंको पीडा होती है, नाचनेवाली, उत्तम धान्य तथा उत्तम गी, पशुपक्षी
 सभी और तपस्वियोंको पीडा होती है ॥ ७३ ॥ चैत्रमासमें ग्रहण होवे तो चित्र-
 चर (सुसीरि), लेखक, गानेमें आसक्त, स्तोत्रजोशी (बेशरामादि) और विष्णु
 (शाय) को जाननेवाले पुरुष, गुरगादि व्यापारके द्रव्य और पीप, मोड़,
 अश्वमेध व वज्रमीसादि देशके आदमी अत्यन्त दुःखी होते हैं, वर्षा अच्छी होती
 है ॥ ७४ ॥ जो वैशाखमासमें ग्रहण होवे तो बराम, तिल, चण्डा, नाश होता
 है, इक्ष्वाकु, रोधेय, शक और कलिङ्गके उपद्रव होता है, परन्तु इनके सुभिक्ष
 होता है ॥ ७५ ॥ ज्येष्ठमासमें ग्रहण होवे तो रानी,

रुग् नृपपीडा स्यात् सुवृद्धिश्च ॥ ८२ ॥ पूर्वोत्तरेण वामो हनुभेदो नृपकु
भयदायी । मुखरोगं शस्त्रभयं तस्मिन् विद्यात् सुभिक्षं च ॥ ८३ ॥ दक्षि
क्षिभिर्भेदो दक्षिणार्धेन यदि भवेन्मोक्षः । पीडा नृपपुत्राणामभिय
दक्षिणा रिपवः ॥ ८४ ॥ वामस्तु कुक्षिभेदो यद्युत्तरमार्गसंस्थितो राहुः ।
गर्भविपत्तिः तस्यानि च तत्र मध्यानि ॥ ८५ ॥ नैर्ऋत्यवायव्यस्थौ दक्षिण
तु पायुभेदो दी । हस्तलग्ना वृष्टिर्द्विपोस्तु राक्षीक्षपो यामे ॥ ८६ ॥
मग्रहणं कृत्वा प्रागेर् चानर्सेव । सञ्चर्दनमिति तत् क्षेमस्यहादिभेदं
॥ ८७ ॥ प्राक्नयहणं यस्मिन् पश्चादपसर्गणं तु तज्जरणम् । शुच्छद
हिमाः कृ शरणमुनयान्ति तत्र जनाः ॥ ८८ ॥ मध्ये यदि मकारः
तन्मध्यविदारणं नाम । अन्तःकोरकरं स्यात् सुभिक्षदं नातिवृष्टिकरम् ॥ ८९
पय्यन्तेषु विमलता बहुलं मध्ये तमोऽन्तदरणाख्ये । मध्याख्यदेशनाशः ॥

उसको दक्षिणहनुभेद नामक मोक्ष कहते हैं, इससे धान्यनाश, मुखरोग, राज
और अच्छी वर्षा होती है ॥ ८२ ॥ पूर्वोत्तरेणसे मोक्ष होनेपर वाम हनुभेद
होता है, इससे राजा और राजकुमारोंको मय, मुखरोग, शस्त्रभय और सुभिक्ष
है ॥ ८३ ॥ दक्षिण ओरसे मोक्ष होनेपर दक्षिणकुक्षिभेद नामक मोक्ष होता
जिससे राजकुमारोंको पीडा और दक्षिणके शत्रुओंमें सगडा होता है ॥ ८४ ॥
राहु उत्तरपक्षमें स्थापित होने तो वामकुक्षिभेद मोक्ष होता है, इससे स्त्रियोंके
विपत्ति और धान्य मध्यम होता है ॥ ८५ ॥ नैर्ऋत्य कोणसे मोक्ष होने तो
दक्षिणवायुभेद कहते हैं, यह दोनों प्रकारकी मोक्ष साधारण सुखपीडा और
करती है और वामवायुभेदसे रानीकी क्षय होती है ॥ ८६ ॥ राहु यदि प्राक् मं
पूर्वभागसे प्राप्त करना आरम्भ करके पूर्व दिशाकोही चला आवे तो उसको सं
नामक मोक्ष कहते हैं, इससे संसारका भगल और धान्यसुख होता है ॥ ८७
जितमें पूर्वदिशासे ग्रहणका आरम्भ होकर पश्चिम देशोंमें मोक्ष होने उसको
नामक मोक्ष कहते हैं, जरण नामक मोक्ष होनेसे मनुष्य धुधा और शस्त्र
यधदायकर न जाने कहाँ जाकर शरण प्राप्त होते हैं ॥ ८८ ॥ मध्यस्थल
मदी मन्नाक्षित होनेपर उसको मध्यविदारण नामक मोक्ष कहते हैं, यह प्राणि
मानसिक कोष करानेवाली और सुभिक्षदायक होनेपरमी श्रेष्ठ वर्षा इसमें नहीं
राज्यमें सबललाहट मचती है ॥ ८९ ॥ यदि चन्द्रग्रहणमें चिंयके चारो
निर्मलता हो व मध्यमें शानी धारायका रहे तो वह अन्तदरणा नामक मोक्ष

सस्यक्षयश्चास्मिन् ॥ ९० ॥ एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करेऽपि किन्त्वत्र ।
 पूर्वादिक् शशिनि यथा तथा रवौ पश्चिमा कल्प्या ॥ ९१ ॥ मुक्ते सप्ताहान्तः
 पांशुनिपातोऽन्नसङ्क्षयं कुरुते । नीहारो रोगभयं भूकम्पः प्रवरनृपमृत्युम् ॥ ९२ ॥
 उल्का मन्त्रिविनाशं नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम् । स्तनितं गर्भविनाशं विद्यु-
 न्नृपदंष्ट्रिपारपीडाम् ॥ ९३ ॥ परिवेषो रुक्मीडां दिग्दाहो नृपभयं च साग्नि-
 यम् । रुक्षो वायुः प्रबलश्चौरसमुत्थं भयं धत्ते ॥ ९४ ॥ निर्घातः सुरचारं दण्डश्च
 क्षुब्धं सपरचक्रम् । ग्रहयुद्धं नृपयुद्धं केतुश्च तदेव संदृष्टः ॥ ९५ ॥ अविकृत-
 सलिलनिपाते सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम् । यच्चाशुर्न ग्रहणं तत् सर्वं
 नाशमुपयाति ॥ ९६ ॥ सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य ।
 तत्रानयः प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम् ॥ ९७ ॥ अर्कग्रहान्तु शशिनो ग्रहणं
 यदि दृश्यते ततो विप्राः । नैकमृतुफलभाजो भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ॥ ९८ ॥
 इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां राहुचारः पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

हे; इससे मध्यदेश और शरदऋतुकी खेतीका नाश होता है ॥ ९० ॥ यह सम्पूर्ण
 चन्द्रग्रहणकी मोक्ष कही है, इन सबके विषयको सूर्यग्रहणमेंभी कल्पना करना
 उचित है परन्तु जिस प्रकार चन्द्रग्रहणमें जहां पूर्वदिशा कही, उस जगहपर सूर्य-
 ग्रहणमें पश्चिमदिशाका लगाना ठीक है ॥ ९१ ॥ मोक्ष होनेके उपरान्त यदि सात
 दिनके भीतर धूरि वर्षे तो मन्त्रका नाश हो, कुहर हो जाय तो रोगका मय होवे,
 भूकंप होनेसे श्रेष्ठ राजाकी मृत्यु होती है, उल्कापात मंत्रीका नाश करता है और
 वर्षावर्षाके मेघ संध्याकालके बिना दिखाई दें तो महामय होता है, मेघगर्जन गर्भ-
 नाशका कारण होता है, विद्युत्पात राजा, डाढ़वाले सर्प शूकर आदि लोगोंको
 पीडादायक होता है, परिवेश होनेसे रोगकी पीडा होती है, दिग्दाह होनेसे राजमय
 और आग्निमय होता है, अतिप्रचण्ड तथा रुक्ष पवनके चलनेसे चोरमय होता है;
 निर्घात शब्द होने और इन्द्रधनुषके दिखाई देने तथा पवनका संघात होनेसे दुर्भिक्ष
 और दूसरे राजाकी सेनासे मय होता है, ग्रहयुद्ध होनेसे राजाओंका परस्पर युद्ध
 होता है, केतुके दर्शनसेभी युद्ध होता है, ग्रहणमोक्ष होनेके पश्चात् सात दिनके
 भीतर यदि बिना विकारके मलीमांस वर्षा हो जाय तो सुभिक्ष होता है और ग्रहण-
 का सम्पूर्ण अनुमफलभी नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥
 ॥ ९६ ॥ चन्द्रग्रहणके पीछे यदि बहुत दिनके भीतर सूर्यग्रहण हो जाय तो प्रजा
 इनमें होता है और स्त्रीपुरुषोंमें परस्पर वैरभाव होता है ॥ ९७ ॥ और यदि सूर्य-

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

भौमचारः

पयुदयदादिकं करोति नवमाष्टसप्तमर्शेषु । तदक्रमुष्णमुत्पये पीडाकरम-
 ग्रेवार्चनानाम् ॥ १ ॥ द्वादसादशमेकादशनक्षत्रादकृते कुनेऽशुमुत्तमम् । दूषयति
 त्सानुदये करोति रोगानवृष्टिञ्च ॥ २ ॥ व्यालं प्रयोदशार्शचतुर्दशादा विपच्य-
 तेऽस्तमये । दंष्ट्रिण्यालमृगेभ्यः करोति पीडां सुभिक्षं च ॥ ३ ॥ रुधिरानन-
 मिति पक्वं पञ्चदशात् षोडशात् विनिवृत्ते । तत्कालं सुखरोगं सार्धं च सुभि-
 क्षमावहति ॥ ४ ॥ असिमुखालं सप्तदशादष्टादशतोऽपि वा तदनुषङ्गे । दस्युग-
 गेभ्यः पीडां करोत्यवृष्टिं सप्तसप्तम्याम् ॥ ५ ॥ भाग्यार्यमोहितो यदि निवर्त्तने

ग्रहणसे एक पक्ष परे चंद्रग्रहण होय तो ब्राह्मणगण अनंका यज्ञोक्ता फल पावें और
 ते बहुत यज्ञोंको करते हैं, मजा इर्षित होनी है ॥ ९८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां पृथ्वीतन्त्रादितायां पश्चिमोत्तरदेशीयपुरादावादा-
 स्तव्य-पण्डितबलदेवमहादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जित नक्षत्रमें मंगलग्रहका उदय होना है, उस उदय नक्षत्रके सप्तम, अष्टम वा
 नवम नक्षत्रमें मंगलग्रह यदि बनी हो तो उस बक्रको 'उष्ण' कहते हैं, इस उष्ण
 ऋके उदयकालमें आगिसे आजीविका करनेवाले लोगोंको पीडा होती है ॥ १ ॥
 उदयनक्षत्रके दशम, एकादश अथवा नक्षत्रसे मंगल यदि बनी होवे तो उस
 ऋको 'अशुमुख' बक्र कहते हैं, इसके उदय होनेके समयमें समस्त राश दूषित
 हो जाते हैं और रोग व अनाशुष्टि होती है ॥ २ ॥ ऐसेही जित नक्षत्रमें मंगल
 अस्त हो जाय, उस अस्त होते हुए नक्षत्रके तेरहवें या चौदहवें नक्षत्रमें यदि
 मंगलका विपाक अर्थात् बक्र हो तो इस बक्रका नाम 'व्याल' है, इसमें दंष्ट्री,
 व्याल और मृगसे पीडा होती और सुभिक्ष होता है ॥ ३ ॥ अस्तमन नक्षत्रके
 पंचदश या षोडश नक्षत्रसे मंगलका बक्र हो तो 'रुधिरानन' नामका बक्र होता है;
 उस समयमें लोगोंको मुखरोग और भय होता है और सुभिक्ष हुआ करता है ॥ ४ ॥
 अस्त होते हुए नक्षत्रके सत्रहवें या अठारहवें नक्षत्रमें मंगलका अनुषङ्ग हो तो
 'असिमुखाल' नामका बक्र होता है इसमें घोरभय, शम्भय और मनाहटि होती
 है ॥ ५ ॥ यदि मंगलग्रह पुरातनाकृत्यो वा उत्तराषाढाकृत्यो नक्षत्रमें उदित होकर

भयप्रदायी चरन् जगतः ॥ ७ ॥ प्राकृतविमिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तबोरा
पाण्याः । सप्त पराशरतन्त्रे नक्षत्रैः कीर्तिता गतयः ॥ ८ ॥ प्राकृतसंज्ञा वा
व्ययाम्यपैतामहानि बहुलाश्च । मित्रा गतिः प्रतिष्ठा शशिशिवपितृभुज
वानि ॥ ९ ॥ संक्षिप्तायां पुष्यः पुनर्वसुः फल्गुनीद्वयं चेति । तीक्ष्णयां प्र
दाद्वयं सशक्राश्वयुक् पौष्णम् ॥ १० ॥ योगान्तिकेति मूलं द्वे चाषाढे गति
सुतस्येन्दोः । घोरा श्रवणस्त्वाष्ट्रं वसुदेवं वारुणं चैव ॥ ११ ॥ पाप
सावित्रं मैत्रं शक्राग्निदेवतं चेति । उदयप्रवासदिवसैः स एव गतिलक्षणं प्राह
॥ १२ ॥ चत्वारिंशभिश्च द्दिसमेता विंशतिर्दिनवकं च । नव मासाद्धं स
चैकसंयुताः प्राकृताद्यानाम् ॥ १३ ॥ प्राकृतगत्यामारोग्यवृष्टिसत्यप्रवृद्ध
क्षेमम् । संक्षिप्तमिश्रयोर्मिश्रमेतदन्यासु विपरीतम् ॥ १४ ॥ कञ्ज्यतिव

इन तीन नक्षत्रोंमेंसे किसी नक्षत्रको भेद कर जो बुधग्रह विचरण करे तौ संतत
क्षुधा, शस्त्र, तस्कर, रोग और भय होता है ॥ ७ ॥ पराशर मुनिके रचे हुए ज्योति
षीय तंत्रशास्त्रमें नक्षत्रोंके द्वारा बुधकी सात प्रकारकी गति कही है, यथा—१ प्राकृत, २
विमिश्र, ३ संक्षिप्त, ४ तीक्ष्ण, ५ योगान्त, ६ घोर, ७ पाप ॥ ८ ॥ स्वा
भरणी, रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्रमें बुध होय तौ इस गतिको प्राकृत कहते हैं ॥ ९ ॥
मृगाशिरा, आर्द्रा, मघा और आश्लेषा नक्षत्रीय बुधकी गतिको मित्रा कहते हैं ॥ १० ॥
पुष्य, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीमें संक्षिप्ता और पूर्वमाद्रपदा
उत्तरमाद्रपदा, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवतीमें बुधकी गतिको तीक्ष्णा कहते
॥ १० ॥ मूल, पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा नक्षत्रमें जो बुधकी गति होती है, उस
योगान्तिका कहते हैं; और श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा और शताभिषामे जो गति होती
उसकी घोरा कहते हैं ॥ ११ ॥ जब बुध हस्त, अनुराधा या ज्येष्ठा नक्षत्र
रहता है, तब उसकी गतिको नाम पाप है; इस प्रकार पराशरमुनिने उदय
अस्तदिवसके द्वारा बुधकी गति व लक्षणोंका निरूपण किया है ॥ १२ ॥ प्रा
कृतगति ४० दिन, मित्रा ३० दिन, संक्षिप्ता २२ दिन, तीक्ष्णा १८ दिन, योगान्त
९ दिन, घोरा १५ दिन और पाप गति ११ दिनतक रहती है ॥ १३ ॥ बुध
प्राकृत गतिमें आरोग्य, वृष्टि, धान्यकी वृद्धि और मंगल होता है, संक्षिप्ता
मित्रा गतिमें मिश्रफल अर्थात् न बहुत अच्छा न बहुत बुरा फल होता है और
घोरा गतिमें विपरीत फल होता है ॥ १४ ॥ देवलके मतसे बुधकी गति

वक्रा विकला च मतेन देवत्स्यताः । पञ्चचतुर्दशैकाहा क्रज्ज्यादीनां पठ-
भ्यस्ताः ॥ १५ ॥ क्रज्जी हिता प्रजानामतिवकार्यं गतिर्वेनाशयति । शस्त्रभ-
यदा च ययन विकला भयरोगसञ्जननी ॥ १६ ॥ पौषापादभ्रावणवैशाखेधि-
न्दुजः समायेषु । ह्यो मयाय जगतः शुभफलकृत् प्रोपितस्तेषु ॥ १७ ॥ कार्ति-
केऽश्वयुजि वा यदि मासे दृश्यते तनुभवः शिशिरांशोः । शस्त्रचौरहृतभुग्गद-
तोपशुद्रयानि च तदा विदधाति ॥ १८ ॥ रुद्रानि सौम्येऽस्तमिते पुराणि
यान्युद्वेते तान्युपपाति मोक्षम् । अन्ये तु पश्चादुद्वेते वदन्ति लाभः पुराणां
भवतीति तज्ज्ञाः ॥ १९ ॥ हेमकान्तिरथवा शुक्वर्णः सस्यकेन मणिना सहस्रो
वा । स्निग्धमूर्तिरलघुश्च हिताय व्यत्यये न शुभकृच्छशिपुत्रः ॥ २० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां बुधचारः सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मकरकी है; यदा—क्रज्जी, अतिवक्रा, वक्रा और विकला; इन सब गातयोंका यदा-
क्रमसे विद्यमान काल ३० दिन, २४ दिन, १२ दिन और केवल ६ दिनतक है
॥ १५ ॥ क्रज्जीगति प्रमाओंको हितकारी है; अतिवक्रा गति धनका नाश करने-
वाली है, वक्रागतिमें शस्त्रभय और विकलामें भय व रोग होता है ॥ १६ ॥ पौष,
आषाढ, श्रावण, वैशाख वा माघमासमें जो बुध ग्रह दिखाई दे तो संसारको भय
हो, यदि इस समयमें अस्त होवे तो शुभ होना है ॥ १७ ॥ जो चंद्रमाका पुत्र
बुध कार्तिक या अभिन मासमें दिखाई दे तो शस्त्र, चोर, अग्नि, रोग, जल और
धुधाका भय होता है ॥ १८ ॥ बुधके चारमें मलीमांति सब कुछ जाने हुए
पंडित लोग कहते हैं कि, बुधके अस्तकालमें जो नगर रुक जाते हैं; फिर बुधके
उदय होनेके समयमें वह सब नगर छूट जाते हैं। कोई कोई कहते हैं कि, पश्चिम
दिशामें बुध उदय होय तो उस ओरके सब पुर लाभवाले होते हैं ॥ १९ ॥
जब कि चन्द्रमाके पुत्र बुधका रंग सुवर्णकी समान या तोतेपक्षीकी समान
अथवा सस्यवर्मणिकी समान होय और जब बुध निर्मल मूर्ति और घडा होय
तब सबकाही मंगल होता है; ऐसा न होनेपर अशुभही होता है ॥ २० ॥

इति श्रीवराहमिहिरचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादावादास्त-
व्य-पंडितबलदेवमसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकया सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ।

वृहस्पतिचारः ।

नक्षत्रेण सहोदयपुण्यच्छनि येन देवपतिपन्त्री । तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मात-
क्रमेण ॥ १ ॥ वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्राद्युपयोगीनि । क्रमशश्चिन्तु
पञ्चनमुत्पन्नमन्त्यं च यद्वर्षम् ॥ २ ॥ शकटानलोऽजीवकगोर्षाडा व्याधि-
सहोत्थ । वृद्धिस्तु रक्तातिककृसुनानां कार्तिके वर्षे ॥ ३ ॥ सौम्येऽद्विजा-
दिमृगास्तु गलगाण्डनैश्च सत्यवधः । व्याधिभयं मित्रैरपि भूपानां जायते वै-
॥ ४ ॥ शुभक्रज्जनः पीपो निवृत्तवैराः परस्परं क्षितिपाः । द्वित्रिगुणो धान्या-
पीष्टिककर्मननिदिध ॥ ५ ॥ पितृपूजापरिवृद्धिर्माघे हार्दिश्च सर्वभूतानाम्
आरोग्यवृद्धिर्धान्यायं मन्त्रो मित्रलाभश्च ॥ ६ ॥ फाल्गुनवर्षे विद्यात् कवि-

इन्द्रोत्तमं अर्थात् वृहस्पतिजी भित्त मासके जिस नक्षत्रमें उदय होवे,
नक्षत्रके अनुग्राही महीनेके नामकी नाई वह वर्ष कहलाता है ॥ १ ॥
बाह मास होनेसे इस प्रकार कुल बाह वर्ष होंगे, तिनमें वृत्तिका नक्षत्रसे आ-
करके दो दो नक्षत्रोंमें कार्तिकादि वर्ष होगा। परन्तु इन बाह वर्षोंके मध्यमें पञ्च
परदश और द्वादश वर्ष तीन तीन नक्षत्रोंका होगा, जैसे कृत्तिका या रोहि-
नक्षत्रमें पृथ्वीतिहा उदय होनेपर कार्तिक नामक वर्ष होगा ॥ २ ॥ (१) का-
नामक वर्ष होने तो शकटहाग आग्नेयिका करनेवाले घनजारे इत्यादि, अ-
वाग्नेयिका करनेवाले स्त्रीगोंकी और गायदोंगोंकी पीडा होती है, लोगोंके
इत्यादि और शत्रुका कोप होता है, साल और पीले रंगके फूल बढ़ते हैं ॥
(२) सौम्य नामक वर्ष होय तो अनाष्टि होनी है और मृग, घृहे, शालम'दि
वर्षमें आदि भंडन जन्तुओंमें नाजरी दानि होती है, मनुष्योंकी ध्या-
होती है और मित्रोंके संगमो गजाओंकी शत्रुता हो जाती है ॥ ४ ॥ (३)
सत्यवध वर्षमें जगन्ना शुभ होता है, गजा लोग आपसका बैरभाव छोड़ दे-
वन्तका मृत्यु दिवुगा वा निवृत्ता हो जाता है और पौष्टिक कार्यकी वृद्धि
है ॥ ५ ॥ (४) मात नामक वर्षमें पितृगोंकी पूजा बढ़ती है, सब माणि-
वैद्य होता है, आरोग्य, सुवृष्टि, धान्यका मोल नीचा, श्रेष्ठ सम्पत्ति और मि-
होती है ॥ ६ ॥ (५) फाल्गुन नामक वर्षमें विद्या स्थानके योग्य संग-
है वृद्ध बढ़ता है, मित्रोंका शुभ मय, योगोंकी प्रवृत्ता और गजाओंमें

कंचित् क्षेमवृद्धिसत्त्वानि । दीर्घाग्रेण प्रमदानां प्रचलाभ्यां नृपाभ्योः ॥ ७ ॥
 त्रे मन्दा वृद्धिः प्रियमत्रं क्षेमपवर्तिना मृदवः । वृद्धिस्तु कोशधान्यस्य भवति
 दा च स्तवताम् ॥ ८ ॥ वैशाखे धर्मपरा विगतजयाः प्रमुदिताः प्रजाः
 नृपाः । यज्ञक्रियामवृत्तिर्निर्वाचिः सर्वसत्त्वानाम् ॥ ९ ॥ ज्येष्ठे जातिकुलध-
 भ्रेणीश्रेष्ठानृपाः सधर्मज्ञाः । पीडयन्ते धान्यानि च हित्वा कंगुं धर्मीजा-
 म् ॥ १० ॥ आपादे जायन्ते सत्त्वानि कविद्वष्टिरन्यत्र । योगक्षेमं मध्यं
 प्रमाद्य भवन्ति भूराजाः ॥ ११ ॥ श्रावणवर्षे क्षेमं सन्धक् सत्त्वानि पाकमु-
 याति । क्षुरा ये पापग्राः पीडयन्ते ये च तन्नकाः ॥ १२ ॥ भाद्रपदे पञ्चजं
 णेनानि याति पूर्वसत्त्वं च । न भवत्यारं सत्त्वं कश्चित् सुभितं कश्चिच्च
 त्पम् ॥ १३ ॥ आश्विमेऽग्नेऽनसं पतति जलं प्रमुदिताः प्रजाः क्षेमम् ।
 णचपः प्राणसृतां सर्वेषामन्नपाहुल्यम् ॥ १४ ॥ उदगारोग्यतुभितक्षेत्रकरो
 त्कृतिभरन् भानाम् । याम्ये तद्विरसितो मध्येन तु पश्यफलदायी ॥ १५ ॥

नी हे ॥ ७ ॥ (६) चैत्र नामक वर्षमें साधारण वृद्धि होती है, प्रिय अन्नका
 म होना है, राजाओंमें मोटापन, कोष और धान्यकी वृद्धि व स्तवता आदिमे-
 रीको पीडा होती है ॥ ८ ॥ (७) वैशाख नामक वर्षमें राजा प्रजा दोनोंही
 र्ममें तत्पर रहते हैं, मध्यम्य और हर्षित रहते हैं, यज्ञ करते हैं और समस्त
 धान्य मली भाँतिसे होते हैं ॥ ९ ॥ (८) ज्येष्ठ नामक वर्षमें राजालोग धर्मज्ञ
 रूपोंके साथ जाति, कुल, धन और श्रेणीमें श्रेष्ठ मानकर गिने जाते हैं, और
 गिनी प्रा समाजातिके सिवाय सब धान्य पीडित होते हैं ॥ १० ॥ (९) आपाद
 नामक वर्षमें समस्त धान्य उपजते हैं, परन्तु किसी स्थानमें अनावृष्टि होती है,
 रोग क्षेम (अन्न वस्तुस्य लाभ और लब्धकी रक्षा) मध्यम और राजालोग
 प्रत्यन्त प्यत्र होते हैं ॥ ११ ॥ (१०) श्रावण नामक वर्षमें धान्य आनन्दसे
 रक जाते हैं, परन्तु साधारण पातगण्डो आदमी और उनके भक्त मनुष्य अत्यन्त
 पीडित होने हैं ॥ १२ ॥ (११) भाद्रपद नामक वर्षमें लताजातीय समस्त पूर्व
 धान्य मलीभाँति पक जाते हैं, और धान्य नहीं होते, और कहीं सुभित होता है
 और कहीं मय होता है ॥ १३ ॥ (१२) आश्विमेऽग्निर्यत् आश्विन नामक
 वर्षमें अत्यन्त जल विरता है, प्रजा हर्षित होती है, प्राणियोंके प्राण मुखमें
 रहते हैं और सबके पास बहुतसा अन्न रहता है ॥ १४ ॥ ज्येष्ठ वृत्तपति
 सब नक्षत्रोंके उत्तरमें घूमता है तब सबके लिये आरोग्य, सुवृष्टि और

विचरन् भद्रयमिष्टस्तत्सार्धं वत्सरेण मध्यफलः । सस्यानां विध्वंसी विचरे-
 धिकं यदि कदाचित् ॥ १६ ॥ अनलभयमनलवर्णं व्याधिः पीते रणामः
 श्यामे । हरिते च तस्करेभ्यः पीडा रक्ते तु शस्त्रभयम् ॥ १७ ॥ धूमाग्नेजावृ-
 षिद्धिदशगुरौ नृपवधो दिवा द्यौः । विपुलेऽमले सुतारे रात्रौ द्यौः प्रजाः स्वस्थाः
 ॥ १८ ॥ रोहिण्योऽनलभं च वत्सरतनुर्नाभिस्त्वपाढाद्वयं सार्धं हृत्पितृदेवं
 च कुसुमं शुद्धैः शुभं तैः फलम् । देहे क्रूरनिपीडितेऽध्यनिलजं नाभ्यां त्रयं
 क्षुत्कृतं पुष्पे मूलफलक्षयोऽथ हृदये सस्यस्य नाशो ध्रुवम् ॥ १९ ॥ गताति
 वर्षाणि शकेन्द्रकालाद्धतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः । नवाष्टपञ्चाष्टयुतानि कृता
 विभाजयेच्छून्यशरागरामैः ॥ २० ॥ फलेन युक्तं शकभूपकालं संशोध्य पट्या
 विपर्ययवित्तज्य । युगानि नारायणपूर्वकाणि लब्धानि शेपाः क्रमशः समाः

मंगल होता है, दक्षिण दिशामें बृहस्पति होय तौ कहे हुए फलसे विपर्यय
 फल होता है, मध्यमागमें विचरण करता होय तौ मध्यम फल हुआ करत
 है ॥ १५ ॥ यदि बृहस्पति एक वर्षमें दो नक्षत्रोंके मध्य विचरण करे तौ
 शुभवसरफ है, दार्द्र नक्षत्रमें विचरण करे तौ मध्यम फल होता है और यदि
 संपत्तागमें तिगसे अधिक नक्षत्रमें कभी विचरण करे तौ धान्यका नाश होता है
 ॥ १६ ॥ जो बृहस्पतिके रंग अग्निकी समान होय तौ अग्निका भय होता है, पीत-
 रंग होय तौ व्याधि, श्यामवर्ण होय तौ युद्ध होयगा, हरा होनेसे चोरोंके दण्ड
 पीडा होयगी, लाल होनेसे शस्त्रभय और धूमका रंग होनेसे अनावृष्टि होती है,
 दिनमें बृहस्पति दिखाई देय तौ मनुष्योंका नाश होता है, जो सुन्दर तारेकी
 समान बड़ा और निर्मल रात्रिकालमें दिखाई देय तौ प्रजाको सुख होता है
 ॥ १७ ॥ १८ ॥ कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र वर्षकी देह है, पूर्वाषाढा और उत्त-
 राषाढा और नक्षत्र वर्षकी नाभि है, आश्लेषा हृदय और मघा नक्षत्र वर्षका कुसुम
 है, या शुद्ध होवे तौ शुभ फल होता है, (बृहस्पतिके अवस्थाकालमें) वत्सरेका
 देहनाश यदि पापग्रहमें पीडित होवे तौ आग्नि और पवनसे भय होता है, नाभि-
 नक्षत्र पीडित होय तौ युद्धका भय होता है, पुष्यनक्षत्रमें मूल अर्थात् मूनी आदि
 और पुष्यका भय होता है, और हृदयनक्षत्र पापग्रहमें पीडित होय तौ निधयकी
 धान्यका नाश होता है ॥ १९ ॥ शक्रादिय (जालिशहन) राजाके समर्थ
 विष्णु रंग होते हैं, उनके दो स्थानोंमें गणकर एक स्थानके अंशोंकी ११ संख्यासे
 दण्ड करे, तदोपरान्त इस युगचक्रकी फिर चार संख्यासे गुणा करे, फिर १६

यद्यतुर्थं स्वल्पोदकं पञ्चममन्दमुक्तम् ॥ २५ ॥ चत्वारि मुख्यानि युगान्य-
थेषां विष्ण्विन्द्रजीवानलदेवतानि । चत्वारि मध्यानि च मध्यमानि चत्वारि
चान्तमान्यधमानि विद्यात् ॥ २६ ॥ आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो माघे यदा यात्यु-
दयं सुरेज्यः । पञ्चमपूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रवर्त्तते भूताहितस्तदाब्दः ॥ २७ ॥
एचित्त्ववृष्टिः पवनान्निकोपः सन्ततिपः श्लेष्मकृताश्च रोगाः । संवत्सरेऽस्मिन्
प्रभवे प्रवृत्ते न दुःखमामोति जनस्तथापि ॥ २८ ॥ तस्माद्विर्तायो विभवः
प्रदिष्टः शुक्लस्त्वृतीयः परतः प्रमोदः । प्रजापतिश्चेति यथोत्तराणि शस्तानि वर्षाणि
फलानि चेषाम् ॥ २९ ॥ निष्पन्नशालीक्षुयवादिसस्यां भर्षविमुक्तामुपशान्त-
वैराम् । संहृष्टलोकां कलिदोषमुक्तां क्षत्रं तदा शास्ति च भूतधार्त्राम् ॥ ३० ॥
आद्योऽग्निर्नाः श्रीमुखभाषसाक्षा युवाय पातेति युगे द्वितीये । वर्षाणि ५ अथ
यथाक्रमेण त्रीण्यत्र शस्तानि सप्ते परे द्वे ॥ ३१ ॥ त्रिष्वग्निनाद्येषु निकामयर्षी

गया इसके प्रथम वर्षमें वृष्टि होती है, दूसरे वर्षके आरम्भमें वृष्टि होती है, तीसरे
वर्षमें अतिवृष्टि होती है, चतुर्थके शेषमें वृष्टि होती है, पञ्चम वर्षमें साधारण वृष्टि
होती है ॥ २५ ॥ पहिले जो पारह युगका वर्णन कर आये हैं, इसके मध्यमें जो
प्रथम चार युग हैं जिनके पति विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि हैं, यह चार युग
सबसे अच्छे हैं । तिसके पीछेके अर्थात् बीचके चार युग मध्यम हैं और अन्तके
चार युगका मध्यम फल जानना ॥ २६ ॥ जिस समय बृहस्पति धनिष्ठा नक्षत्रके
प्रथमांशमें प्राप्त होकर माघमासमें उदित होंगे तिस फलही पाछे संवत्सरके प्रथम
प्रभव नामक वर्षका आरम्भ होयगा । यह वर्ष प्राणियोंका हितकारक है ॥ २७ ॥
प्रभवनामक वर्षके वर्त्तमान होनेपर यथापि किसी स्थानमें अनावृष्टि होती है किसी २
स्थानमें बाधु ॥ अग्निका कोप होता है, किसी स्थानमें इतिमय और किसी स्थानमें
श्लेष्माकी पीड़ा होती है, तथापि इस वर्षमें प्राणियोंको विशेष दुःख नहीं होता
॥ २८ ॥ दूसरे वर्षका नाम विभव है, तीसरा शुक्ल, चौथा प्रमोद और पञ्चम
वत्सरका नाम प्रजापति है । यह समस्त वर्ष उत्तरोत्तर शुभफलके देनेवाले हैं ।
इन वर्षोंमें राजालोग इस प्रकारसे पृथ्वीका पालन करते हैं कि, उनके शासनके
गुणसे पृथ्वी, धान्य, ईस और यवादि नाजकी फलनेवाली और मयशून्य, शत्रुदा-
हीन और हर्षित मनुष्योंसे युक्त ॥ कलियुगके दोषोंसे छुट जाती है ॥ २९ ॥ ३० ॥
दूसरे युगमें (बृहस्पति युगमें) जो पांच वत्सर हैं उनके नाम,—अंगिरा,

देवो निरातङ्गतायाश्च लोकाः । अब्दद्वयेऽन्त्येऽपि समा सुवृष्टिः किन्त्वत्र रोगः
 समरागमश्च ॥ ३२ ॥ शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं वर्षं द्वितीयं बहुधान्यमाहुः ।
 प्रमायिनं विक्रममप्यतोऽन्यद्वृषं च विद्यादुरुचारयोगात् ॥ ३३ ॥ आर्यं द्वितीयं
 च शुभे तु वर्षे छतानुकारं कुरुतः प्रजानाम् । पापः प्रमायी वृषविक्रमौ तु
 सुभिक्षदौ रोगजपदौ च ॥ ३४ ॥ श्रेष्ठं चतुर्थस्य युगस्य पूर्वं यद्विजिताहुं
 कथयन्ति वर्षम् । मध्यं द्वितीयं तु सुभानुसंज्ञं रोगप्रदं मृत्युकरं न तच्च ॥ ३५ ॥
 तारणं तदनु भूरिवारिदं सस्यवृद्धिमुदितं च पार्थिवम् । पञ्चमं व्ययमुशानि
 शोभनं मन्मथप्रचलमुत्सवाकुलम् ॥ ३६ ॥ त्वाष्ट्रे युगे सर्वजिदाय उक्तः संव-
 त्तरोऽन्यः खलु सर्वधारी । तस्माद्विरोधी विकृतः खरश्च शस्तो द्वितीयेऽपि
 भपाय शेषाः ॥ ३७ ॥ नन्दनोऽथ विजयो जयस्तथा मन्मथोऽस्य परतम-
 दुर्मुखः । कान्तमत्र युग आदितस्य मन्मथः समफलोऽधमोऽपरः ॥ ३८ ॥

श्रीयुग, भाव, युवा और धाता । तिनमें प्रथमके तीन वर्ष कुछ एक अच्छे हैं और
 दो गममाववाले हैं ॥ ३१ ॥ अंगिरा आदि तीन वर्षोंमें देवतालोग मली मांति
 जट वर्षाने हैं और आदमी निरातंक व निर्मय होते हैं, पिछले दो वर्षमें यद्यपि कृषि
 गममत्रमे होती है परन्तु रोग और समर होता है ॥ ३२ ॥ बृहस्पतिके विचरणसे
 ऐन्द्रनामक जो तौमरा युग होता है उसके प्रथम वर्षका नाम ईश्वर, २ बहुधान,
 ३ प्रमायी, ४ विक्रम और पांचवेंका नाम वृष है ॥ ३३ ॥ इसमें पहला और दूसरा
 वर्ष शुभदायी है, बरान मन्माके लोगोंको तौ मानो, सतयुगही हो जाता है । प्रमायी
 वर्ष अनन्त पापदायक है । विक्रम और वृष नामक दो वर्ष सुभिक्षदायक तो हैं
 परन्तु रोग और मयके कर्नेवाले हैं ॥ ३४ ॥ चतुर्थ (हुताश नामक) युगका
 प्रथम वर्ष विमकर नाम विप्रमानु है, अत्युत्तम फलको देनेवाला है । दूसरा वर्ष
 सुभानु मन्मथमन्मथी है अर्थात् रोगदायी है । परन्तु मृत्युदायक नहीं है । तीसरे वर्षका
 नाम शस्तो है (किसी किसीके मतमें दारुण) इसमें अनन्त वृष्टि होती है । चौथे
 वर्षका नाम पार्थिव है, इसमें धान्य बढ़नेमें हर्ष होता है । पांचवें वर्षका नाम व्यय
 है, इस वर्षमें शस्त्रियोंको कष्ट उद्दीप्त होता है, वह उत्तरयुक्त होकर शोभायमान
 होते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ त्वाष्ट्र नामक पञ्चम युगके प्रथम वर्षका नाम संजित,
 २ संजयी, ३ विजयी, ४ विकृत, ५ खर इन पांच वर्षोंमें दूसरा वर्ष मंगलकारी
 है और दोन मन्मथे कर्णन हैं ॥ ३७ ॥ श्रेष्ठरत्न नामक छठे युगमें प्रथम वर्षका
 नाम नन्द है, २ विशद, ३ जय, ४ मन्मथ और पांचवां दुर्मुख है । इन पांच

हेमलम्ब इति सप्तमे युगे स्याद्विलम्बि परतो विकारि च । शर्वरोति तदनु पुत्रः
 स्मृतो वत्सरो गुरुवशेन पञ्चमः ॥ ३९ ॥ इतिप्रायः प्रचुरपवना वृष्टिरब्दे तु
 पूर्वं मन्दं सस्यं न बहुसलिलं वत्सरेऽनो द्वितीये । अत्युद्वेगः प्रचुरसलिलः
 स्यात्तृतीयभूतुर्थो दुर्भिक्षाप पुत्र इति ततः शोभनो चूरितोयः ॥ ४० ॥ वैश्वे
 युगे शोभकदित्यथायः संवत्सरोऽनः शुभकृद्वितीयः । क्रोधी तृतीयः परतः
 क्रमेण विश्वासुभ्येति पराभवश्च ॥ ४१ ॥ पूर्वानरौ प्रीतिकरी प्रजानामेषां
 तृतीयो बहुदोषदोऽब्दः । अन्त्यो सप्तौ किन्तु पराभवेऽग्निः शस्त्रामयार्तिर्दिज-
 गोत्तयश्च ॥ ४२ ॥ आद्यः पुत्रज्ञो नवमे युगेऽब्दः स्यात्कीलकोऽन्यः परतश्च
 सौम्यः । साधारणो रोधकदित्यथायः शुभप्रदो कीलकसौम्यसंज्ञौ ॥ ४३ ॥
 कष्टः पुत्रज्ञो बहुशः प्रजानां साधारणेऽल्पं जलमतिथश्च । यः पञ्चमो रोधक-
 दित्यथायः अभिन्नं जलं तत्र च सस्यसम्पत् ॥ ४४ ॥ इन्द्राग्निदेवं दशमं युगं
 यत् तत्राद्यमब्दं परिधाविसंज्ञम् । प्रमाद्ययानन्दमतः परं यत् स्याद्वाक्षसं चान-

वर्षोंमें प्रथमसे लेकर तीन मनोहर हैं; मन्मथ वत्सर समफली और पञ्चम वत्सर
 अत्यन्त अघम है ॥ ३८ ॥ वृहस्पतिकी गतिके बरासे सप्तम (पिट) युगका
 प्रथम वर्ष हेमलम्ब, २ विलम्बी, ३ विकारी, ४ शर्वरी, ५ पुत्र है । इसके प्रथम
 वर्षमें इतिमय और संज्ञावायुका मय होता है, सायमें संज्ञावायुके पानीभी वर्षता है
 तदोपरान्त दूसरे वर्षमें धान्य और वृष्टिकी अल्पता होती है । तीसरे वर्षमें अत्यन्त
 धनदाहट और अत्यन्त वर्षा होती है । चौथे वर्षमें दुर्भिक्षका मय और पुत्र वर्षमें
 अत्यन्त सुवृष्टि व शुभ होता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वैश्व युगमें प्रथम वर्षका नाम
 शोभकृत्, २ शुभकृत्, ३ क्रोधी, ४ विश्वासु, ५ परामा । इसका प्रथम और
 दूसरा वर्ष प्रजाओंको प्रसन्न करनेवाला है । तीसरा वर्ष बहुत दोषोंका देनेवाला है
 और शप दो संवत्सर समफली हैं; परन्तु परामव वर्षमें आग्नि, शस्त्र, रोग, पीडा
 और गोब्राह्मणोंको पीडा होती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ नवम (सौम्य) युगमें प्रथम
 वर्षका नाम पुत्रंग, २ कीलक, ३ सौम्य, ४ साधारण, पञ्चम रोधकृत् है । तिस्रोंमें
 कीलक और सौम्य वत्सर अत्यन्त शुभदाई हैं ॥ ४३ ॥ पुत्रंग वर्षमें प्रजाओंको
 अत्यन्त कष्ट होता है । साधारण वत्सरमें साधारण वृष्टि और इतिमय होता है
 और पञ्चम वर्ष जिसका नाम रोधकृत् है, इससे सुन्दर वृष्टि और धान्यकी सम्पत्ति
 होती है ॥ ४४ ॥ शक्राग्निदेवत जो दशम युग है, तिसके प्रथम वर्षका नाम परि-

लसंज्ञितं च ॥ ४५ ॥ परिधाविनि मध्यदेशनाशो नृपहानिर्जलमलमभि
 अलसस्तु जनः प्रमादिसंज्ञे ह्यमरं रक्तकपुष्पबीजनाशः ॥ ४६ ॥ तत्पर
 लोकनन्दनो राक्षसः क्षयकरोऽलस्तथा । ग्रीष्मधान्यजननोऽत्र राक्षसो
 पनरकप्रदोऽलः ॥ ४७ ॥ एकादशे पिङ्गलकालयुक्तसिद्धार्थरौद्रः स
 तिथिः ॥ आद्ये तु वृष्टिर्महती सचोरा श्वासो हनूकम्पयुतश्च कासः ॥
 यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं सिद्धार्थसंज्ञे बहवो गुणाश्च । रौद्रोऽतिरौद्रः स
 दिष्टो यो दुर्मतिर्मध्यमवृष्टिर्लुप्तः ॥ ४९ ॥ भाग्ये युगे दुन्दुभि
 सत्पत्य वृद्धिं महतीं करोति । उद्गारिसंज्ञं तदनु क्षयाय नरेश्वराणां
 वृष्टिः ॥ ५० ॥ रक्षाक्षमब्दं कथितं तृतीयं यस्मिन् भयं दंष्ट्रिकृतं
 क्रोधं बहुक्रोधकरं चतुर्थं राष्ट्राणि शून्याकुरुते विरोधिः ॥ ५१ ॥
 युगत्यान्त्यस्यान्त्यं बहुक्षयकारकं जनयति भयं तद्विप्राणां कर्षविलव
 उपचयकरं विदूच्छाणां परस्पहतां तथा कथितमखिलं पञ्चम्ये यत्तद

धावी, दूसरा प्रमादी, ३ आनन्द, ४ राक्षस, ५ अनल है। तिसमें परिधाव
 वत्सरमें मध्यदेशका नाश, राजाकी हानि, साधारण वृष्टि और अग्निका म
 है, प्रमादी वर्षमें लोग अत्यन्त आलसी होते हैं। उलट पुलट होता है।
 फूलोंके बीजका नाश हो जाता है। आनन्दवर्ष आनन्दका देनेवाला और
 अनल-वत्सरमें क्षय होती है। परन्तु विशेषता यह है कि राक्षस वर्षमें ग्री
 धान्य उत्पन्न होते हैं, और अनलवर्ष अग्निकोपका दाता और नरकदाई है
 ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ एकादश (आश्वि) युगमें १ पिङ्गल, २ कालयुक्त, ३
 ४ रौद्र, ५ दुर्मति ये पांच वर्ष होते हैं। इनमेंसे पहिले वर्षमें अत्यन्त वर्षा,
 श्वास और ठोढीको कम्पायमान करनेवाली खांसी होती है। कालयुक्त वर्ष
 दोषकारी है। सिद्धार्थवर्षमें अनेकगुण होते हैं। रौद्रवर्ष अत्यन्त रौद्र और
 है और दुर्मतिवर्ष मध्यम वृष्टिकर करनेवाला है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ म
 बारहवें युगके प्रथम वर्षका नाम दुन्दुभि है; यह धान्यका अत्यन्त बढ़ाने
 तदोपरान्त दूसरा उद्गारी नामक वर्ष (दूसरे मतसे रुधिरौद्गारी) राजा
 और असमान वृष्टि होती है। तीसरे वर्षका नाम रक्षा है; इस वर्षमें दस
 और रोग होता है। चौथे अब्दका नाम क्रोध है। यह क्रोधकारी है और
 राजाजनपदोंको शून्य कर देता है। इस बारहवें युगके पिछले वर्षका

सतः ॥ ५२ ॥ अकलपांशुशटिलः पृथुमूर्तिः कुमुदकुन्दकुसुमस्फटिकाक्षः ।
ग्रहहतो न यदि सत्पथवर्त्ता हतकिरोऽमरगुरुर्मनुजानाम् ॥ ५३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां बृहस्पतिचारोऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

शुक्रचाराध्यायः ।

नागगजैरावतवृषगोजरद्रवमृगाजदहनारण्याः । अभिन्याद्याः कैश्चित् त्रिभिः
क्रमादीथयः कथिताः ॥ १ ॥ नागा तु पवनयान्यानलानि पैतामहाभिभास्तिस्रः ।
गोर्वाद्यामभिन्यः पीप्पलं द्वे चापि भद्रपदे ॥ २ ॥ जारद्रव्यां श्रवणात् त्रिभं च

है; यह क्षयकारक है, ब्राह्मणोंको मयदायी, खेतीके बलको बढ़ानेवाले, परामे
धनके हरनेवाले, वैश्य और शूद्रोंकी वृद्धि करता है। इस प्रकार संक्षेपसे साठ
संवत्सरका समस्त फल कदा गया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ देवताओंके गुरु बृह-
स्पतिजी जो निर्मल किरणवाले हों, स्थूलमूर्ति, कुमुद, कुन्दपुष्प वा बिल्वैरे पत्थरकी
समान कान्तिवाले हों किन्ती ग्रहसे भेदित न होकर श्रेष्ठ मार्गमें चलते हों तो मनु-
ष्योंको हितकारी होते हैं ॥ ५३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पञ्चमोत्तरदेदीयमुरादायाद-
वास्तव्यर्पणदितचलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

कोई कोई पाण्डित कहते हैं कि—अभिनी आदि तीन तीन नक्षत्रोंमें एक
एक बीधि होती है। यह बीधियें नौ भागोंमें बांटी गई हैं; यथा,—१ नाग,
२ गज, ३ ऐरावत, ४ वृषभ, ५ गो, ६ जारद्रव, ७ मृग, ८ अज और ९ दहन है ॥ १ ॥
किसीके मतसे स्वाती, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रमें नागबीधि होती है। गज,
ऐरावत और वृषभ नामक जो तीन बीधि हैं, यह रोहिणीसे उत्तराफाल्गुनी तक
तीन तीन नक्षत्रमें हुआ करती हैं। और अभिनी, रेवती, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तरा-
भाद्रपदा नक्षत्रमें गोबीधि हुआ करती है ॥ २ ॥ श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा
नक्षत्रमें जारद्रवी बीधि होती है; अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रमें मृगबीधि होती
है; हस्त, विशाखा और चित्रा नक्षत्रमें अजबीधि और पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा

१ गतिके अनुसार अन्यविशेषका नाम बीधि है ।

मैत्राद्यम् । हस्तविशाखात्वाग्राण्यजेत्यपादाद्वयं दहना ॥ ३ ॥ त्रि
सस्तासां कर्मादुदङ्घ्रयाम्यमार्गस्थाः । तासामप्युत्तरमध्यदक्षिणाति
कैका ॥ ४ ॥ वीथीमार्गानपरे कथयन्ति यथा स्थिता भूमार्गस्य । नक्षत्र
तारा याम्योत्तरमध्यमास्तद्वत् ॥ ५ ॥ उत्तरमार्गो याम्यादि निगदितो मध्य
भाग्याद्यः । दक्षिणमार्गोऽपादादि कैथिदेवं कृता मार्गाः ॥ ६ ॥ ज्योतिषमा
शास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम् । स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु
मतं वक्ष्ये ॥ ७ ॥ उत्तरवीथिषुः शुक्र सुमिक्षाशिवरुद्रतोऽस्तमुदयं
मध्यासु मध्यफलदः कष्टफलो दक्षिणस्थासु ॥ ८ ॥ अत्युत्तमोत्तमोत्तमं स
ध्यन्यूनमधमकष्टफलम् । कष्टतमं सौम्याद्यासु वीथिषु यथाक्रमं ब्रूयात् ॥ ९ ॥
भरणीपूर्वं मण्डलमृक्षचतुष्कं सुमिक्षकरमाद्यम् । वङ्गाङ्गमाहिषबाहिककलि
नक्षत्रमे दहना वीथि हुआ करती है ॥ ३ ॥ इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्रमें नौ
होनेपर मत्येक वीथिही तीन बार होती हैं; इस कारण इन सब वीथियोंमें
तीन वीथि सूर्यमार्गके उत्तर, मध्य और दक्षिणमार्गमें विराजमान हैं, फिर
एक एक यथाक्रमसे उत्तर, मध्य और दक्षिणपथमें विराजमान हैं, जैसे तीन
वीथि हैं; तिनमें प्रथम उत्तरमार्गस्था, दूसरी मध्यस्था और तीसरी दक्षिणमा
स्थित है ॥ ४ ॥ कोई कोई महात्मा कहते हैं कि सब नक्षत्रोंके नक्षत्र मार्ग
योग तारागणे उत्तर, मध्य और दक्षिणभागमें जैसे विराजमान हैं, समस्त वी
मार्गोंमें वैसेही विराजमान हैं ॥ ५ ॥ किसी किसी पंडितके मतसे भरणीसे उ
मार्ग, पूर्वाफाल्गुनीसे मध्यममार्ग और पूर्वाषाढासे दक्षिणमार्गका आरम्भ होत
॥ ६ ॥ ज्योतिष आगमशास्त्र अर्थात् सन्देहपूर्वक किसी बातकी मीमांसा क
मेरी (मुक्त सरांखे आदमीकी) सामर्थ्यसे बाहर है; इस कारण (ऋषिलोग
किसीके मतको दोष देकर या किसीके मतकी पोषकता न करके) बहुतांशके मत
प्रकट करूंगा ॥ ७ ॥ जिस समय शुक्राचार्य उत्तरवीथिमें विराजमान होकर उ
या अस्त होगे तबही सुमिक्ष या मंगल होगा। मध्यवीथिमें होनेसे मध्यम
और दक्षिणवीथिमें होनेसे कष्टकारी फल होता है ॥ ८ ॥ आर्द्रा नक्षत्रसे आर
करके मृगशिरातक जो नौ वीथियें हैं तिनमें शुक्रा उदय या अस्त होनेसे य
क्रमसे अत्युत्तम, उत्तम, ऊन, सम, मध्य, न्यून, अधम, कष्ट और कष्टतम प
उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ भरणीसे लेकर चार नक्षत्रमें जो मण्डल अर्थात् वीथि

१ जिस नक्षत्रमें कितने योगतारे हैं सो नक्षत्रगुणाध्यायमें कहेंगे ।

देशेषु भयजननम् ॥ १० ॥ अत्रोदितमारोहेद्वयहोऽपरो यदि सितं ततो
हन्पात् । भद्राश्वशूरसेनकपौधेयककोटिर्वपनृपान् ॥ ११ ॥ भवतुष्टयमार्द्राद्यं
द्वितीयममिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै । विषाणामशुभकरं विशेषतः क्रूरचेष्टानाम् ॥ १२ ॥
अन्पेनात्रागन्ते म्लेच्छाटविकाश्वजीविगोमन्तान् । गोनर्दनीचशूद्रान् वैदेहां-
भानयः स्पृशति ॥ १३ ॥ विचरन् मघादिपञ्चकमुदितः सस्यमणाशरुच्छुक्रः ।
शुक्लस्करभयजननो नीचोन्नतिसङ्कररश्मि ॥ १४ ॥ पित्र्यायेऽवष्टब्धो हन्त्यन्ये
नाविकाञ्छपरशूद्रान् । पुण्ड्रापरान्त्यशूलिकघनवासिद्विडसामुद्रान् ॥ १५ ॥
स्वात्पायं भवितव्यं मण्डलमेतच्चतुर्थमभयकरम् । ब्रह्मक्षत्रसुभिक्षाभिवृद्धये
मित्रभेदाय ॥ १६ ॥ अत्राक्रान्ते मृत्युः किरातभर्तुः पिनटि चेक्षाकून् ।

उत्तरी प्रथम बीधिमें शुक्रका उदय या अस्त होनेसे सुभिक्ष होता है; परन्तु अंग,
बंग, मद्रिप, माहिक और फॉलंग देशमें भय होता है ॥ १० ॥ इस प्रथम मण्ड-
लमें उदित शुक्राचार्यके ऊपर जो कोई ग्रह होय तो मद्राश्व, शूरसेनक, पौधेयक
और कोटिर्वप देशके राजाका नाश होता है ॥ ११ ॥ आर्द्रासे लेकर जो चार नक्षत्र
उनको दूसरा मंडल कहते हैं. (इनमें शुक्रका उदय या अस्त होनेसे) इससे
चतुतसा जल वर्षना है और यह धान्य सम्पत्तिका निमित्त है. परन्तु ब्राह्मणोंको
अशुभ होता है, विशेष करके जो लोग क्रूर चेष्टावाले हैं उनकी विशेष हानि है
॥ १२ ॥ दूसरे मंडलवाले शुक्रको यदि कोई आक्रमण करे तो म्लेच्छ, आटविका,
अश्वजीवी अर्थात् घनजारे इत्यादि, गोमन्त (कुचोंसे आजीविका रखनेवाले), चतुतसी
गायें रखनेवाले, नीच, शूद्र और विदेहदेशके रहनेवालोंको अनीति स्पर्श करती है ॥ १३ ॥
मघासे लेकर चित्रातक पांच नक्षत्रमें घूमते २ यदि शुक्राचार्य उदय होवें तो
नमस्त धान्यका नाश होता है. शुधामय और चोरमय होता है, नीचोंकी उन्नति
और वर्णसंकरजातिकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥ इन मघादि तीसरे मंडलके
दैत्यगुरु यदि और किसी ग्रहसे रुक जाय तो पेड़ोंके समूह, शयर, शूद्र, पुण्ड्र,
पाथिमकी सीमाका अज, शूलिक, वनवासी, द्विड, सामुद्रके पुरुषोंका नाश हो
जाता है ॥ १५ ॥ स्वाती, विशाखा और अनुराधा नक्षत्रमें चौथा मण्डल होता है.
इसमें शुक्राचार्यके मयाण करनेसे अमय होता है, ब्राह्मण और क्षत्रीजातिके लिये
सुभिक्ष होता है, परन्तु मित्रोंमें परस्पर भेद हो जाता है ॥ १६ ॥ यह चौथा
मंडल आक्रान्त हो जाय तो किरातराजाकी मृत्यु होती है. और इक्ष्वाकुवंशवाले
और प्रत्यन्त वा अत्रन्तिदेशके रहनेवाले, पुलिन्द, तंगण और शूरसेनवासी लोग

प्रत्यन्तावन्तिपुलिन्दतङ्गणाञ्जूरसेनांश्च ॥ १७ ॥ ज्येष्ठाद्यं पञ्चशं शुक्लकरो-
 गदं प्रवाधयते । काश्मीराश्मकमत्स्यान् सचारुदेवीनवन्तीश्च ॥ १८ ॥ आगे-
 हेऽत्राभीरान् द्रविडाम्बष्ठत्रिगर्तसौराष्ट्रान् । नाशयति सिन्धुसौर्वीरकांश्च काशोप-
 रस्य वधः ॥ १९ ॥ पष्ठं पणनक्षत्रं शुभमेतन्मण्डलं धनिशायम् । सूरियनो-
 कुलाकुलमनल्पधान्यं कश्चित् समयम् ॥ २० ॥ अत्रारोहे शूलिकगान्धार-
 न्तयः प्रपीडयन्ते । वैदेहवधः प्रत्यन्तयवनशकदासपारिवृद्धिः ॥ २१ ॥ अनरस्यो
 स्वात्यद्यं ज्येष्ठाद्यं चापि मण्डलं शुभदम् । पित्र्याद्यं पूर्वस्यां शेषाणि ययोक-
 फलदानि ॥ २२ ॥ दृष्टोऽनस्तगतेऽर्के भयकृत् क्षुद्ररोगकृत् समस्तमहः । अर्धादिकं
 च सेन्दुर्नृपबलपुरभेदकच्छुक्रः ॥ २३ ॥ मिन्दन् गतोऽनलक्षे कूलान्तिका-
 न्तवारिवाहाभिः । अव्यक्ततुङ्गानेघा समा सरिर्द्रिर्भवति धार्त्री ॥ २४ ॥

पोषित होते हैं ॥ १७ ॥ ज्येष्ठासे लेकर श्रवणतक जो पांच नक्षत्र हैं तिनमें
 पांचवां मण्डल है, इसमें क्षुधा, चोर और रोगकी बाधा होती है, जो भूयुक्त पु-
 इसमें आरोहण करें तौ काश्मीर, अश्मक, मत्स्य, चारुदेवी और अवन्तीदेशों
 रहनेवाले मनुष्य, आभीरजाति, द्रविड, अम्बष्ठ, त्रिगर्त, सौराष्ट्र, सिन्धु और सौर-
 रदेशके पुरुष और काश्मीरके राजाका विनाश होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥ धनिष्ठा
 लेकर अश्विनीतक जो छः नक्षत्र हैं तिनको छठा मंडल कहते हैं, यह शुभकार
 है, इसमें समस्त लोग बहुतसे धन धान्य और गायदोरोसे युक्त होकर अत्यंत
 सुखी होते हैं, परन्तु कोई स्थान समय होता है, इसमें शुक्रका आरोहण होनेपर
 शूलिक, गान्धार और अवन्तीके रहनेवाले लोग पीडित होते हैं; विदेह नरपतिक
 नाश और प्रत्यन्तदेशके यवन, शक और दासलोगोंकी वृद्धि होती है ॥ २० ॥ २१ ॥
 जिन छः मण्डलोंका वर्णन किया गया तिनमें स्वाती नक्षत्रादि और ज्येष्ठानक्ष-
 त्रादि जो दो मण्डल होते हैं, यह दोनों मण्डल पश्चिमदिशामें होनेसे शुभकारक हैं
 और मघानक्षत्रादि जो एक मण्डल है, वह पूर्वदिशामें होनेपर अत्यन्त शुभकारी
 हैं । शेषमण्डल ययोक फलके देनेवाले हैं ॥ २२ ॥ सूर्य अस्त होनेके पहिले
 शुक्रके दृष्टि आनेसे मय होता है, सारे दिन दिखाई देनेसे क्षुधा और रोग होता है,
 आधे दिन दिखाई देनेसे वा चन्द्रमाके साथ दिखाई देनेसे राजालोगोंका, सेनाग
 और नगरका भेद होता है ॥ २३ ॥ कृत्तिकानक्षत्र भेदकरके शुक्राचार्य गमन के
 तौ कुलान्तिकान्त जटारादिशादिनी नदियोंके द्वाग पृथ्वीके ऊंचे नीचे स्थान अप-
 वर्णन होकर समान हो जाने हैं अर्थात् बड़ी मारी बाढ आती है ॥ २४ ॥

प्राजापत्ये शकटे भिन्ने कृत्स्न पातकं वसुधा । केशास्त्रिककृतवत्ता कानालमिव
व्रतं धने ॥ २५ ॥ सौम्योत्तमो रसस्यसङ्क्षयायोत्तमानुमुदितः । आशङ्कनस्तु
कोशलकलिङ्गहा सलिलनिकरकरः ॥ २६ ॥ अभ्यर्कवदार्णां पुनर्वसुस्ये मिते
महाननयः । पुष्पे पुष्टा वृष्टिर्विद्याधरणविमर्दश्च ॥ २७ ॥ आश्लेषास्तु भुजङ्गमदा-
रुणपीडावहभरज्जुकरः । भिन्दन् मघां महामात्रदोषहृद्गिरिवृष्टिकरः ॥ २८ ॥
भाम्ये शबरपुलिन्दप्रध्वंसकरोऽप्युनिवहमोक्षाय । आर्यम्णे कुरुजाङ्गलपाशा-
लघ्नः सलिलदायी ॥ २९ ॥ कीरवचित्रकराणां हन्त पीडामलम्य च निरोधः ।
कूपकदण्डजपीडा चित्रास्थे शोभना वृष्टिः ॥ ३० ॥ स्वार्ता नृपानवृष्टिद्वन्द्वनिपा-
विकान् स्पृशत्पनयः । ऐन्द्राग्रेऽपि नुवृष्टिर्वणिजां च भयं विजानीयान् ॥ ३१ ॥

शुक्रसे रोहिणीनक्षत्र वा शरटे भिन्न होय (पापी लोग जिस प्रकार पापका प्राय-
श्चित्त करनेके लिये कपालिका मत धारण करने हैं भैरवी) ती पृथ्वी केज
और आरिथयोंके दुष्टाहोंमें अनेक रंगोंके धारण करके माने पाप करनेके
उपरान्न कपाल मत धारण करनेकी अर्थात् अत्यन्त मरी पड़ती है ॥ २५ ॥
उदना मृगादिरानक्षत्रमें अने ती जल और धान्यका नाश होय । आश्रं नक्षत्रमें
गमन करे ती कोशल और कलिंग देशका नाश होता है । परन्तु वृष्टि पड़ने होती है
॥ २६ ॥ पुनर्वसु नक्षत्रमें दुष्टाचार्यके गमन करनेपर अभ्यर्क और गिरिभेद के
रहनेवाले मनुष्योंमें अत्यन्त अनीति आती है । पुष्प नक्षत्रमें गमन करनेपर
अनेक वृष्टि होती है । परन्तु विद्याधर्ममें विमर्द हुआ करता है ॥ २७ ॥ आश्लेषा
नक्षत्रमें सर्पके गमन करनेसे सर्पभय और अत्यन्त पीडा होती है । मघानक्षत्र
भेद करनेपर हस्तिपक लोगोंको दुष्ट करता है और अत्यन्त वृष्टि होती है ॥ २८ ॥
पूर्वाषाढा नक्षत्र शुक्रसे भिन्न होय ती शबर पुलिन्दगण नाशको प्राप्त होते हैं ।
वृष्टि बहुत होती है । उत्तराषाढा नक्षत्र भिन्न होय ती वर्षा होती है और कुरुजांगल
व पांचालदेशका नाश हो जाता है ॥ २९ ॥ यदि हस्त नक्षत्र शुक्रसे भिन्न होय ती
कीरव और चित्रकारोंको पीडा होती है, जल नहीं बर्षता । चित्रा नक्षत्र शुक्रसे
भिन्न होय ती कूपकरक और अण्डजोंको पीडा होती है; वृष्टि शोभनी दुः होती
है ॥ ३० ॥ स्वार्ता नक्षत्रमें दुष्ट आदि ती वर्षा होय और दुष्ट, वणिज, और

१॥ इति सप्तमो भागो यस्य माध्याह्निककृतस्तु ॥ विज्ञेयोऽभ्यर्कः भिन्नाह रोहिण्याः
शरटे शुक्रः । ॥ पूर्वोक्तिकान्ते, नक्षत्रप्रत्ययविकारे ॥

मैत्रे क्षत्रविरोधो ज्येष्ठायां क्षत्रमुख्यसन्तापः । मौलिकभिपजां मूले त्रिष्वपि चैते-
 प्वनावृष्टिः ॥ ३२ ॥ आप्ये सलिलजपीडा विश्वेशे व्याधयः प्रकुप्यन्ति । श्रव-
 णे श्रवणव्याधिः पापण्डिभयं धनिष्ठासु ॥ ३३ ॥ शतभिपजि शोण्डिकानामनै-
 कपे द्यूतजीविनां पीडा । कुरुपाञ्चालानामपि करोति चास्मिन् सितः सलि-
 लम् ॥ ३४ ॥ अहिर्बुध्न्ये फलमूलतापकृदायिनां च रेवत्याम् । अश्विन्यां
 हयपानां याम्ये तु किरातयवनानाम् ॥ ३५ ॥ चतुर्दशे पञ्चदशे तथाऽमे-
 तमिहपक्षस्य त्रिथौ भूगोः सुतः । यदा व्रजेदर्शनमस्तमेति वा तदा महीवारि-
 मर्याषि लक्ष्यते ॥ ३६ ॥ गुरुर्गुरुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः परस्परं सप्तमराशि गौ यदा ।
 तदा प्रजा रुग्णयशोकपीडिता न वारि पश्यन्ति पुरन्दरोज्झितम् ॥ ३७ ॥
 यदास्थिता जीवबुधारसूर्प्यजाः सितस्य सर्वेऽग्रपथानुवर्तिनः । नृगनाप-
 विदाधरसङ्गरास्तदा भवन्ति वाताश्च समुच्छ्रितान्तकाः ॥ ३८ ॥
 न मित्रभावे सुहृदो व्यवस्थिताः क्रियासु सम्यङ् रता द्विजातयः ।
 न चान्यमप्यभ्यु ददाति वासयो भिनत्ति व्रजेण शिरांसि भूभृताम् ॥ ३९ ॥

नारिक लोगोंको अत्यन्त अनीति स्पर्श करे । विशाखामें शुक्र होय तो सुवृष्टि और
 मनीषोंको भय होता है ॥ ३१ ॥ अनुराधामें क्षत्रीवध, ज्येष्ठामें प्रधान क्षत्रियों
 मन्त्रात्र, मूलमें प्रधान वैयोंको पीडा होती है, और जितने दिनतक इन तीन ना-
 राओंमें शुक्र रहता है तबतक अनावृष्टि होती है ॥ ३२ ॥ जो पूर्वाषाढा नक्षत्र
 शुक्र गमन करे तो जलमें उत्पन्न हुए जीवोंको पीडा होती है, उत्तराषाढामें व्याधि
 श्रवणमें कर्गदीरा और धनिष्ठामें पाषाण्डियोंको भय होता है ॥ ३३ ॥ शतभि-
 नक्षत्रमें शुक्रका गमन होय तो कलवारलोगोंको पीडा होती है, पूर्वामाद्रपदा
 ज्वारियोंको, कुरुपाञ्चालोंको पीडा और वृष्टि होती है ॥ ३४ ॥ उत्तरामाद्रपदा
 पल और मृत्, रेवतीमें पदानिक, अश्विनीमें अधपालक और मरणीमें किरात ।
 यदन लोगोंका ताप होता है ॥ ३५ ॥ कृष्णपक्षकी चतुर्दशी पञ्चदशी वा अग्र-
 तिदिमें जो शुक्रका उदय या अस्त होय तो पृथ्वीपर बहुतही जल वर्षता है ॥ ३६ ॥
 यदि मृत् और शुक्र पूर्वश्रमिमें परस्पर सातवीं राशिमें गत होय तो गेह और
 मयने प्रजागण अन्यन्न पीडित होने हैं, वृष्टि नहीं होनी है ॥ ३७ ॥ बुधराशि
 बुध, मंगल और शनि यह मय यह यदि शुक्रके आगोके मार्गमें चरें तो
 मृदुल, मय और विषयमें सुट होना है, और वायुमें ज्वाला होता है, बन्धु

शनैश्चरे म्लेच्छपिडालकुञ्जराः खरा महिष्योऽसितधान्यशूकराः । पुलिन्दश्चदाभ्य-
सदक्षिणापथाः क्षयं व्रजन्त्यक्षिमरुद्रदोद्भवैः ॥ ४० ॥ निहन्ति शुकः क्षितिजेऽ-
ग्रतः प्रजा हुताशशस्त्रदवृष्टितस्करैः । चराचरं व्यक्तमथोत्तरापथं दिशोऽग्निवि-
द्युदजता च पीडयेत् ॥ ४१ ॥ बृहस्पतौ हन्ति पुरःस्थिते सितः सितं समस्तं
दिजगोसुरालयान् । दिशं च पूर्वां करकासृजोऽम्बुदा गले गदा भूरि भवेच्च
शारदम् ॥ ४२ ॥ सौम्योऽस्तोदययोः पुरो भृगुसुतस्यावस्थितस्तोयलुद्-
रोगान् पिचजकामलां च कुरुते प्रण्णाति च श्रेष्मिकम् । हन्यात् प्रव्रजिताग्नि-
होत्रिकभिषग्नोपजीव्यान् हयान् वैश्यान् गाः सह वाहनैर्नरपतीन् पीतानि
पश्यादिशम् ॥ ४३ ॥ शिखिभयमनलाग्ने शस्त्रकोपश्च रक्ते कनकनिकपगौरे
व्याधयो दैत्यपूज्ये । हरितकपिलरूपे श्वासकासप्रकोपः पतति न सलिलं स्वाद्य-
लोग परस्पर मिश्रमात्र नहीं रखते, दिजाति लोग अपनी क्रियाको छोड़ देते हैं,
इन्द्र साधारण जलभी नहीं बर्षता बरन वज्र गिराकर पर्वतोंके मस्तक फोड़ देता
है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जय शनैश्चर शुकके आगे चले तो म्लेच्छजाति, मिलावजाति,
हाथी, गधा, भैंस, काले धान, शूकर, पुलिन्द जाति, शूद्रगण और दक्षिणदेश,
जैत्र और वायुसे उत्पन्न हुए रोगोंसे नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४० ॥ यदि
शुकके आगे भंगल गमन करता होय तो अग्नि, शस्त्र, भुधा, अष्टदि और
तस्करोंसे समस्त प्रजाको पीडा होती है, उत्तर दिशा नाशको प्राप्त हो जाती है,
और अग्नि, मिजली और घूरसे सब दिशा पीडित होती हैं ॥ ४१ ॥ शुकके
आगेके मार्गमें जो बृहस्पतिव्रज गमन होय तो समस्त मधुर पदार्थ, आश्विन, दोर,
देवताओंके स्थान और पूर्वदिशा नाशको प्राप्त हो जाती है, मेघ ओले बरसाते हैं,
सब लोगोंके गलेमें पीडा होती है और शारदीय समस्त धान्य उत्पन्न होते हैं ॥ ४२ ॥
शुकके उदय या अस्तकालमें शुकके आगेके मार्गमें जय शुभ रहता है तब वर्षा
और रोग होते हैं, परन्तु जिसमें पिचसे उत्पन्न हुए रोग तथा कामला रोग अधिक
होना है, श्रेष्म ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले सब द्रव्य अधिकार्द्धसे उत्पन्न होते हैं,
संन्यासी, अग्निहोत्री, वैद्य, नृत्यसे आजीविका करनेवाले, अश्व, वैश्य, गौ, वाह-
नोंके साथ राजा, पीले वर्णके पदार्थोंका और पश्चिम दिशाका नाश हो जाता है
॥ ४३ ॥ जिस समय अग्निव्रज समान शुकव्रज वर्ण होय तब अग्निमय, रक्तवर्ण
होय तो शस्त्रकोप और कसौटीपर धिसे हुए शुबर्णकी रेखाकी नाई गौरवर्ण होय
तो व्याधि होती है, यदि शुक हरित और कपिलवर्ण होय तो दमा और खांसीका

स्मरुक्षासितामे ॥ ४४ ॥ दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिमृत् स्फुटविकसत्किरणो
 बृहत्तनुः । सुगतिरविकृतो जयान्वितः कृतयुगरूपकरः सिताक्षयः ॥ ४५ ॥
 इति श्रीबाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शुक्रचारो नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

शनैश्चरचारः ।

श्रवणानिलहस्ताङ्गं भरणीमाग्योपगः सुतोऽर्कस्य । प्रचुरसलिलोपगूढं करोति
 धार्त्रो यदि स्निग्धः ॥ १ ॥ अहिवरुणपुरन्दरदैवतेषु सुक्षेमरुन्न चाति जलम् । शुभं
 घ्रावृष्टिकरो मूले प्रत्येकमपि वक्ष्ये ॥ २ ॥ तुरगतुरगोपचारककविवैद्यामात्यहार्क-
 जोऽश्विगतः । याम्ये नर्त्तकवादकगेयज्ञभुश्रनौकृतिकान् ॥ ३ ॥ बहुलास्थे पीड्यने
 सौरेऽप्युपजीविनश्चमूपाश्च । रोहिण्यां कोशलमद्रकाशिपाञ्चालशाकटिकाः ॥ ४ ॥

रोग होता है, और भस्मकी समान रूखा या काला रंग होय तौ आकाशसे बर-
 नहीं होती ॥ ४४ ॥ दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य जब दही, कुमुद या चन्द्रमार्ग
 समान कान्तिशाले हों, फाति स्वच्छरूपसे शलकती होय, किरणें फैली हुई होय
 उच्चम गानेशाला, सिरसरहित और जययुक्त होय तो सब प्राणियोंके लिये माने
 गनपुगरी आ जाता है ॥ ४५ ॥

इति श्रीबाराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयपुराणामादा-
 र्त्नव्य-योगेऽतयउद्देशममादायैश्वरिविरचितायां भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो मुख्यतः पुनः ज्ञानि श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वाफाल्गुनी
 नक्षत्रमें सिंगतमान होकर मनोहर वर्णशाला होय तौ पृथ्वीपर बहुतही जल वर्षता है
 ॥ १ ॥ आश्लेषा, शनमिषा वा ज्येष्ठा नक्षत्रमें ज्ञानि विचरण करे तौ सुमंगल होता
 है, अन्यन्त बरस नहीं होती । मूल नक्षत्रमें विचरण करे तौ शुष्का, शम्भमय और
 घनाहृष्ट होती है । यह तौ माघारण फल बढ़ा गया अब अन्येक नक्षत्रमें ज्ञानि
 विचरण करनेमें जो फल होता है वह बढ़ा जाता है ॥ २ ॥ ज्ञानि अभिनी नक्षत्रमें
 विचरण करे तो अश्व, यशमादी, बरि, वैद्य और मंत्रियोंकी दानि होती है ।
 मन्त्रों नक्षत्रमें विचरण करे तो नाचनेशाले, बजानेशाले, गानेशाले और छोटी नक्षत्रों
 कीरकः गिराई करनेशाले पुरुषोंकी दानि होती है ॥ ३ ॥ कृत्तिका नक्षत्रमें ज्ञानि
 विचरण करे तो अर्द्धविकसित करनेशाले और गजालोगोंकी पीडा होती है ।

मृगशिरसि वत्सयाजकयजमानार्यजनमध्यदेशाश्च । रीदस्थे पारतरामतैलिकर
जकचौराश्च ॥ ५ ॥ आदित्ये पञ्चनदप्रत्यन्तसुराष्ट्रसिन्धुसौवीराः । पुष्ये घाण्डि-
टकघोषिकयवनवणिक्कितवकुसुमानि ॥ ६ ॥ सार्वे जलरुहसर्पाः पित्र्ये बाह्मी-
कचोन्नगान्धाराः । शूलिकपारतवैश्याः कोठागाराणि वणिजश्च ॥ ७ ॥
भाग्ये रसविक्रयिणः पण्पाक्षी कन्यका महाराष्ट्राः । आर्य्यगणे नृपगुहलवणाभि-
धुकाम्बूनि तक्षशिल्पा ॥ ८ ॥ हस्ते नापितचाक्रिकचौराभिषक्सूचिकादिपग्राहाः ।
बन्धक्यः कौशलका मालाकाराश्च पीड्यन्ते ॥ ९ ॥ चित्रास्थे प्रमदाजनले-
खकचित्रज्ञाचित्रभाण्डानि । स्वाती मागधचरदूतसूतसोलपुवनदायाः ॥ १० ॥
पेंशमास्थे प्रेगर्तचीनकौलूनकुङ्कुमं लाक्षा । सस्यान्यथ माजिष्ठं कौस्तुभं च

रोहिणी नक्षत्रमें शनि विराजमान होय तो कौशल, मद्र, काशी, पांचालदेश और
छकडाँसे जीविकाका निर्वाह करनेवाले पुरुषोंको पीडा होती है ॥ ४ ॥ मृगशिरा
नक्षत्रमें शनि होय तो वत्सदेश, याजक, यजमान आर्यपुरुष और मध्य देशके
लोगोंको पीडा होती है । आर्द्रा नक्षत्रमें शनि होय तो गमठदेश, नेली, धोबी,
रंगरेज और घोर अत्यन्त पीटिन होने हैं ॥ ५ ॥ पुनर्वसु नक्षत्रमें शनि होय तो
पंजाब, प्रत्यन्त, सुराष्ट्र, सिन्ध और सौवीर देशको अत्यन्त पीडा होती है ।
पुष्य नक्षत्रमें शनिके सहवास होय तो घंटा बनानेवाले, घोषिक (ढंढोरा फेरने-
वाले), यवन, वणिक्, खल और सब पुष्पोंको पीडा होती है ॥ ६ ॥ आश्लेषा
नक्षत्रमें शनि होय तो पद्म और सपोंके; मघा नक्षत्रमें होय तो माहीक, चीन,
गान्धार, शूलिक, पारत, वैश्य, धनागार और मनियोंके लिये विघ्न होता है ॥ ७ ॥
पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें शनि रहता होय तो रस बेचनेवाले लोग, वैश्या, कन्या और
महाराष्ट्रदेशको विघ्न होता है । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें शनि होय तो राजा, गुह,
लवण, भिक्षु, जल और नक्षशिला नगरीको विघ्न होता है ॥ ८ ॥ इम्त नक्षत्रमें
शनि होय तो नार्द, चाक्रिक (चक्रशिल्पी), चोर, वैद्य, दर्जी, द्विपग्राह (दाथी
पकड़नेवाले), बन्धकी, कौशली और माला बनानेवालोंको पीडा होती है ॥ ९ ॥
यदि शनि चित्रा नक्षत्रमें होय तो स्त्री, लेखक, चित्रविद्याको जाननेवालों (मुसौ-
विर) को और अनेक प्रकारके द्रव्य पीडाको प्राप्त होते हैं । यदि स्वाती नक्षत्रमें
शनि होय तो मागध, दूत, चर, साराथि; नावपर चलनेवाले और नदादिकोंको
पीडा होती है ॥ १० ॥ जो विशाखा नक्षत्रमें शनि विचरण करता होय तो
प्रेगर्त, चीन और कुल्लत देश, कुमकुम, लाख, धान्य, मजीठ और कुमुम्भ क्षयको

श्रूयताम् ॥ ७ ॥ उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः कुसमायोगमलप्रदूषितानि । हस्त-
 यानि सतामिव स्वभावात् पुनरम्बुनि भवन्ति निर्मलानि ॥ ८ ॥ पार्श्वद्वयाधि-
 तचक्रवाकामाप्नुयन्ती सस्वनहंसपक्षिम् । ताम्बूलरक्तोत्कपिताग्रदन्ती विभाति
 योषेव सरित्सहासा ॥ ९ ॥ इन्द्रीवरासन्नसितोत्पलान्विता सरिद्रमत्युपशान्ति-
 मृषिता । सभ्रूलताक्षेपकटाक्षर्वाक्षणा विदग्धयोषेव विभाति सस्मरा ॥ १० ॥
 इन्दोः पयोदविगमोपहितां विभ्रुतिम् । द्रष्टुं तरङ्गवलया कुमुदं निशासु । उन्म-
 ल्यत्पालिनिलनिदलं सुपश्म वर्षाविलोचनमिवासिततारकान्तम् ॥ ११ ॥
 नानाविचित्राम्बुजहंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता । रत्नैः प्रभूतैः कुमुद-
 फलेभ्यः भूपच्छर्वावर्धमगस्त्यनाम्ने ॥ १२ ॥ सलिलममरपाज्ञयोज्जितं यद-
 पारिवेष्टनमूर्तिभिर्भुजङ्गैः । फणिजनिताविपाग्रिसम्प्रदुष्टं भवति शिवं तदगस्त्य-
 दर्शनम् ॥ १३ ॥ स्मरणादपि पापमपाकुरुते किमुत स्तुतिभिर्वरुणाङ्गुल-
 वरैः ॥ १४ ॥ जिस प्रकार घुरे लोगोंके समागमरूप मलसे दूषित हृदयवाला साधु
 दर्शन करनेही स्वभावसेही निर्मल हो जाता है वैसेही वर्षाकालीन महीके योगरत्न
 योगद मित्रा हुआ जल अगस्त्यमुनिको उदय होतेही स्वभावसेही निर्मल हो जाता
 है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार मुन्दरी स्त्रीके हंसनेके समय ताम्बूलरागरंजित अतपस्व स्त-
 र्गर्भ ओष्ठधारेके मण्यमागमें भेददन्तपांति विराजमान होती है, तैसेही अगस्त्य
 जीके उदयमें दोनों पार्श्वमें अधिष्ठित दो लालवर्ण चक्रवाकोंके बीचमें विराजमान,
 सभ्रूलतमान हंगवती टाग नदियां शोभायमान होती हैं ॥ ९ ॥ अगस्त्य मुनिको
 उदय होनेमें नदियां नीलगङ्गके निकटस्थित भेतपद्मयुक्त और तिसके ऊपर भ्रमण
 करने वाले भ्रमणान्वित शोभित होनेमें मानो मायोंके साथ कटाक्षरी चलने
 वाली कल्लो वन हुए विदग्धमूर्ती समान शोभायमान होती हैं ॥ १० ॥
 सलिलममरपाज्ञ योज्जितं यद-
 अपारिवेष्टनमूर्तिभिर्भुजङ्गैः । फणिजनिताविपाग्रिसम्प्रदुष्टं भवति शिवं तदगस्त्य-
 दर्शनम् ॥ १३ ॥ जिसका स्मरण करनेही पापमपूर हो जाता है, उदय

सुनीभिः कथितोऽस्य यथावाविधिः कथयामि तथैव नरेन्द्राहितम् ॥ १४ ॥
संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य विज्ञाय सन्दर्शनमादिशेज्जः । तद्योज्यन्यामग-
तस्य कन्यां भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य ॥ १५ ॥ ईषत्प्रभिन्नेऽण्णरग्नि-
जालेनशेऽन्धकारे दिशि दक्षिणस्याम् । सांवत्सरावेदितादिविभागे भृषोऽध्वमृष्यो
प्रयतः प्रयच्छेत् ॥ १६ ॥ कालोद्भवैः मुराभिभिः कुसुमैः कलेभ्य रत्नैश्च सागर-
भ्रवैः कनकाम्बरैश्च । धेन्वा वृषेण परमाद्युतैश्च भक्ष्यैर्दध्यक्षतैः मुराभिभृष-
विलेपनैश्च ॥ १७ ॥ नरपातिरिममर्थं बहधानो दधानः प्रविगतगददोषो निजि-
तारातिपक्षः । भवति यदि च दद्यात् सप्त वर्षाणि सम्यग् जलनिधिश्चनायाः

णकुमार अगस्त्यजीकी स्तुति करनेका फल हम बताते हैं, मुनिलोगों ने उन
अगस्त्यजीके अर्घकी विधि जिस प्रकारने बही है, राजाओंकी हितकारी वह
व्यवस्था अथ बही जाती है ॥ १४ ॥ पाण्डितलोग गणितके नियमानुसार अगस्त्य-
जीका उदय गिनकर सब देशोंमें आदेश करेंगे । जय सूर्यका स्पष्ट बहवारानिश्चय
सात अंश कम अर्थात् ४-२३ चार राशि २३ अंश होगा । (यह मासः माहमा-
सके २२-२३-२४ दिनतक होता है) तब उज्जयिनीनगरीमें अगस्त्यमुनिका उदय
होगा ॥ १५ ॥ सूर्यनारायणकी किरणोंसे जब रात्रिकर अन्धकार कुछ एक
नाशकी भास हो जाता है (मोरकी घेला) तब देवतके द्वारा प्रकाशित दिशाओंका
विभाग (" यह दक्षिण दिशा है, इस दिशामें मगरान अगस्त्यजीकी अर्घ्य दो ")
इस प्रकार देवतकी आज्ञा पाय) राजाकी उचित है कि दक्षिणदिशामें सप्तहस्तमें
उत्पन्न हुए अर्थात् शरत्कालके पुष्प, फल, समुद्रके निकले हुए रत्न, मुरण, बभ्रु,
धेनु, वृषभ, परमाद्युक्त भक्ष्य, दही, अक्षत, मुगान्ध, भूप और चन्दनादिदिग्ग
विराचित अर्घ्य पृथ्वी ऊपर देय ॥ १६ ॥ १७ ॥ यदि राजा श्रद्धालु होकर इस
प्रकार अर्घ्यधारण करे तो निरोग होकर समस्त शत्रुओंको जीने । और यदि
इसी प्रकारसे सात वर्षतक अर्घ्य देता रहे तो समुद्रजना पृथ्वीका स्वामी बने

१ " अशीतिभागिषांयायामगस्त्यो विमुक्तयः । " विमुक्तयस्त्रिभिः पितृभिः १००
और ८० अंश दक्षिणदिशेधर्म दिसाई देनेवाला ताराही अगस्त्य है । "इत्यगस्त्यस्यहस्त-
ध्वजिषायेष्टाः पुनर्वसु । अभिजिह्व ब्रह्मद्वयं प्रपोदशभिस्तारैः ॥ " ताराः, अश्विना,
मृग, आषाढ, पिशा, रेवती, पुनर्वसु, अभिजिह्व और ब्रह्मद्वय नामक हस्तस्य हस्त १६
अंशराशिधर्म हस्त या अस्त होते हैं । सूर्य विज्ञान्त ।

स्वामितां याति जूमेः ॥ १८ ॥ द्विजो यथा लाजमुपहृतार्धः प्राप्नोति वेदम्
 प्रमदाश्च पुत्रान् । वेश्यश्च गां जूरिवनं च शूद्रो रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वम् ॥ १९ ॥
 रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं धूम्रो गवामशुभकृत् स्फुरणो जयात् ।
 माजिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा ॥ २० ॥
 शातकुम्भसदृशः स्फटिकागस्त्यर्पयानिव महीं किरणौघैः । दृश्यते यदि ततः प्रभु
 राज्ञा भूतर्भवत्यनयरोगजनाढ्यः ॥ २१ ॥ उत्क्रया विनिहतः शितिला
 क्षुद्रपं मरकमेव च धत्ते । दृश्यते स किल हस्तगतेऽर्के - रोहिणीमुगते
 स्तमुपैति ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामगस्त्यचारो द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

चक्रवर्ती हो जाय ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मणलोग जितनी वस्तु मिले उससेही अगस्त्यजीसे
 अर्घ्य दे तो चारों वेदोंके अधिकारी हों और सुन्दरी स्त्री व पुत्रलाम करे । वानों
 में यदि यथालब्ध वस्तु (अर्थात् जितनी वस्तु मिले) उससे अगस्त्यको अर्घ्य दे
 तो गाय दोर और अधिक धनको प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥ अगस्त्य नक्षत्र को
 परुष अर्थात् क्रूरता दिखाई दे तो रोग होता है, कपिल वर्ण होनेसे अनावृष्टि, धूम-
 वर्ण होनेसे गायदोरोँका अशुभ, स्फुरण अर्थात् कम्पनशाली होनेसे मय, मजीठरी
 गमान रंग होनेसे क्षुधा और युद्ध और सूक्ष्म होनेसे नगरका रोध (रुकना) होता
 है ॥ २० ॥ अगस्त्य नक्षत्र यदि शातकुम्भ अर्थात् चाँदीकी समान या स्फटिक
 (चित्तौर) की गमान शुभ्रवर्ण होकर किरणोंसे पृथ्वीको घृत करे तो पृथ्वी बहुत
 अन्नशाली होकर मय और रोगरहित जनोंसे परिपूर्ण हो जाती है ॥ २१ ॥ यदि
 अगस्त्यजी उत्क्रा या केतुमें आहत होय तो क्षुधामय और मरी पड़ती है, तब
 मय दम्भनक्षत्रमें गमन करे तो अगस्त्य नक्षत्र सब देशोंमें दिखाई देता है और
 रोहिणीमें मय गमन करे तो सब देशोंमें अन्न हो जाते हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयभुगदापादा-
 मन्त्र्य-संहितानन्ददेवप्रमादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

सप्तर्षिचारः ।

सैकावलीव राजती ससितोत्पलमालिनी महासेव । नायवर्णाव च दिग्मेः
कीचरी ममभिर्मुनिभिः ॥ १ ॥ ध्रुवनायकोन्देशाच्चरित्तोवोत्तरा ममद्विभ ।
यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमताव ॥ २ ॥ आसन्मवासु भुनयः श्रान्ति
पुष्पौ युधिष्ठिरे नृपते । पद्मद्विकपञ्चद्विभुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥ ३ ॥
एकेकास्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम् । प्रागुत्तरतर्धने सशोदयन्ते
सप्ताध्वीकाः ॥ ४ ॥ पूर्वे भागे भगवान् मरीचिरपरे स्थितो बभितोऽस्मात् ।
तस्याङ्गिरास्ततोऽग्निस्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्च ॥ ५ ॥ पुलहः कटुरिति भगवाना-
न्नालुक्रमेण पूर्वोद्याः । तत्र वसिष्ठं मुनियरमुपाभितारुन्धती साध्वी ॥ ६ ॥
उल्काशानिधूमाद्यैर्हता विवर्णा विश्वमयो हस्ताः । हन्युः स्वं स्वं वर्गं विपुला
स्तिग्धाश्च तद्बुद्धये ॥ ७ ॥ गन्धर्वदेवदानवमन्त्रोपाधिमिद्वयक्षणागतानाम् ।

श्वेतकमलकी माला पीठरं कामिनीकी ममान उत्तर दिशा, जो सप्तर्षिमण्डलमे,
एक लङ्कीकी माला पहिरनेसे शोभायमान, मन्द मुसुकरनयुतः श्री गनपति जान
पड़ती है और ध्रुव नक्षत्ररूप नायकके उपदेशमे इधर उधर भ्रमण करनेवाले मम-
र्षियोंके साथ उत्तर दिशा मानो बारम्बार नाचती है, वृद्ध गर्गजीने मवानुगा
उनकी गतिकर विषय कहा जायगा ॥ १ ॥ २ ॥ जब राजा युधिष्ठिर पृथ्वीवर
राज्य करते थे, तब मघानक्षत्रमें ममर्षि थे, शकशब्द अंकके साथ २५२६ मिलानेमे
युधिष्ठिरका समय जानना ॥ ३ ॥ वह एक २ नक्षत्रमे शत २ वर्षतक विचारण
करते हैं । यह उत्तर-पूर्वदिशामें सदा साध्वी अरुन्धतीके साथ उदय होने हैं ॥ ४ ॥
पूर्वभागमें भगवान् मरीचि, मरीचिकी पश्चिम दिशामें बभित, तिनके पीछे अंगिरा,
तदनन्तर अग्नि, तिनके निष्ठ पुलस्त्य, पुन्हा और भगवान् क्रतु क्रमानुसार पूर्व
दिशामें विद्यमान हैं, तिनमें साध्वी अरुन्धती, मुनिश्रेष्ठ शशिधर्मका आश्रय लिये
हुए हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ उल्का, वज्र वा धूमादिमे हन, विवर्ण, ज्योतिर्हीन और
हस्त होनेपर वह अपने २ वर्गकर नाश करने और विपुल वा तिग्म होने पर
अपने अपने वर्गसे बचाने हैं ॥ ७ ॥ मरीचि बिम्बी मरगमे पीठिन होय ने

१ श्रीमद्भागवतटीकामें श्रीपरमहंसजीके मतके रूप इस सप्तर्षिमण्डलमन्त्रनका मे देई है

डाकरो मरीचिर्जेषो विशाघराणां च ॥ ८ ॥ शक्यवनदरदातकस्त्रेण
 स्तासत्ता वनोपेतात् । हन्ति वसिष्ठोऽभिहतो विवृद्धिदो रश्मिसम्पन्नः ॥ ९ ॥
 अद्भिरसो ज्ञानयुता धीमन्तो ब्राह्मणाश्च निर्दिष्टाः । अत्रेः कान्तारभवा वद-
 न्यन्मोतिविः नरिनः ॥ १० ॥ रक्षः निशाचदानवदैत्यभुजङ्गाः स-
 पुटस्त्यस्य । पुटहस्य तु मृदफलं कतोस्तु यज्ञाः समज्ञभृतः ॥ ११ ॥
 इति भारद्वाजमिहिरकृता बृहत्संहितायां समर्पिचारमयोदशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

कृमिविभाग.

भूमावभागे.
 भारतवर्षे मध्यात् प्रागासिधितानि
 ११ ॥ भारतेष्वेवमागुज्यमात्यनीतो जिहान संख्यानाः । मरुत्तमोपसा
 ॥ १२ ॥ माथुरकोन्योतिपथमरण्यानि गूरुमेत

१. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

[illegible][illegible]

गौरयोवोदेहिकपाण्डुगुडाश्वत्थपाञ्चालाः ॥ ३ ॥ साकेतकङ्ककुरुकालकोटि-
कुराभ पारियात्रनगः । औदुम्बरकापिठलगजादयाभेति मध्यमिदम् ॥ ४ ॥
अथ पूर्वस्यामञ्जनवृषभध्वजपद्ममात्यवद्विरयः । व्याघ्रमुखसूक्ष्मकर्बटचान्द्रपुराः
शूर्पकर्णाभ ॥ ५ ॥ खसमगधशिचिरगिरिमिथिलसमतटोद्गाश्ववदनदन्तुरकाः ।
प्राग्ज्योतिषलोहित्यक्षीरोदसमुद्रपुरुपादाः ॥ ६ ॥ उदयगिरिभद्रगौडकर्पाण्डो-
त्कलकाशिमेकलाम्बदाः । एकपदताम्रलितिककोशलका वर्धमानभ ॥ ७ ॥
आयेम्पां दिशि कोशलकलिङ्गवङ्गोपवङ्गजतराङ्गाः । शौलिकविदर्भवत्सान्ध-
चेदिकाधोर्ध्वकण्ठाभ ॥ ८ ॥ वृषनालिकेरचर्मद्वीपा विन्ध्यान्तवासिनास्त्रि-
पुरी । श्मश्रुधरहेमकूटव्यालप्रीवा महाप्रीवाः ॥ ९ ॥ किष्किन्धकण्टकस्थल-
निषादराष्ट्राणि पुरिकदशार्णाः । सह नम्रपर्णशबरैराष्ट्रेपादे विके देशाः ॥ १० ॥
अथ दक्षिणेन लङ्का कालाजिनसौरिकीर्णतालिकटाः । गिरिनगरमलयदुर्दुरमहे-
न्द्रमालिन्धमरुकच्छाः ॥ ११ ॥ कङ्कटटङ्गणवनवासिशिविकफणिकारकोङ्क-
णाभीराः । आकरवेणाधन्तकदशपुरगोनर्दकेरलकाः ॥ १२ ॥ कर्णाटमहाद-

पाण्डुगुड, अश्वत्थ, पांचाल, साकेत, कंक, पुरु, कालकोटि, कुरुर, पारियात्र, नग,
औदुम्बर, कापिष्ठल और इन्तिनादेश (३) (४) (५) नक्षत्रमें विराजमान
हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ अनन्तर पाँहिले अंजन, वृषभध्वज, पद्म, मात्स्यवद्विर, व्याघ्र
मुख, सूक्ष्म, कर्बट, चान्द्रपुर, शूर्पकर्ण, खस, मगध, शिचिरगिरि, मिथिल, समतट,
औड, अश्ववदन, दन्तुरक, प्राग्ज्योतिष, लोहित्य, क्षीरोद-समुद्र, पुरुपाद, उदय-
गिरि, भद्रगौडक, पौण्ड्र, उत्तल, वङ्गी, मेकल, अम्बघ, एकपद, ताम्रलितिक,
कोशलक और वर्धमान ये सब देश (६) (७) (८) नक्षत्रमें विराजमान हैं
॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ अग्निर्रोणमें कोशल, कलिग, वंग, उपवंग, जठर, अंग, शौलिक,
विदर्भ, वत्स, अन्ध्र, चेदिक, उर्ध्वकण्ठ, वृष, नासिकेर, चर्मद्वीप विन्ध्याचलके
निकट, त्रिपुरी, श्मश्रुधर, हेमकूट, व्यालप्रीव, महाप्रीव, किष्किन्धा, कण्टकस्थल,
निषादराष्ट्र, पुरिक, दशार्ण, नम्रपर्ण और शबर ये सब देश आष्ट्रेपादि तीन
नक्षत्रोंमें (९) (१०) (११) विराजमान हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ तदनन्तर
दक्षिणमें लंका, कालाजिन, सौरिकीर्ण, तालिकट, गिरिनगर, मलय, दुर्दुर, महेन्द्र,
मरुकच्छ, कंकट, टंकण, वनवासी, शिविक, फणिकार, कोट्टण, आमीर, आवार,
बेण, आवन्तक, दशपुर, गोनर्द, केरल, कर्णाट, महाटवी, चित्रकूट, नासिक

नरस्याः ॥ २२ ॥ वेषुमती फल्गुलका गुरुहा मरुकुचचर्मरङ्गाख्याः । एक-
विलोचनशूलिकदीर्घग्रीवास्यकेशाभ ॥ २३ ॥ उत्तरतः कैलासो हिमवान्वसु-
मान् गिरिर्धनुष्माभ । क्रीञ्चो मेरुः कुरवस्तथोत्तराः क्षुद्रमानीभ ॥ २४ ॥ कैक-
यवसानियामुनभोगमस्थार्जुनायनाग्नीधाः । आदर्शान्तद्वीपित्रिगर्ततुरगाननाश्व-
मुखाः ॥ २५ ॥ केशधराचिपिटनासिकदासेरकवाटधानशरधानाः । तक्षशिला-
पुष्कलावतकैलावतकण्ठधानाभ ॥ २६ ॥ अम्बरमद्रकमालवपौरवकच्छारद-
ण्डपिङ्गलकाः । माणहलहूणकोहलशीतकमाण्डव्यभृतपुराः ॥ २७ ॥ गान्धा-
रयशोवतिहेमनालराजन्यखचरगव्याभ । यौधेयदासमेयाः श्यामाकाः क्षेमधू-
न्नाभ ॥ २८ ॥ ऐशान्यां मेरुकनटराज्यपशुपालकीरकाश्मीराः । अभिसार-
दरदतङ्गणकुलनसैरिन्धवनराष्ट्राः ॥ २९ ॥ ब्रह्मपुरदार्वडामरवनराज्यकिरात-
चीनकीर्णिन्दाः । भद्रापलोदजडासुरकुनठखपघोषकुचिकाख्याः ॥ ३० ॥ एक-
चरणातुविश्वाः सुवर्णभूर्धुवनं दिविष्ठाभ । पौरवचीरनिवसनत्रिनेत्रमुञ्जाद्रिग-
न्धर्वाः ॥ ३१ ॥ वर्गेरात्रेयाद्यैः क्रूरग्रहपीडितैः क्रमेण नृपाः । पाञ्चालो माग-

लहड, खीराज्य, नृसिंहवन, खस्त, वेषुमती, फल्गुलका, गुरुहा, मरुकुत्त, चमरंग,
एकविलोचन, शूलिक, दीर्घग्रीव और. अस्यकेश ये सब देश (२१) (२२)
(२३) नक्षत्रमें विद्यमान हैं उत्तरादिशामें कैलास, हिमवान्, वसुमान्, धनुष्मान्,
क्रीञ्च, मेरुगिरि, उत्तराक्षर, क्षुद्रमान, कैकय, वसानि, यामुन, भोगमरय, अजु-
नायन, अग्नीध्र, आदर्श, आन्तद्वीपी, त्रिगर्त, तुरगानन, अश्वमुख, केशधर,
चिपिटनासिक, दासेरक, वाटधान, सरधान, तक्षशिल, पुष्कलावत, कैलावत, कण्ठ-
धान, अम्बर, मद्रक, मालव, पौरव, कच्छार, दन्तपिङ्गलक, मान, हल, हूण, कोहल,
शीतल, माण्डव्य, भृतपुर, गान्धार, यशोवति, हेमताल, राजन्य, खचर, गव्य,
यौधेय, दासमेय, श्यामक और क्षेमधूर्तादि देश (२४) (२५) (२६) नक्ष-
त्रमें विद्यमान हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ईशान-
कीर्णमें मेरुक, नटराज्य, पशुपाल, कीर, काश्मीर, अभिसार, दरद, तंगण, कुलन,
सैरिन्ध्र, वनराष्ट्र, ब्रह्मपुर, दार्वडामर, वनराज्य, किरात, चीन, कीर्णिन्द, भद्रप,
लोलजट, सुरकुनठ, खस, घोष, कुचिक, एकचरण, अतुविश्व, सुवर्णधू, वसुवनं,
दिविष्ठः, पौरव, चीर्गनिवसन, त्रिनेत्र, मुञ्जाद्रि और गन्धर्वादि समस्त देश
(२७) (१) (२) नक्षत्रमें रहते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ आग्नेयगदि

धिकः कालिंगश्च क्षयं यान्ति ॥ ३२ ॥ आवन्तोऽथानर्तो मृत्युं चायाति म्रिय-
सौवीरः । राजा च हारहौरो भद्रेशोऽन्यश्च कौणिन्दः ॥ ३३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कूर्मविभागो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पंचदशोऽध्यायः ।

नक्षत्रन्यूहः ।

आग्नेये सितकुसुमाहिताग्निमन्त्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञाः । आकरिकनापितद्वित्र-
टकारपुरोहिताब्दज्ञाः ॥ १ ॥ रोहिण्यां मुव्रतपण्यसूत्रधीनेयागयुक्तशार्ङ्गिकाः ।
गोवृषजलचरकर्पकशिलोच्चयैश्वर्यसम्पन्नाः ॥ २ ॥ मृगशिरसि सुरमिवघ्ना-
कुसुमफलरत्नवनचरविहंगाः । मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुका लेखहाराश्च ॥ ३ ॥
रौद्रे वधबन्धानृतपरदारस्तेयशार्ङ्ग्यभेदरताः । तुषधान्यतीक्ष्णमन्त्राभिचारो-
लकर्मज्ञाः ॥ ४ ॥ आदित्ये सत्योदार्यशौचकुलरूपधीयशोऽर्थयुताः । उत्तम-

समस्त वर्ग पापग्रहादिसे पीडित होनेपर यथाक्रमसे पांचाल, मागधिक, कालिङ्ग
आवन्त्य, आनर्त, सिन्धुसौवीर, हारहौर, भद्र और कौणिन्द देशके राजाओंके
नाश होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादावादा-
स्तव्य-पंडितचलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सूकेद हल, अग्निहोत्री, मंत्र जाननेवाले, सूत्रकी भाषा जाननेवाले, आकरिक,
नाई, दिन, कुंमार, पुरोहित और अब्दज्ञ (वर्षके फलका जाननेवाला) कृषि-
नक्षत्रके आधीन हैं ॥ १ ॥ मुव्रत, पण्य, राजा, धनी, योगी, शाकटिक, गाय,
बैल, जलचर, किसान, पर्वत और सम्पत्तिमान् पुरुष रोहिणीके अधिकारमें हैं
॥ २ ॥ मृगमित्र, पन्न, कुसुम, फल, रत्न, वनचर, विहंग, मृग, यज्ञमें सोमत्त
मानेवाले, गन्धर्व, कामी और पत्रवाहकगण (डाँकिये) मृगशिराके वश हैं ॥ ३ ॥
प्राची नक्षत्रके वशमें, वध, बन्ध, मिथ्या, परदारहरण, शाठ्य और भेद करने-
वाले पुरुष, मृगोधान्यमें तीक्ष्ण मंत्रकरके उद्यादन मरणादि अभिचार और रोग-
लक्ष्मण जाननेवाले वर्तमान हैं ॥ ४ ॥ पुनर्वसुमें उत्तम धान्य, सत्य, उदारता,
नीय, कुलम्ब, बुद्धि, यज्ञ, अर्थयुक्त, मेवानियुक्त शिल्पजनमन्वित होने

चान्यं वणिजः सेवाभिरताः सशिल्पिजनाः ॥ ५ ॥ पुष्पे यवगोधूमाः शालीक्षु-
वनानि मन्त्रिणो भूताः । सटिलोपजीविनः साधवश्च यज्ञोत्सुकश्च ॥ ६ ॥
अहिदेवे छत्रिपकन्दमूलफलकीटपन्नगविपाणि । परधनहरणाभिरतास्तुपधान्यं
सर्वभिपजश्च ॥ ७ ॥ पित्र्ये धनधान्याढ्याः कोष्ठागाराणि पर्वताभयिणः ।
पितृभक्तवणिक्शूराः कल्पादाः सीद्धिपो मनुजाः ॥ ८ ॥ प्राक्फाल्गुनीषु नट-
युवतिभुजगान्धर्वशिल्पिपण्यानि । कर्पासलवणमाक्षिकतैलानि कुमारकाभापि
॥ ९ ॥ आर्यणो मार्दवशौचविनयपाषाण्डिदानशास्त्ररताः । शोभनधान्यमहाधनधर्मा-
नुरताः समनुजेन्द्राः ॥ १० ॥ हस्ते तस्करकुञ्जररायिकमहामात्रशिल्पिपण्यानि ।
तुपधान्यं शुनयुक्ता वणिजस्तेजोयुताश्च ॥ ११ ॥ त्वाष्ट्रे भूषणमणिरागलेख्य-
गान्धर्वगन्धयुक्तिज्ञाः । गणितनटुतन्तुवायाः शालाक्या राजधान्यानि ॥ १२ ॥
स्वाती खगमृगतुरगा वणिजो धान्यानि बानबहुलानि । अस्थिरसीहृदलघु-
सन्वतापसाः पण्यकुशलश्च ॥ १३ ॥ इन्द्राग्निदेवते रक्तपुष्पफलशार्विनः

विराजमान हैं ॥ ५ ॥ जी, गेहूँ, सब प्रकारकी शाली, गन्धे, मंत्र जाननेवाले, सब
राजा, मलसे आर्जोदिक्क करनेवाले और यज्ञकी क्रियामें आसक्त हुए साधुलोग
पुष्पनक्षत्रमें हैं ॥ ६ ॥ आष्टेयाके अधिकारमें बनाये हुए कन्द, मूल, फल,
कीड़े, पक्षय (सर्प), विष, तुपधान्य, पराये धनको हरण करनेवाले पुरुष और
समस्त वैद्य हैं ॥ ७ ॥ मयानक्षत्रके अधिकारमें धान्यागार और समस्त ग्रह, धन
धान्ययुक्त पर्वतके रहनेवाले पितृभक्त धनिये, शूर, कल्पाद और छियोंसे द्वेष कर-
नेवाले मनुष्यगण हैं ॥ ८ ॥ नट, युवती, भुमगगायक, शिल्पी (कारीगर),
कर्पास, नौन, मधु, तेल और कुमारकगण पूर्वोक्ताफाल्गुनीके वश हैं ॥ ९ ॥ उषा-
फाल्गुनी नक्षत्रके अधिकारमें मृदुता, पवित्रता, विनय, नास्तिकपन, दान, और
शास्त्रज्ञ पुरुष, राजा, सुन्दर धान्य और स्वधर्मानुरागी महाजन लोग विराजमान
हैं ॥ १० ॥ तस्कर, कुंजर, रथी, मंत्री, शिल्पी, पण्य, तुपधान्य, वेदज्ञ और
उपोतिष जाननेवाले, वणिज हस्तनक्षत्रके वशमें हैं ॥ ११ ॥ चित्राके वशमें शूरा,
मणि, संगराग, लेख्य, गन्धर्वव्यवहार, गन्धयुक्त जाननेवाले विद्वान्, रक्तपुष्प
निपुण लोग और जुलाहे वर्तमान हैं ॥ १२ ॥ स्वातीमें खग, मृग, छेदे, शूरा
बहुतसी इवावाले स्थान, पण्यकुशल धनिये और जिनकी मित्रता स्थिर रहने
से लघुस्वभाववाले तपस्वी लोग बास करते हैं ॥ १३ ॥ वि-

सतिलसुद्राः । कर्पासमापचणकाः पुरन्दरहुताशमन्त्राश्च ॥ १४ ॥ मेघैर्गर्ग-
समेता गणनायकसाधुगोष्ठियानरताः । ये साधवश्च लोके सर्वे च शरत्समुत्-
न्नम् ॥ १५ ॥ पौरन्दरेऽतिशूराः कुलविचयशोऽन्विताः परस्वहृतः । विनि-
गीपवो नरेन्द्राः सेनानां चापि नेतारः ॥ १६ ॥ मूले ज्ञेयजमिपजो गणमुख्याः
कुसुममूलफलवार्त्ताः । बीजान्यतिधनयुक्ताः फलमूलैर्ये च वर्त्तन्ते ॥ १७ ॥
आप्ये मृदवो जलमार्गगामिनः सत्यशौचधनयुक्ताः । सेतुकरवारिर्जीवकफ-
कुसुमान्यम्बुजातानि ॥ १८ ॥ विश्वेश्वरे महामात्रमष्टकरितुरादेवतामकाः ।
स्थावरयोधा भोगान्विताश्च ये चौजसा युक्ताः ॥ १९ ॥ श्रवणे मायापटवो नित्ये-
द्युक्ताश्च कर्मसु सधर्माः । उत्साहिनः सधर्मा भागवताः सत्यवचनाश्च ॥ २० ॥
वसुभे मानोन्मुक्ताः क्लीबाश्चलसौहृदाः स्त्रियां द्वेष्ट्याः । दानाभिरता बहुविध-
युताः शमपराश्च नराः ॥ २१ ॥ वरुणेशे पाशिकमत्स्यबन्धजलजानि जलचर-
जीवाः । सौकरिकरजकशौण्डिकशाकुनिकाश्चापि वर्गेऽस्मिन् ॥ २२ ॥ अने

फूल फलवाली शाखायें, तिल, मृग, कपास, उर्द, चने, इन्द्र और अग्निके म-
(पारसी) हैं ॥ १४ ॥ अनुराधामें शूरतासम्पन्न, गणनायक, साधु सबमें वै-
नेवाले साधुलोग वर्त्तमान हैं और शरद ऋतुके उत्पन्न हुए समस्त द्रव्य हैं ॥ १५ ॥
ज्येष्ठानक्षत्रके अधिकारमें कुल वित्त यशवाले, पगया धन हरण करनेवाले, और-
शूरगण, विजयकी इच्छा करनेवाले राजा और समस्त सेनापति लोग हैं ॥ १६ ॥
मूलमें औषध, वैद्य, गणमुख्य लोग, फूल, फल, मूल, पत्ते, बीज और फल सबमें
जीविका करनेवाले और अतिधनवान् पुरुष विद्यमान हैं ॥ १७ ॥ पूर्वाषाढमें
मृदु, जलपयगामी और सत्यशौचधनयुक्त मनुष्य, पुल बनानेवाले, नहर बनाने-
वाले, मेवाक फल समस्त कुसुम और समस्त पद्म हैं ॥ १८ ॥ मन्त्री, महारथी,
शाही, घोटें, मृग और देवताके भक्त, योगवान्, तेजयुक्त, स्थावर, वार लोग सब
गयादमें हैं ॥ १९ ॥ श्रवणके वशमें माया जाननेमें चतुर, नित्य उद्योग करने-
वाला, कर्ममें मामर्ध्य रखनेवाला, उत्साहयुक्त, धर्मपरायण, भगवद्भक्त और सत्य-
वादी लोग हैं ॥ २० ॥ धनिशामें मान छोड़े हुए हीजटे, चंचल मुहूर्तवाले,
मूर्खता, दान्ध, बहाने धनवाले और शान्तिपरायण राजालोग वर्त्तमान हैं
॥ २१ ॥ शतभिषामें व्याधे मत्स्यबन्ध, जलज जलचरोसे आजीविका करनेवाले,
शूर पातनवाले, धीरे, कल्याण और शान्तिरमण दे ॥ २२ ॥ पूर्वामासमें

तत्करपशुपालहिंसकीनाशनीचराठचेष्टाः । धर्मवर्तैर्विरहिता नियुद्धकुशलाश्च
मनुजाः ॥ २३ ॥ आदिर्बुध्न्ये विप्राः ऋतुदानतपोयुता महाविभवाः । आश्र-
मिणः पापण्डा नरेश्वराः सारधान्यं च ॥ २४ ॥ पीप्णे सलिलजफलकुसुम-
लवणमाणिशंखमौक्तिकाब्जानि । सुरभिकुसुमानि गन्धा वणिजो नौकर्णधा-
राश्च ॥ २५ ॥ अश्विन्यामश्वहराः सेनापतिर्वैद्यसेवकास्तुरगाः । तुरगारोहाश्च
वणिमृषोरेतास्तुरगरक्षाः ॥ २६ ॥ याम्येऽष्टाक्षिपितभुजः कूरा वधबन्धताड-
नासक्ताः । तुपधान्यं नीचकुलोद्भवा विहीनाश्च सत्त्वेन ॥ २७ ॥ पूर्वात्रयं
सानलमयजानां रातां तु पुष्येण सहोचराणि । सपीप्णमैशं पितृदेवतं च मजा-
पतेभ्यं च रूपावलानाम् ॥ २८ ॥ आदित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि वणिग्जनानां
प्रवदन्ति भानि । मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाम् ॥ २९ ॥
सौम्येन्द्रचित्रावसुदेवतानि सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि । सापं विशाखा भवणो
भरण्याश्चण्डालजातोरिति निर्दिशन्ति ॥ ३० ॥ रविराविमुतभोगमागतं क्षितिमुत-
भेदनवक्रदूषितम् । ग्रहणगतमथोल्कपा हतं नियतमुपाकरपीडितं च यत् ॥ ३१ ॥

तत्कर, पशुपालक, हिंसा करनेवाले, कीनाश, नीच और शठ चेष्टावाले, धर्मवर्तहीन,
मल्लयुद्ध करनेमें चतुरलोग वास करते हैं ॥ २३ ॥ उत्तरामाद्रपदानक्षत्रमें यज्ञ
दान और तपवान् महाविभवाले, आश्रमी राजा लोग, ब्राह्मण, पापण्डी और
श्रेष्ठ धान्य विराजमान हैं ॥ २४ ॥ रेवतीके अधिकारमें जलसे उत्पन्न हुए फल,
फूल, लवण, मणि, शंख, मुक्ता, पद्म, सर्व प्रकारके सुगन्धित फूल, गन्ध, द्रव्य,
चनिये और नावके खेवट लोग हैं ॥ २५ ॥ अश्विनीमें अश्वहर लोग, सेनापति,
वैद्य, सेवक, घोड़े, घुडसवार, रथीस, वनिये और रूपवान् पुरुष हैं ॥ २६ ॥
भरणीके वशमें तुपधान्य रक्त मांस खानेवाले, क्रूर, वध, बन्ध ताडना करनेमें
आमक्त और सहणार्दन लोग रहते हैं ॥ २७ ॥ पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वापादा, पूर्वामाद्र-
पदा और कृत्तिकाक्षत्र ब्राह्मणका अधिकारी है; उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापादा,
उत्तरामाद्रपदा और पुष्यनक्षत्र क्षत्रियोंका है; रेवती, अनुराधा, मघा और अश्विनी-
नक्षत्र वनियोंका अधिकारी कहा जाता है; मूल, आर्द्रा, स्वाती और शतमिषा
उग्रजातिके प्रभु हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ मृगशिरा, ज्येष्ठा, चित्रा और धनिष्ठा नक्षत्र
सेवकोंके स्वामी हैं । आश्लेषा, विशाखा, श्रवण और भरणी चाण्डाल जातिके
स्वामी हैं ॥ ३० ॥ जो नक्षत्र रवि और शनिसे मुक्त हैं, मंगलके भेदन या वक्रसे

तदुपहतमिति प्रचक्षते प्रकृतिविपर्यययातमेव वा । निगदितपरिवर्गदूषणं करे-
ताविपर्ययं समृद्धये ॥ ३२ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नक्षत्रव्यूहः पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

प्राग्मदार्धशोणोद्भवङ्गसुखाः कलिङ्गवाह्यीकाः । शक्यवनमगधरावा-
ग्न्योतिषर्चनकाम्बोजाः ॥ १ ॥ मेकलकिरातविटका बहिरन्तःशैलजाः पुनि-
न्दाभ । प्रविडानां प्रागद्धे दक्षिणकूलं च यमुनायाः ॥ २ ॥ चम्पोदुम्परकां-
म्बिचेदिविन्ध्यादयीकलिङ्गनाभ । पुण्ड्रा गोलान्गूलश्रीपर्वतवर्द्धमानाभ ॥ ३ ॥
द्रुमपनीत्यथ तस्करपारतकान्तारगोरबीजानाम् । तुपधान्यकटुकतरुनका-
नभिपनमरगूराणाम् ॥ ४ ॥ भेषजभिषक्चतुष्पदरूपिकरनृपहिंसपापिचो-
णाम् ॥ व्यालारण्ययशोयुततीक्ष्णानां भास्करः स्वामी ॥ ५ ॥ गिरितलितु-
कोगन्धमरुच्छसमुद्ररोमकतुपाराः । वनवासितङ्गणहलग्रीराज्यमहाप-
तः ॥ ६ ॥

पूर्वार्धे, प्राणमन या उक्त्यते इतर्धे, अथवा सूर्यकिरणते तदा पीडित शोने ई-
व ७८८८८८ अथवा प्रहृति विपर्ययगत या वारिवर्गदूषण अथवा विपर्ययगत वा-
ग्न्ये ई ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पञ्चमोत्तरदेशीयमुद्रावाह्य-
व्यूहः षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

नक्षत्राः पूर्वार्धे, शोण, भेड, वंग, गुप्त, बाह्यिक, शक, यवन, मगध, शक्य,
गन्धर्व, कर्ण, काम्बोज, मेकल, किरान, विटका, परितका विचारा ई-
व ७८८८८८, द्वितीया पूर्वार्धे, यमुनाका दाहिना विचारा, चम्पा, उदुम्ब-
र, कलिङ्ग, मेदि, विन्ध्यादयी, कलिङ्ग, पुण्ड्र, गोलान्गूल, श्रीपर्वत, वर्द्धमान ई-
व ७८८८८८ ये सम्मन्त देश योऽत्र नक्षत्र, पावन, कान्तार, गोपभीम, तुपधान्य, कटुक-
तरु, नका, नभिपन, मरगूरा, भेषज, भिषक्, चतुष्पद, किरान, व्याल, हिंस-
पापिच, चोण, भास्कर, स्वामी, गिरितलितु, कोगन्ध, मरुच्छ, समुद्र, रोमक, तुपाराः ई-
व ७८८८८८, वनवासितङ्गणहलग्रीराज्यमहापतः ई-
व ७८८८८८, इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दीपाः ॥ ६ ॥ मधुरसकुसुमफलसलिललवणमणिसंस्मृतिकामानाम् ।
 शालिष्वीपधिगोधूमसोमपाकन्दविषाणाम् ॥ ७ ॥ सितसुभगतुरगरतिकरयुव-
 तिचमूनाथभोग्यवस्त्राणाम् । शृङ्गिनिशाचरकर्पकयज्ञविदां चाधिपश्चन्द्रः ॥ ८ ॥
 शोणस्य नर्मदाया भीमरथायाश्च पश्चिमाद्वेष्ट्याः । निर्विन्ध्या वैत्रवती शिमा
 गोदावरी वेणा ॥ ९ ॥ मन्दाकिनी पयोष्णी महानदी सिन्धुमालतीपाराः ।
 उत्तरप्राण्ड्यमहेन्द्रादिविन्ध्यमलयोपगन्धोलाः ॥ १० ॥ द्रविडविदेहान्ध्राश्मक-
 भासातुरकौड्या समान्त्रिपिकाः । कुन्तलकेरलदण्डककान्तिपुरम्लेच्छसङ्करजाः
 ॥ ११ ॥ नासिक्यभोगवर्दनपिरादाविन्ध्याद्रिपार्श्वगा देशाः । ये च पिबन्ति सुतोषां
 तपो ये चापि गोमतीसलिलम् ॥ १२ ॥ नागररूपिकरपारतद्भुताशनानीवि-
 शन्नवाचानाम् । आटाविकदुर्गकवटवधकनृशंसावलिमानाम् ॥ १३ ॥
 नरपतिकुमारकुञ्जरदाम्भिकडिम्भातिघातपशुपानाम् । रक्तफलकुसुमविद्रुमच-
 मृपगुडमद्यतीक्ष्णानाम् ॥ १४ ॥ कोशमवनानिहोत्रिकधात्वाकरशाक्याभिधु-
 चौराणाम् । शठदीर्घवैरवद्वाशिनां च वसुधामुतोऽधिपतिः ॥ १५ ॥ लौहित्यः
 सिन्धुनदः सरयूर्गन्धारीरका रथाद्या च । गङ्गानदीशिक्याद्याः सरितो वैदेहका-
 शत, झुका, पद्म, शालि, यव (जौ), दवा, गेहूं, यज्ञमं सोमपान करनेवाले, राजाके
 वस्त्र हुप, प्राद्वनगण, सितसुभग तुंग, रतकरी युवती, सेनापति, भोग्य, वस्त्र, शृंगी,
 पशु, निशाचर, किसान और यज्ञ जाननेवालोंका स्वामी चन्द्रमा है ॥ ६ ॥ ७ ॥
 ॥ ८ ॥ शोण, नर्मदा और भीमरथाके आधी पश्चिम दिशाके सब राजा, निर्विन्ध्या,
 वैत्रवती, गोदावरी, शिमा, वेणा, मन्दाकिनी, पयोष्णी, महानदी, सिन्धु, मालती,
 पारादिनदी, उत्तर आरण्य, महेन्द्रादि, विन्ध्य, मलयका निकटवर्ती भाग, चोल,
 द्रविड, विदेह, अन्ध्र, अश्मक, भासापुर, वोरण, समान्त्रिपिक, कुन्तल, केरल,
 दण्डक, कान्तिपुर, म्लेच्छ, संकरज, नासिक्य, भोगवर्दन, तर्फाद, विन्ध्याचलके
 निकटके देश लोग तापती और गोमती नदीका मधुर जल पीते हैं, नगवासी,
 किसान, पारत अभिसे आजीविका करनेवाले, शस्त्रसं आजीविका करनेवाले, वनचारी,
 दुर्ग, धुद्रनगर, घातक, गार्वित, नरपति, कुमार, हस्ती, दाम्भिक, चालक, अभिघात,
 पशुपालक, रजपल और कूळ, घृणा, सेनापति, गुण, मद, तीक्ष्णकोश, मदन,
 अग्निहोत्री लोग, धातुओंका व्यापक, जन, भिक्षु, चार, शठ, दीर्घवैर और भोजन
 बहुतसा करनेवालोंका स्वामी मंगल है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥
 ॥ १५ ॥ लौहित्य और सिन्धुनद, सरयू, गन्धारीरका, रथाद्या, गंगा और वैदिशकी

मञ्जुः ॥ १६ ॥ मयुरायाः पूर्वाद्धि हिमवद्गोमन्ताचित्रकूटस्थाः । सौवर्ण्य-
जलमार्गपण्यविलपर्वताश्रयिणः ॥ १७ ॥ उदयानयन्त्रगान्धर्वलेख्यमणि-
गन्धयुक्तिविदः । आलेख्यशब्दगणितप्रसाधकायुष्यशिल्पज्ञाः ॥ १८ ॥ क-
पुरुषकुहकजीवकशिशुकविशठसूचकामिचाररताः । दूतनपुंसकहास्यज्ञाः
न्वेन्द्रजालज्ञाः ॥ १९ ॥ आरक्षकनटनर्तकधृततैलस्नेहबीजतिलानि । द्रव-
रिरसायनकुशलवेसराश्वन्द्रपुत्रस्य ॥ २० ॥ सिन्धुनदपूर्वभागो मथुराभार-
तसौवीराः । शुम्भोर्दाच्यविपाशास्ररिच्छतद्रमठसाल्वाः ॥ २१ ॥ श्रमर्ता-
वान्धप्रारता वाद्ययनयोधेयाः । सारस्वतार्जुनायनमत्स्यार्द्धग्रामराष्ट्राणि ॥ २२ ॥
इत्थ्यश्वपुरोहितभूपमन्त्रिमाङ्गल्यपीठिकासक्ताः । कारुण्यसत्यशीचवनविद्या-
नयन्मनुजाः ॥ २३ ॥ पौरमहायनशब्दार्थवेदविदुषोऽमिचारनीतिज्ञाः । मनु-
श्रगेरकरणं छद्मध्वजचामराद्यं च ॥ २४ ॥ शैलेयकमांसीनगरखुट्टरसम्म-
वार्ति वर्णादम् । मधुररसमध्याच्छिटानि चोरकश्चेति जीयस्य ॥ २५ ॥ म-
गिन्दमार्तेकासनपद्मगिरिगान्धारपुष्कलावतकाः । प्रस्थलमालवकेकयदागनी

मार्ग मय नदिये, काम्योज, वेदेह, मयुताका पूरार्द्ध, हिमालय, गोमन्त्र और
विषहृदये मय गण, गेह, जलमार्ग, पण्य, विल और पहाडी जीमण, कुम,
चंदन, विष, शब्द और गणितका जाननेवाला, चरपुरुष, दुहकजीरक, बाउर,
बरी, दूध, गुणक (देशीया), अमिनाग्रत, दूत, होजडा, मगगता, मृता
और इन्द्रादयः जाननेवाला, श्वाक, नट नाचनेवाला, गी, तेल, रोद, बीज, वि,
मदपनी, म्मापन, रुमक पुरुष और गिषट इन मयका स्वामी पुथ है ॥ १९ ॥
॥ १० ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ मिन्युनदका पूरमाण, मयुगका पिछला मय
मय, मय, मीरि, कुत्रा उक्त दिशा, विषाणा और जतदुनरी, गमद, शान,
द्विज, बीर, अम्य, पाग, वादधान, यौधेय, माग्मन, आमुनायन और मय
देहने मयनमद का और मय गण, हाथी, घोडा, पुगेदित, राजा, मंत्री, मय
और मीरि मयनमद कागक जन और म्मापन, म्मापन, वेद जाननेवाले,
मयनमद और मीरि, उत्र, धन, मयगदि राजाके मयमानदय, मीरज (मि
रि), मयनमद (मयनमद), मय, कुट, पाग, मंभा, मनागे उग्रम इ
दय, मय मय और मय और मय इन मयका स्वामी मयमनि है ॥ २१ ॥
॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ मयमदि, मयनमद, मयनमद, मयनमद, मयनमद

शीनराः शिबयः ॥ २६ ॥ ये च विचिन्ति विनस्तामिरावर्तो चन्द्रभागसरितं
च । रथरजताकरकुञ्जरतुरगनहामात्रधनयुक्ताः ॥ २७ ॥ सुरभिक्षुसुमानुलेप-
नमणिवज्रविभूषणाम्बुरुहशय्याः । वरतरुणयुवतिकामोरकरणमृष्टान्नमधुर-
भुजः ॥ २८ ॥ उद्यानसलिलकामुकपथःसुसीदार्यस्वसम्पन्नाः । विद्वदमात्य-
वणिग्जनघटलक्षित्राण्डजासिफलाः ॥ २९ ॥ कौशेयवटुकम्बलपत्रार्णिकरो-
ध्रपत्रचोचानि । जातीफलामुरुवचापिप्पल्यभ्यन्दनं च भृगोः ॥ ३० ॥
आनताबुन्दमुष्करसीराट्टाभीरशूद्रैवतकाः । नटा यस्मिन्देशे सरस्वती पश्चिमो
देशः ॥ ३१ ॥ कुरुक्षेत्रमिनाः प्रभासं विदिशा वेदस्मृती महीनटजाः । रत्नम-
लिननीचैर्लिकविहीनसन्तोषहतपुंस्त्वाः ॥ ३२ ॥ पन्थनशकुनिकाशुर्बिकर
तैर्विरूपवृद्धसीकरिकाः । गणपूज्यस्सलिनवनशरपुलिन्दार्थरार्हनाः ॥ ३३ ॥
कटुनिन्नरसायनविषययोपेतो भुजगनस्करमाहिष्यः । सरकराचणकपातुल-
निष्पावाभार्कपुत्रस्य ॥ ३४ ॥ गिरिरीसरकन्दरदरीविनिषिष्टा म्लेच्छजानपः
शूद्राः । गोमायुभक्षशूलिरूपोक्ताणांभमुखविकलाङ्गाः ॥ ३५ ॥ घृत्तराजनादि-

खायत, मस्थूल, मालर, केकर, दाशार्ण, उद्दीनर और शिबिबिदेश, जो लोग शिवरत्ना,
इरावती और चन्द्रमामा नदिया जल पीने हैं, रथ, पांदा, खानि, भृंगर, घोडा,
महावन, धनयुक्त मुग्धधिवार, फूल, उवदन, मणिवज्रादि विभूषण, पद्म, शोज, उत्तम
नवीन सुरती, यामके सामान, शोधित मस, मधुर द्रव्य खानेवाले पुरुष, यर्माच, जल,
कामी लोग, यश सुख उदारता और रूपवान् विद्वान्, मंत्रां, यानियां, भुंमार, विद्या-
ण्डज, शिरला (हर, घड़ेडा, आमला), रेशमीन कापड़े, कम्बल, शण, पत्र, उन्न,
छोधके पत्ते, घोच, जायकाल, अगार, वय और चन्दन यह सब वृक्षके आधीन हैं
॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ आनन, अर्जुन, पुष्कर, सींगट्ट, आर्भारशूद्र,
रैवतक, जिस देशमें सरस्वती नदी दिखाई नहीं देती, पश्चिमदेश, सुरसेन, प्रभास,
विदिशा, वेदस्मृती, महीके बिनाखाले, सब द्रव्य, दुष्ट, मलीन, नीच, मेली, सम्प-
द्दिन, जिसका पुरुषपन नष्ट हो गया है, पन्थक, व्याध, अपवित्र, वेदर, डरूप
घृत्, मुमरपाल, गणपूज्य, जिनका वन छूट गया है, शका, पुलिन्द, दारिद्र्य, बटु,
तित्त, रसायन, विषया स्त्री, गर्प, सरकर, भैम, मधा, वरम, यना, मरर और
कटंगर (भुस्ती) ये सब वस्तुयें शनिके स्वाधीन हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥
परंतके शिखर, कन्दर, दरियोमें रहनेवाली म्लेच्छजातिवां, दुष्ट, गोमायु, मस,
शूली, शोमण, मधुमुख, शिरलांग, घृत्तराज, शिबक, शण, पत्र, उत्त, शोच

सकृत्तत्रचोरनिःसत्यशोचदानाश्च । स्वरचरनियुद्धवितीवरोपगमांगया गीताः ॥ ३६ ॥ उपहतदाम्भिकराक्षसनिद्राबहुलाश्च जन्तवः सर्वे । धर्मेण च सत्पत्न्या
मापतिलाश्चार्कशशिशत्रोः ॥ ३७ ॥ गिरिदुर्गपट्टवश्वेतहूणचोलावगगनरु-
चीनाः । प्रत्यन्तधनिमहेच्छव्यवसायपराक्रमोपेताः ॥ ३८ ॥ परदाराविदारक-
पररण्डकुतूहला मदोत्सिकाः । मूर्खा धार्मिकाविजिगीषिवश्च केतोः समाख्याताः ॥ ३९ ॥ उदयसमये यः स्निग्धांशुर्महान् प्रकृतिस्थितो यदि च न हतां निर्धे-
तोल्कारजोग्रहमर्दनेः । स्वमवनगतः स्वोद्यप्राप्तः शुभग्रहवीक्षितः स भवति ॥
शिवस्तेषां येषां प्रभुः परिकीर्तितः ॥ ४० ॥ अग्निहितविपरीतलक्षणैः संपृ-
पगच्छति तत्परिग्रहः । डमरभयगदातुरा जना नरपतयश्च भवन्ति दुःखित-
॥ ४१ ॥ यदि न रिपुकृतं भयं नृपाणां स्वसुतकृतं नियमादमात्यजं वा । तर्हि
जनपदस्य चाप्यवृष्ट्या गमनमपूर्वपुरादिनिघ्नगासु ॥ ४२ ॥
इति श्रीबाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहमन्त्रयो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

और दानराहित, खर, मलयुद्ध जाननेवाले, तीव्रदोष युक्त, नीच, उपहत, दुर्मे-
राक्षस, बहुत सोनेवाले और धर्महीन जन्तु, उर्द और तिल राहुके वश हैं ॥ ३६ ॥
॥ ३६ ॥ ३७ ॥ पहाडी किला, श्वेत, हूण, चोल, अवगगन, मरु, चीन, प्रत्यन्त-
देश, धनी, महेच्छका व्यापार करनेवाले, पराक्रमयुक्त, पराई स्त्रीमें रत, शमश-
पराण्डक, कुतूहली, मदगर्वित, मूर्ख और धार्मिक, विजयकी इच्छा करनेवाले
केतुकी आधीन हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जो ग्रह स्वामाविक महान्, स्निग्धांशु और
निधान, उल्का, धूरि या ग्रहमर्दनसे हत नहीं है, स्वमवनगत, स्वोद्यप्राप्त और शुभग्र-
हसे देख जाकर उदय होते हैं, वह जिनके स्वामी कहलाते हैं उनका मंगल करते हैं
॥ ४० ॥ उक्त विपरीत लक्षणों करके ग्रहोंके अधिकार किये सब द्रव्य क्षपण
प्राप्त होते हैं, और तिस कालमें आक्रमण करनेमें डगपोक गदातुर जन और राजा
अत्यन्त दुःखित होते हैं ॥ ४१ ॥ यदि राजाओंका शत्रुका अपने पुत्रका या
मंत्रीका किया हुआ अमय न हो; अथवा पृथ्वीमें अनावृष्टि न हो तो निपनरे
वशसे अपूर्व पुर पर्वत और नदियोंमें गमन करना उचित है ॥ ४२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पञ्चमोत्तरदेशीयपुरादायादश-
स्तप्य-पांडित्यबलदेवप्रमादामिश्रविरचितायां भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

याम्याकन्दौ नागरयायिग्रहाश्चैव ॥ ८ ॥ दक्षिणादिस्थः परुषो वेद्युत्सा
सन्निवृत्तोऽणुः । अधिगूढो विरुतो निष्पन्नो विवर्णश्च यः स जितः ॥ ९ ॥
उक्तविपरीतलक्षणसम्पन्नो जयगतो विनिर्दिष्टः । विपुलः स्निग्धो युनि
दक्षिणादिस्थोऽपि जययुक्तः ॥ १० ॥ द्वावपि मयूखपृक्तौ विपुलौ स्नि
समागमे भवतः । तत्रान्योऽन्यप्रीतिर्विपरीतावात्मपक्षयो ॥ ११ ॥ युद्धं स
गमो वा यद्यद्वयक्तौ तु लक्षणैर्भवतः । भुवि भुजृतामपि तथा फलमव्ययं वि
दर्शयम् ॥ १२ ॥ गुरुणा जितेऽवनिमुते बाह्यीका यायिनोऽग्निवाचोभ
शशिजेन शूरसेनाः कलिङ्गसाल्वाश्च पीड्यन्ते ॥ १३ ॥ सौरेणारे विनि
जयन्ति पौराः प्रजाश्च सीदन्ति । कोठागारम्लेच्छक्षत्रियतापाश्च शुक्र
जिते ॥ १४ ॥ भौमेन हते शशिजे वृक्षसरित्तापसारमकरनेत्राः ।

अपने २ अधिकारियोंको नष्ट करते हैं ॥ ८ ॥ जो ग्रह दक्षिणादिशामें रुद्ध
कम्पायमान, अमास होकर मलीमांतिसे निवृत्त अर्थात् टेढ़ा, क्षुद्र और किंती प्राप्ते
द्वय हुआ, विकराल, प्रमाहीन और विवर्ण जान पड़े वह ग्रह पराजित होगा और
इसके विपरीत लक्षणवाला ग्रह जयी कहाता है; परन्तु बड़े मंडलवाला चिकना और
गुतिमान् होकर दक्षिणादिशामें भी हो तो उसको जययुक्त कहा जाता है ॥ ९ ॥ १० ॥
ग्रहयुद्धकालमें यदि

जन्यान्व प्रीति कदा

होगी, इसके विपरीत होनेसे आत्मपक्षका नाश होगा ॥ ११ ॥ जो युद्ध या सनत्त
लक्षणमें जाना जाय तो पृथ्वीमें राजालोगोंका फलभी वैसाही जाना जायगा ॥ १२ ॥
यूरसातिजी मंगलको जीत ले तो बाह्यीक, यायी और अग्निसे आजीविस करने
पाउं पीडासे पाते हैं । बुध मंगलको जीते तो शूरसेन, कालिंग और शाल्वदेशमें
पीडा होती है ॥ १३ ॥ शनिके द्वारा मंगल जीता जाय तो पुरवासियोंकी म
हती है; प्रजा व्याकुल होकर नष्ट हो जाती है । शुक्र मंगलको जीत ले तो को
णार, म्लेच्छ और क्षत्रियोंकी ताप होता है ॥ १४ ॥ मंगलके द्वारा बुध इन ती

१ यह लक्षण केवल शुक्रके लिये है क्योंकि युद्धप्रकरणमें लिखा है कि शुक्रके सिवा
कोई ग्रह नहीं होकर दक्षिण दिशामें नहीं जाता और इसका जानना उचित है कि शुक्र
उत्तरमें हो या दक्षिणमेंही, बहुधा युद्धमें जयी होगा ॥ उदास्यो दक्षिणास्यो वा मंगल
कल्पते जयी ॥ २ ग्रहोंके परस्पर मिलनेको युद्ध समागम और अस्तमन कहते
हैं । सूर्यके साथ मंगलका युद्ध मंगलादि पथ ग्रहोंके साथ मंगलादि पथ ग्रहोंके मिलनेमें
है । शनिके साथ योगको समागम और मयूखके साथ योग होनेको अस्तमन कहते हैं ।

याम्पाकन्दौ नागरयायिग्रहाश्चैव ॥ ८ ॥ दक्षिणादिस्थः परुषो वेगयुक्तः
 सन्नितृत्तोऽणुः । अधिगूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः ॥ ९ ॥
 उक्तविपरीतलक्षणसम्पन्नो जयगतो विनिर्दिष्टः । विपुलः स्निग्धो सुतिष्ठः
 दक्षिणादिस्थोऽपि जययुक्तः ॥ १० ॥ द्वावापि मयूखपृक्तौ विपुलौ स्निग्धौ
 समागमे भवतः । तत्रान्योऽन्यभीतिर्विपरीतावात्मपक्षयो ॥ ११ ॥ युद्धं सन्
 गमो वा यद्यद्वयकौ तु लक्षणैर्भवतः । भुवि भृशतामपि तथा फलमन्यथं विनिर्दिष्टं
 देशम् ॥ १२ ॥ गुरुणा जितेऽथानिसुते बाह्यीका यायिनोऽग्निवाचांश्च
 शशिजेन शूरसेनाः कलिङ्गसात्वाश्च पक्ष्यन्ते ॥ १३ ॥ सौरेणारे विनिर्दिष्टं
 जयन्ति पौराः प्रजाश्च सन्दिन्ति । कोष्ठानारम्लेच्छक्षत्रियतापाश्च शु-
 जिने ॥ १४ ॥ भौमेन हते शशिजे वृक्षसत्तित्तापसाश्मकनरेन्द्राः

अपने २ अधिकारियोंको नष्ट करते हैं ॥ ८ ॥ जो ग्रह दक्षिणादिशामें स्थित
 कम्पायमान, अप्राप्त होकर मलीमांतिसे निवृत्त अर्थात् देदा, धुद्र और किसी प्रकार
 दरा हुआ, विकराल, प्रमाहीन और विवर्ण जान पड़े वह ग्रह पराजित होगा
 इसके विपरीत लक्षणवाला ग्रह जयों कहाता है; परन्तु बड़े मंडलवाला चिकना और
 सुतिष्ठान् होकर दक्षिणादिशामें भी हो तो उसको जययुक्त कहा जाता है ॥ ९ ॥
 प्रदयुद्धकालमें यदि दो ग्रह किरणयुक्त बड़े मंडलवाले और चिकने हों तो इस
 अन्योन्य प्रीति कहा जायगा. ऐसा हो तो पृथ्वीमें राजालोगोंकी भी युद्धकालमें पराजित
 होगी, इसके विपरीत होनेसे आत्मपक्षका नाश होगा ॥ ११ ॥ जो युद्ध या समागम
 लक्षणमें जाना जाय तो पृथ्वीमें राजालोगोंका फलभी वैसाही जाना जायगा ॥ १२ ॥
 शूरसेनानिर्जा मंगलको जीत ले तो बाह्यीक, यायी और अग्निसे आर्जीरिका का
 काटे पीडाको पाने हैं । बुध मंगलको जीते तो शूरसेन, कलिङ्ग और शाल्वदेश
 पीडा होती है ॥ १३ ॥ नानिके द्वारा मंगल जीता जाय तो पुरवाशिषीकी पीडा
 होती है; प्रजा व्याकुल होकर नष्ट हो जाती है । शुक्र मंगलको जीत ले तो को-
 मल, स्नेच्छ और क्षत्रियोंको ताप होता है ॥ १४ ॥ मंगलके द्वारा बुध हन

१. यह लक्षण वेगड दृष्टके लिये है क्योंकि युद्धप्रकरणमें लिखा है कि शक्रके सिंहा-
 कोर्षे दृष्ट जरी होकर दक्षिण दिशामें नहीं जाता और इसका जानना अत्यन्त है कि
 समयमें हो या दक्षिणमेंही, तथा युद्धमें जयी होगा " सदैवस्थो दक्षिणास्थो वा मन्त्र-
 प्रवर्तने जरी ॥ " २. दक्षिण दिशामें मन्त्र प्रवर्तनेको युद्ध समागम और आगमन कहा
 है. मन्त्रप्रवर्तनप्रदयुद्धविहार, मंगलदिक्षे वष दक्षिण दिक्षे साय मंगलदिक्षे वष दक्षिण दिक्षे
 युद्ध प्रवर्तने वष दक्षिण दिक्षे समागम और मन्त्रे साय योग होनेको आगमन कहा है

रविजेन सिते विजिते गणमुख्याः शस्त्रजीविनः क्षत्रम् । जलजाश्च निरीक्ष्यन्ते
 सामान्यं भक्तिफलमन्यत् ॥ २४ ॥ असिते सितेन निहतेऽर्धवृद्धिरहिर्विहगनाभिः
 पीडा । क्षितिजेन दृक्कणान्धोदूकाशिबाह्यीकदेशानाम् ॥ २५ ॥ सौम्येन पा-
 भूते मन्देऽङ्गवणिग्विहङ्गपशुनागाः । सन्ताप्यन्ते गुरुणा स्त्रीबहुला महिर-
 शकाश्च ॥ २६ ॥ अयं विशेषोऽभिहितो हतानां कुञ्जवार्गीशसितासितानाम् ।
 फलं तु वाच्यं ग्रहभक्तितोऽन्यद् यथा तथा ग्रन्थि हताः स्वमक्तीः ॥ २७ ॥
 इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहयुद्धं सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः ।

चन्द्रग्रहसमागमः ।

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः । प्रदक्षिणं तच्च
 भृक्षन्नराणां याम्येन यातो न शिवः शशाङ्कः ॥ १ ॥ चन्द्रमा यदि कुब-
 र्होती है ॥ २३ ॥ शनिसे शुक्र विजित हो जाय तो गणश्रेष्ठ शस्त्रजीवी, क्षत्रिय
 और जलज पीडित होते हैं और अन्न साधारण होता है, यह ग्रहमन्त्रक
 ॥ २४ ॥ शुक्रमे शनि ग्रह निहत हो तो महंगी, सर्प, पक्षी और म
 होती है । मंगलसे शनि निहत होवे तो टंकण, अन्ध, ओढ़, काश
 देगवानोंसे पीडा होती है ॥ २५ ॥ बुध कर
 विरंग, पशु और सर्पगण भंतापित होते हैं
 मदिप और शकजातिके पुरुष सन्तापित
 शुक्र और शनि इन ग्रहोंके परस्पर हननका
 अर्थात् साधारण नक्षत्रादिके साथ जो ग्रह
 अध्यायमें उक्तका जो फल कदा है निसके
 स्थानमें इन होकर अपने २ नियम पदार्थोंका नाश करते हैं ॥ २६ ॥
 इति श्रीवाराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय
 सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

यदि चन्द्रमा नक्षत्रोंके या ग्रहोंके यथामन्त्र उत्तरेमें गमन करे तो उम पंदा
 'प्रदक्षिण' करते हैं यह मनुष्योंका शुभकारी है, परन्तु उसका दक्षिणमें ग
 करना मनुष्योंको शुभकारी नहीं है ॥ १ ॥ जो चन्द्रमा मण्डल प्ररके उत्तरेमें ग

उत्तं कुशास्तृतं स्थण्डिलमावसेद्विजः ॥ ७ ॥ आलभ्य मन्त्रेण महाव्रतेन
बीजानि सर्वाणि निधाय कुम्भे । प्लाव्यानि चामीकरदर्भतोपैर्होमो मरुद्धारुण-
म्यमन्त्रैः ॥ ८ ॥ शृङ्गां पताकामसितां विदध्यादण्डप्रमाणां त्रिगुणोच्छ्रितां
। आदौ कृते दिग्ग्रहणे नक्षत्रान् ग्राह्यस्तथा योगमते शशाङ्के ॥ ९ ॥ तत्रा-
माताः प्रहरैर्विकल्प्या वर्षानिमित्तं दिवसास्तदंशैः । सव्येन गच्छञ्जुतः
देव यस्मिन्प्रतिष्ठा बलवान् स वायुः ॥ १० ॥ वृत्ते तु योगैः स्फुरितानि याति
न्तर्ह बीजानि धृतानि कुम्भे । येषां तु योऽशौः स्फुरितस्तदंशस्तेषां विवृद्धिं
मुपैति नान्यः ॥ ११ ॥ शान्तपक्षिमृगराविता दिशो निर्मलं विषदनिन्दितो-
निलः । शस्यते शशिनि रोहिणीयुते मेघमारुतफलानि वक्ष्यतः ॥ १२ ॥
अचिदसितसितैः सितैः कचिच्च कचिदसितेर्भुजगैरिवाम्बुवाहैः । बलितजडरसः

महाव्रत नामके मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर तन
करके बीच घड़ेमें डालकर मुरण और दमयुक्त जलसे उसको धुावित करे और
प्रादु, वरुण और सीम्य मंत्रसे होम करे ॥ ८ ॥ चन्द्रमास योग होनेपर वंडा
मन्यन बारह हाथ ऊंचे पांसपर ४ हाथ लम्बी अंगित पताका धारण करे। पंड
इन निर्माण करके उस पताकामें कितने क्षणतक कौन दिशामें हवा चलती है तो
गने ॥ ९ ॥ एक महत्तक एक दिशामें हवा चले तो १५ दिनतक वर्षा होगी फिर
सु महत्तक वायु बहनेके कालमें दिग्गणके अंशको निर्णय करे (श्रावणमें कार्तिकतक
न बार नागके आठ पक्षका एक २ पक्ष एक २ अंशसे निर्देश करना चाहिये)
को दिशामें वायु गमन करे तो शीघ्रही गुमदायी होती है और जो एक निपत्त
चले नवरात्रि पक्ष दिशामेंही गमन करे तो वह वायु प्रतिष्ठान्तर और
लगत होता है ॥ १० ॥ इन योगके पंडे जानेपर घड़ेमें धरे हुए धोनोंमेंसे जो
वेंदुर्नव हो, उनका वही २ अंशही बुद्धिसे मान होगा; और अंश नही ॥ ११ ॥
पंडेकी हवा चन्द्रमास में होनेपर यदि मध्य दिशायें शान्त हो जाय, पतिगण
सृष्ट्यन्त इनमें नगद्वार शान्त करे, आद्यश निर्मल और वायु आनंदित हो तो
होती है अथ निर्दिष्ट होती है। इनके उपरान्त मेघ मादकके फल क्रमानुसार हों
हों ॥ १२ ॥ अद्यशने धीं द्यशः कहीं भेन, कहीं कृष्ण रंगे, धीं
रंग, अथ, दृष्ट नव दृष्ट अथवा दृष्ट अथवा मादक मादके पतनेमें जीने दिनमें

उमाप्रदश्यः स्फुरिततडिदत्तेनवृत विशालैः ॥ १३ ॥ विकसितकमलोदरावदाते-
ररुणकरद्युतिराजितोपकण्ठः । छुरितमिव विपदनेर्विचित्रैर्मधुकरकुंकुमकिंशु-
कावदातैः ॥ १४ ॥ असितघननिरुद्धमेव वा चलिततडित्सुरचापचित्रितम् ।
द्विपमहिपकुलाकुलीकृतं वनमिव दावपरीतमम्बरम् ॥ १५ ॥ अथवाजनशैल-
शिलानिचयप्रतिरूपपरैः स्थागितं गगनम् । हिममौक्तिकशंखशशाङ्कुरद्युतिहा-
रितिरम्बुधरैरथवा ॥ १६ ॥ तडिद्धेमकक्षैर्बलाकाग्रदन्तैः स्रवद्धारिदानैश्चलत्मा-
न्तहस्तैः विचित्रेन्द्रचापध्वजोच्छ्रायशोभैस्तमालालिनीलवृतं चाब्जनागैः ॥ १७ ॥
सन्ध्यातुरके नभास्ते स्थितानामिन्दीवरस्थामरुचां घनानाम् । वृन्दानि पीताम्बरवे-
ष्टितस्य कान्तिं हरेभोरयतां यदा वा ॥ १८ ॥ सशिसिचातकदन्दुरानिन्वने-
र्यादि विमिश्रितमन्द्रपटुस्वनाः । खमवतरप दिगन्ताविलम्बिनः सलिलदाः सलि-
लौघमुचः क्षिती ॥ १९ ॥ निगदितरूपैर्जलधरजालैर्यहमवरुद्धं द्वयहमधवाहः ।
यदि विपदेवं भवति सुभिक्षं सुदितजना च प्रचुरजला भूः ॥ २० ॥

पीठ और पैद दीख पड़ती हो, चमकती हुई विजलीकी समान जीभवाले
और शब्दयुक्त विशाल भुजंगाकार मेघोंके द्वारा जो आकाश धिर जाय, खिले हुए
कमलकी समान निर्मल व अरुण है समीपभाग जिनका, मधुकर, कुंकुम, देवके
कूलकी समान निर्मल विचित्र मेघोंसे रंगनेकी समान जो आकाश शोभायमान हो,
फाले मेघोंसे रंगनेकी समान जो आकाश शोभायमान हो, फाले मेघोंसे ढका हुआ
हो या चमकती हुई विजली और इन्द्रधनुषके द्वारा चित्रित आकाश मानो हाथी
और भैंसोंके द्वारा आकुल किया हुआ दावानलयुक्त वनकी समान दिखलाई दे या
अञ्जन पहाड़के काले पत्थरोंकी समान मेघोंसे आकाश छा जाय, अथवा हिम,
मुक्ता, शंख और चन्द्रकिरणोंकी ज्योति हरण करनेवाले बादलोंसे जो आकाशम-
ण्डल ढक जाय या विजलरूप हैमकक्षासम्पन्न वायुका रूप अग्रदन्तरूप जलरूप
मद हुआता मान्तरूप कर चलानेवाला, विचित्र इन्द्रका रूप ऊंची ध्वजासे शोभा-
यमान और तमाल वा भ्रमरकी समान नीलवर्ण हाथीरूप बादलसे साथ आकाश
छा जाय; जो सांझके रागसे रंगे हुए आकाशमें स्थित नीले पद्मकी समान मेघपुं-
दीपीतांवर पड़े हुए हरिकी कान्तिके हरण करे और मोर चातक व मँडकोंके शब्दके
साथ यदि मेघका गंभीर शब्द मिल जाय तो दिशाओंमें फैले हुए आकाशव्यापी
बादल पृथ्वीपर बहुतसा जल वर्षाने हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥
इस उक्त प्रकारके बादलोंसे आकाश दो या तीन दिन घिरे रहे तो सुभिक्ष होने

रुक्षैरल्पैर्मरुताक्षिमदेहैरुद्ग्वान्धुभेतशास्वामृगाजैः । अन्येषां वा निन्दितानां सत्सु
 -मूकैश्चाद्भैर्ना शिवं नापि वृष्टिः ॥ २१ ॥ विगतघने वा वियति विवस्वानमृदुमयुक्तः
 सलिलरुदेवम् । सर इव फुल्लं निशि कुमुदाब्जं खमुद्विशुद्धं यदि च सुवृष्टिः
 ॥ २२ ॥ पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिरुद्भैराग्रेयाशासम्भवेरग्निकोपः । याम्ये सस्य
 क्षीयते नैर्ऋतेऽथ पश्चाज्जातैः शोभना वृष्टिरुद्भेः ॥ २३ ॥ वायव्योत्पैर्वातवृष्टिः
 कचिच्च पुष्टा वृष्टिः सौम्यकाशासमुत्पैः । श्रेष्ठं सस्यं स्थाणुदिकसम्प्रवृद्धैर्वायुभैः
 दिक्षु धत्ते फलानि ॥ २४ ॥ उत्कानिपातास्तडितोऽशनिश्च दिग्गहनिर्वातमही-
 प्रकम्पाः । नादा मृगाणां सप्ततन्त्रिणां च ग्राह्या यथैवान्धुधरास्तथैव ॥ २५ ॥
 नामाङ्गितैस्तेरुदगादिकुम्भैः प्रदक्षिणं श्रावणमासपूर्वः । पूर्णः स मासः सलिलस्य
 दातामृतेरवृष्टिः परिकल्प्यमूनैः ॥ २६ ॥ अन्यैश्च कुम्भैर्नृपनामचिह्नैर्दशाङ्गि-

मनुष्य प्रसन्न हों और पृथ्वीपर बहुतसा जल वर्षे ॥ २० ॥ रुखे और अल्प पत-
 नसे निनका देह फैल गया है, ऊंट, काग, भेत किंवा वानरोंकी समान या अन्य
 निन्दित आकारवाले शब्दराहित मेघ जो उदय होयें तो शुभ नहीं होता, न राती
 होती है ॥ २१ ॥ अथवा आकाश मेघशून्य हो, यदि सूर्यकी किरणें तीव्रण हों
 तो जल वर्षागा और रात्रिकालमें आकाश निर्मल नक्षत्रोंके साथ कुमुद सरोवरकी
 समान मृदुल हो तो वृष्टि अच्छी होती है ॥ २२ ॥ पूर्वदिशाके उत्पन्न हुए मेघोंने
 धान्य भरी मांन पक जाती है; आग्नेयकोणके उठे हुए मेघोंसे अग्निराक्ष हो
 जाता है; दक्षिणदिशाके उत्पन्न मेघोंसे धान्यका क्षय होता है; नैऋतसे उठे बादल
 खरद भरी होती है और पश्चिमके उठे हुए मेघोंसे सुन्दर वर्षा होती है ॥ २३ ॥
 वायुसे उठे हुए मेघोंसे वायु और कहींभी वर्षा होती है; उत्तर दिशाके उत्पन्न
 हुए मेघोंसे वृष्टि वर्षा होती है और ईशानकोणके उठे हुए मेघोंसे श्रेष्ठ धान्य होता
 है; चार्गे अंगरी वायुमेंभी पैमाही फल होता है ॥ २४ ॥ जो गोहिणीयोगके दिन
 उत्तरा गिरे, विजयी, वज्रगान, दिग्दाह, निघांत, पृथ्वीका कपायमान होता और
 न्यून व पश्चिमोक्त से उदाहृत सुन्द हो तो बादलके लक्षणकी समान फल प्राप्त
 किया जाता है ॥ २५ ॥ गोहिणीयोगके दिन वृष्टि मिलनेके समय उदगादि या
 दिशाके अशुभ, मादो, झर, कार्त्तिक इन चारोंके नामके चार घटे प्रदक्षिणके
 करने स्थानमें रहे जो जो पड़ा जलने पूरा होगा वही आरण्यादि मायका कर्म-
 उत्तर उदाहृत होता, विना घटेका जल टपक जाय तो अवृष्टि होगी, पर जल
 पड़े जल वर्षा ॥ २६ ॥ इसी मन्त्रमें और घटे गजाओंके नामके और

तैत्तिर्याप्यपरैस्तथैव । अग्नेः ध्रुवेन्यूनजलेः सुपूर्णैर्भाग्यानि वाच्यानि यथातुल्य-
 पम् ॥ २७ ॥ दूरगो निकटगोऽथवा शशी दाक्षिणे पथि यथातथा स्थितः ।
 रोहिणीं यदि युनाकिं सर्वथा कष्टमेव जगतो विनिर्दिशेत् ॥ २८ ॥ स्पृशन्नुद-
 ग्याति यदा शशाङ्कस्तदा सुवृष्टिर्वहुलोपसर्गाः । असंस्पृशन्योगमुदक्समेतः
 करोति वृष्टिं विपुलां शिवं च ॥ २९ ॥ रोहिणीशकटमध्यसंस्थिते चन्द्रमस्य
 शरणाकृता जनाः । कापि यान्ति शिशुयाचिताशनाः सूर्यतपपिठराम्बुपा-
 यिनः ॥ ३० ॥ उदितं यदि शीतशीथितिं मयमं पृथत एति रोहिणी ।
 शुभमेव तदा स्मरातुराः प्रमदाः कामिकश्चे च संस्थिताः ॥ ३१ ॥
 अनुगच्छति पृथतः शशी कामी वनितामिव मियाम् । मकरध्वजबाणखेदिताः
 प्रमदानां वशगास्तदा नराः ॥ ३२ ॥ आग्नेय्यां दिशि चन्द्रमा यदि भवेत्त्रो-
 पसर्गो महान् नैर्ऋत्यां तमुपद्रुतानि निधनं सस्यानि यान्तीतिभिः । प्राजेशानि-

देशोंके नामके मदाक्षिणाके भावसे स्थापन करे, फिर दूसरे दिन उनको देखे, जो
 जाय, टपक जाय, जिसका जल कम हो जाय या जो पूर्ण रहे, उसका तैसाही
 भाग्य निर्णय करना चाहिये ॥ २७ ॥ चन्द्रमा दूर स्थित होकर रहे या निकट
 स्थित रहे, पर दाक्षिणमार्गमें यदि रोहिणीयुक्त होवे तो सर्व प्रकारसे संसारको
 कष्टदायी होता है ॥ २८ ॥ जब चन्द्रमा रोहिणीके उत्तरदिशावाले नक्षत्रको स्पर्श
 करता हुआ हो तो बहुतसे उपद्रवोंके साथ अच्छी वर्षा होती है और बिना योग-
 स्पर्श किये उत्तरदिशाके नक्षत्रमें जाय तीभी बहुतसी वर्षा होती है और मंगल
 होता है ॥ २९ ॥ जो चन्द्रमा रोहिणीके शकटमें (आकाशमें शकटके आकारके
 पांच तारे हैं) विराजमान हो तो आदमी शरणराहित, क्षुधातुर, बालकयुक्त और
 सूर्य करके तपाई हुई हाडीके जलको पीते हुए समय बिताते हैं ॥ ३० ॥ पहले
 चन्द्रमा उदय हो और तिसके पीछेही रोहिणी उदय हो तो कामदेवसे
 व्याकुल हुई स्त्रियां कामी पुरुषके वश हो जाती हैं ॥ ३१ ॥ प्यारी
 भार्याके पीछे कामी जनकी समान यदि चन्द्रमा रोहिणीके पीछे चले तो मनु-
 ष्यगण पश्चिमाणके बाणोंसे पीडित होकर औरतोंके वशमें हो जाते हैं ॥ ३२ ॥
 जो अग्निक्वणमें चन्द्रमा विराजमान हो तो बड़े २ उपद्रव होते हैं; नैर्ऋतक्वणमें हो-
 तो समस्त धान्य ईतिसे प्रसित होकर नष्ट हो जाते हैं; पश्चिम और वायुक्वणमें
 चन्द्रमा हो तो खेतोंका मध्यम संग्रह होता है; ईशानक्वणमें हो तो अनेक गुण होते

लदिर्नित्यते हिमकरे सस्यस्य मध्यश्च यो याते स्यादुदितं गुणाः सुवहः
 सस्यार्थवृद्ध्यादयः ॥ ३३ ॥ ताडयेद्यदि च योगतारकामावृणोति वपुः
 यदापिवा । ताडने भयमुपान्ति दारुणं छादने नृपवधोऽङ्गनाकृतः ॥ ३४ ॥ गो-
 वेशसमयेऽयतो वृषो याति कृष्णपशुरेव वा पुरः । भ्रूरे वारि शबले तु मध्यं
 नो सितेऽप्यु परिकल्पनाग्नेः ॥ ३५ ॥ दृश्यते न यदि रोहिणीयुतबन्धना
 नभासि तोषदावृते । रुग्णं महदुपस्थितं तदा भूश्च भूरिजलसस्यसंयुता ॥ ३६ ॥
 इति श्रीवाराहमिहिरकृती बृहत्सं० रोहिणीयोगो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पंचविंशोऽध्यायः ।

स्वातियोगः ।

यत्रोहिणीयोगफलं तदेव स्वातावपादासहिते च चन्द्रे । आपादशुक्ले नितितं
 विचिन्त्यं योऽस्मिन् विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये ॥ १ ॥ स्वाती निरांशे प्रथमेऽभि-
 वृष्टे सस्यानि सर्वाण्युत्पान्ति वृद्धिम् । भागे द्वितीये तिलमुद्रमापा ग्रैष्मं दूरी-
 है और धान्यका मूल्यमी बढ जाता है इत्यादि ॥ ३३ ॥ जो चन्द्रमा योगतारे
 ताडना करे या शरीरसे टकले तो क्रमानुसार दारुण भय और स्त्रीके द्वारा राजस्य
 बध होता है ॥ ३४ ॥ संध्याके समय जब गायेँ वनसे चरकर आवें (और उठ
 समय चन्द्रमाके प्रवेशका समय हो) और तिस समय उनके आगे बैल या कर्ज
 पशु आवे तो बहुतसी वर्षा होती है । शुक्र पशुके आगे आनेसे मध्यम वर्षा होती
 है । जो अनेक रंगमाला पशु आगे हो तो वर्षाज वादलभी मेघ नहीं वर्षाते ॥ ३५ ॥
 यदि मेघसे ढके हुए आकाशमें चन्द्रमा रोहिणीसे युक्त न दिखलाई पड़े तो रोगस्य
 बढा मारी भय आता है और पृथ्वीपर बहुतसा जल और धान्य होते हैं ॥ ३६ ॥
 इति श्रीवाराहमिहिरचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादावाद-
 वास्तव्य-पांडित्यलदेवप्रसादामिश्रविरचितायां मापाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

जैसे चन्द्रमाके साथ रोहिणीयोगका फल है स्वाती और आपाद नक्षत्रके साथ
 चन्द्रमाके योगका फलभी वैसाही है । आपादमासके शुक्लपक्षमें इसका मर्लामांति
 विचार करे इसमें जो विशेषता है सो कही जाती है ॥ १ ॥ स्वाति नक्षत्रमें रात्रिके
 पहले अंशमें वर्षा हो तो सब प्रकारके धान्य बढ़ते हैं, दूसरे मासमें तिल भूंग और

येऽस्ति न शारदानि ॥ २ ॥ वृष्टेऽङ्गि भागे प्रथमे सुवृष्टिस्तद्वितीये तु सकीट-
सर्पा । वृष्टिस्तु मध्यापरभागवृष्टे निष्छिद्रवृष्टिर्द्युनिशं प्रवृष्टे ॥ ३ ॥ सममुत्तरेण
तारा चित्रायाः कीर्त्यते ह्यर्षावत्सः । तस्यासन्ने चन्द्रे स्वातिर्योगः शिवो भवति
॥ ४ ॥ सप्तम्यां स्वातियोगे यदि पतति हिमं माघमासान्धकारे वायुर्वा चण्ड-
वेगः सजलजलधरो वापि गर्जत्यजस्रम् । विद्युन्मालाकुलं वा यदि भवति नभो
नष्टचन्द्रार्कतारं विज्ञेया प्रावृष्टेया मुदितजनपदा सर्वसस्यैरुनेता ॥ ५ ॥
तथैव फाल्गुने चैत्रे वैशाखस्यास्तिवेषि वा । स्वातियोगं विजानीयादापादे च
विशेषतः ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृती बृहत्सं० स्वातियोगो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

उर्द और तीसरे भागमें ग्रीष्मकालका धान्य होता है । परन्तु शरदऋतुकी खेती
नहीं होती ॥ २ ॥ दिनके पहले भागमें वृष्टि होनेसे सुवृष्टि होती है; दूसरे भागमें
होनेसे सर्प और कीड़े होते हैं; मध्य और अपरभागमें वृष्टि हो ती सुवृष्टि और
रातदिन वर्षनेसे उस वर्षमें बहुतसी वृष्टि होती है ॥ ३ ॥ चित्राके उत्तर ओरका
तारा अर्षावत्स कहा जाता है; उसके निकट हुए चन्द्रमाके साथ स्वातीका योग होनेपर
मंगल होता है ॥ ४ ॥ यदि माघ मास की कृष्णपक्षीय सप्तमी तिथिमें स्वातियोगसे हिम
गिरे या प्रचंड वेगसे पवन चले, जलयुक्त बादल गर्जता रहे और आकाश यदि विज-
लीकी रेखाओंसे युक्त हो, चन्द्रमा सूर्य और ताराओंकी ज्योति जाती रहे ती वर्षा-
कालमें जनपद आनंदित और सब धान्योंसे युक्त होते हैं ॥ ५ ॥ फाल्गुन, चैत्र
या वैशाखको कृष्णपक्षमेंभी ऐसाही स्वातीका योग होता है परन्तु आपादमासमें
स्वातियोगको विशेषरूपसे जानना ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुपदावादा-
स्तव्य-पंडितवलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

१ “ अर्षावत्सस्तु चित्रायामुत्तरेंऽंशेस्तु पञ्चभिः ” चित्रानक्षत्रके पांच अंश उत्तरपक्षे-
पमें अर्षावत् तीन अंश स्फुट होनेके बाद विशेषमें जो एक बड़ा तारा दिखाई देता है सोई
“ अर्षावत्स ” है । सूर्यासेहीत नक्षत्रमहस्युपाधिकार ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः ।

आषाढीयोगः ।

आषाढ्यां समतुलिताधिवासितानामन्येद्युर्यदधिकतामुपेति वीजम् । वीजं
 क्षिर्भवति न जायते यदूनं मन्त्रोऽस्मिन् भवति तुलाभिमन्त्रणाय ॥ १ ॥
 स्तोतव्या मन्त्रयोगेन सत्या देवी सरस्वती । दर्शयिष्यासि यत्सत्यं सत्ये क्त
 व्रता स्यासि ॥ २ ॥ येन सत्येन चन्द्रार्को ग्रहा ज्योतिर्गणास्तथा । उचिष्टन्ते
 पूर्वेण पश्चादस्तं व्रजन्ति च ॥ ३ ॥ यत्सत्यं सर्ववेदेषु यत् सत्यं ब्रह्मवादि ।
 यत् सत्यं त्रिषु लोकेषु तत् सत्यमिह दृश्यताम् ॥ ४ ॥ ब्रह्म
 दुहितासि त्वमादित्येति प्रकीर्तिता । काश्यपी गोत्रतश्चैव नामतो विदुः
 तुला ॥ ५ ॥ क्षीमं चतुःसूत्रकसन्निवद्धं पङ्क्तुलं शिष्यकवचमस्याः
 सूत्रममाणं च दशांगुलानि पङ्केव कक्षोभयशिष्यमध्ये ॥ ६ ॥ प
 शिष्ये काश्चनं सन्निवेशं शेषद्रव्याण्युत्तरेऽम्बूनि चैवम् । तोयेः क्षीमं

आषाढी पूनमके दिन जय उत्तराषाढामें चन्द्रमा चलाजाय तब सर्वा भक्त
 वीज (वीजन) बराबर तीलकर रखदे और दूसरे दिन जिस धान्यस में
 बदनायनसे श्राप हो अर्थात् वह जाय उसकी वृद्धि होती है, जो धान्य कमी है
 वह भरीमाने नहीं होता; इसमें तुला अभिमन्त्रका मंत्र पढ़ना चाहिये ॥ १ ॥
 सत्यार्थिनस्य देवी सरस्वतीकी इस मंत्रसे इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये, हे देवी
 सरस्वती ! आप मन्त्रमन्त्रधर्म सत्यव्रतवाली हैं, इसलिये जो सत्य है, जिसमें
 आप दिया है ॥ २ ॥ इस मन्त्रामें जिस सत्यके बलसे चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और
 ज्योतिर्गण पूर्वमें उदित होने और पश्चिममें अस्त हो जाते हैं, मर वेदमें जो क
 है और विद्वत्तमें जो मत्स्य है वह मत्स्य यहांपर आप दिया है; क्या क
 ब्रह्मकी पुत्री आदित्या नाममें विख्यात हैं, आप गोत्रमें काश्यपी और तुला
 विख्यात हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ इनकी बनी हुई चार बोरियोंमें धंधी हुई छः ब
 टका बिल्लवका श्री वसुकी है, उसकी चारों बोरियोंका प्रमाण दश २ अंगुल
 चाहिये- इस प्रकार दोनों पट्टोंके बीचमें छः बंगुलके परिमाणकी कक्षा
 चाहिये (जिस सूत्रसे पङ्कट कर उठाने है उसे कक्षा कहते हैं) ॥ ६ ॥ द
 ओके पट्टोंके बीचमें रखना चाहिये, इसके पट्टोंमें शेष द्रव्य और १३

स्थान्दिभिः सारसैश्च वृष्टिर्हीना मध्यमा चोत्तमा च ॥ ७ ॥ इन्तीर्नागा गोहया-
 बाभ लोम्ना हेम्ना भूषाः सिन्धुकेन द्विजाद्याः । तद्वदेशा वर्षमासा दिशश्च
 शेषद्रव्याण्यात्मरूपस्थितानि ॥ ८ ॥ हेर्मा प्रधाना रजतेन मध्या तयोरलतो
 स्वदिरेण कार्या । विद्धः पुमान्पेन शरेण सा वा तुला प्रमाणेन भवेद्वि-
 तास्तिः ॥ ९ ॥ हीनस्य नाशोऽभ्यधिकस्य वृद्धिस्तुल्येन तुल्यं तुलितं तुला-
 याम् । एतनुलाकोशरहस्यमुक्तं प्राजेशयोगेऽपि नरो विदध्यात् ॥ १० ॥
 स्वातावपादास्वथ रोहिणीषु पापग्रहा योगमता न शस्ताः । यासं तु योगद्वयम-
 प्युपोष्य यदाधिमासो द्विगुणोऽकरोति ॥ ११ ॥ त्रयोऽपि योगाः सदृशाः फलेन
 यदा तदा वाच्यमसंशयेन । विपर्यये यत्तिह रोहिर्णाजं फलं तदेवाभ्यधिकं
 चाहिये । कूप, सरोवर या नदीके जलसे यह कार्य करनेसे क्रमानुसार हीन, मध्यम
 और उत्तम वर्षा होती है; अर्थात् कुण्डका जल यदि पहले दिनकी अपेक्षा दूसरे
 दिन कुछ अधिक भारी हो जाय तो वर्षा न होगी, यदि वृष्टिका जल अधिक भारी
 हो जाय तो मध्यम वर्षा होगी और नदी या कुण्डका जल अधिक भारी हो जाय
 तो उचित जल वर्षता है सब जल बढ़े तो अतिवृष्टि और सब जल घटे तो अना-
 वृष्टि होता है ॥ ७ ॥ दन्तसे नागगण, लोमसे अश्वादि पशुगण, स्वर्णसे राजा-
 लोग, सिन्धु अर्थात् एक ग्रास प्रमाण मोमसे द्विजातिलोगोंकी वृद्धिहानि जानी
 जाती है, तथा मध्यदेश, वर्ष, मास और दिग्मंडल तथा शेष द्रव्य (धान्यादि)
 आत्मरूपसे अर्थात् जिस वस्तुकी हानि वृद्धि जाननी हो उसीको मापकर फल
 कहना । मुवर्णका बना हुआ तुलादण्डही अच्छा है, चांदीका मध्यम है, यह न हो
 तो खैरकी लकड़ीकी दण्डी बनानी चाहिये किंवा जिस शरसे पुरुष विद्ध हो जाते
 हैं वैसीही आकारकी और वितस्तिके प्रमाणकी दण्डी बनानी चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥
 तराजूके साथ तोल करनेमें हीनकी उन्नता और अधिककी वृद्धि (नीचता) होती
 है, यह तुलाकोशरहस्य कहा गया । मनुष्य रोहिणीयोगमेंभी इसको धारण करते
 हैं ॥ १० ॥ स्वाति, रोहिणी और आषाढनक्षत्रमें पापग्रहयोग अच्छा नहीं है;
 परन्तु जिस वर्ष अधिमास हो अर्थात् आषाढमास मलमास हो, उस वर्षमें पहले
 कहे हुए दोनों योग ग्रहण किये जायेंगे ॥ ११ ॥ यदि तीनों (रोहिणी, स्वाती
 और अषाढ) योगोंका फल समान हो तो निसन्देह होकर शुभ या अशुभ फल

१ जिस चन्द्रमासमें रविसंक्रमण नहीं होता तिसको अधिमास या मलमास कहते हैं
 " असंक्रातिमासोऽधिमासः स्फुटं स्यात् । " (सिद्धान्तशिरोमणि) ॥

ण्डिततलां विद्यात्तदा मेदिनीम् ॥ १ ॥ यदाग्नेयो वायुर्मलयशिस्ररास्फाटन-
पटुः पुवत्यस्मिन् योगे भगवति पतङ्गे प्रवसति । तदा नित्योद्दीप्ता ज्वलनशि-
खरालिङ्गिततला स्वगात्रोष्णोच्छ्वासेर्वमति वसुधा भस्मनिकरम् ॥ २ ॥ ताली-
पत्रलतावितानतरुभिः शाखामृगानर्जयन् योगेऽस्मिन् पुवति ध्वनन् सुपरोषो
वायुर्यदा दक्षिणः । तर्जोयोगसमुन्नताश्च गजवचालाङ्कुशैर्घट्टिताः कीनाशा
इव मन्दपारिकणिकान्मुञ्चन्ति मेघास्तदा ॥ ३ ॥ सूक्ष्मेतालवलीलवद्भानिच-
यान् व्याघूर्णयन् सागरे भानोरस्तमये पुवत्यविरतो वायुर्यदा नैर्ऋतः । ध्रुव-
प्यामृतमानुपास्थिथकलप्रस्तारभारच्छदा मत्ता प्रेतवभूरिवोद्यचपला भूमिस्तदा
लक्षयते ॥ ४ ॥ यदा रेणुत्पातैः प्रविकटसटाटोपचपलः प्रवातः पञ्चार्धं दिनक-
रकरापातसमये । तदा सस्योपेता प्रवरनृपराचक्षसमरा धरा स्थाने स्थानेष्ववि-
रतवसामांसरुधिरा ॥ ५ ॥ आपादोपर्वकाले यदि किरणपतेरस्तकालोपपत्ती

समूहोंसे और वृद्धिको प्राप्त हुए शरदृतुके फल धान्यसे युक्त होकर गमन
करन्ती धान्यसे शोभायमान हो जाती है ॥ १ ॥ भगवान् सूर्यके अस्ताचलपर
गमन करनेपर जय मलयपर्वतके शिखरपर अखंडित आग्नेय वायु बहने लगे ती
पृथ्वी नित्य उदीप्त होती है, और प्रवराशकी शिखासे तलमें आलिंगन पानेपर
अपने गात्रके तापसे उत्पन्न हुए आतोंसे मानो भस्मकी बमन करती है ॥ २ ॥
जय इस योगमें निदुर दक्षिणी पवन शब्द करते २ तालपत्र लताओंके समूह-
हित वानरोंके नचाता रहता है, तब सर्व प्रवरके उद्योग करके ऊँचे गजकी नमान
ताल व अंकुशसे ताडित हाथीकी समान मेघ कृपण मनुष्यकी समान घोड़ी बर्षा
करते हैं ॥ ३ ॥ सूर्यके अस्तगमनकालमें जब नैर्ऋतवायु छोटी इलायची और

समान उम्र व चपल दिखाया करता है ॥ ४ ॥ संध्याके समय जब कि धूरे बंने
परके फेदरके आक्षेपद्वारा चञ्चल और गरके हेतुसे चञ्चल हो पार्श्वमें रहता है,
तब पृथ्वी धान्ययुक्त और प्रधान राजाओंकी समरभूमि होकर स्थान २ में घरकी
मांस व रुधिरसे परापर ढकी रहती है ॥ ५ ॥ आपादी पूर्णमासी जब सूर्यके
अस्त होनेका समय आवे, उस समय यदि मेघका शत्रु वायवीय पवन मददकी
चालकर चलनेवाला होकर गमन करता है, तब पृथ्वी जलकी धारासे मृदुल, नैर्ऋ-

न चिराचन्द्रवन्मार्गवोऽपि ॥ १ ॥ आर्द्रं द्रव्यं स्पृशति यदि वा वारि तत्सं
 वा तोयासन्नो भवति यदि वा तोयकार्पोन्मुखो वा । प्रष्टा वाच्यः सलिलम-
 रादमिति निःसंशयेन पृच्छाकाले सलिलमिति वा श्रूयते यत्र शब्दः ॥ २ ॥
 उदयशिखरिसंस्थो दुर्निरीक्ष्योऽप्रतिदीप्त्या द्रुतकनकनिकाशः स्निग्धवैडूर्यकान्ति-
 तदहानि कुरुतेऽभस्तोयकालं विवस्वान् प्रतपति यदि बोधैः खं गतोऽतीव्रती-
 क्ष्णम् ॥ ३ ॥ विरसमुदकं गोनेत्रात् विपद्दिमला दिशो लवणाविरुति-
 काकाण्डात् यदा च भवेन्नतः । पवनविगमः पोषूयन्ते शपाः स्थलगामिनो
 रसनमसरुन्मण्डूकानां जरागमहेतवः ॥ ४ ॥ मार्जारा भृशमवानि नखैर्लिखन्तो
 गेहानां मलनिचयः सविन्नगन्धः । रथ्यायां शिशुनिचिताश्च सेतुग्रन्थाः
 भ्रान्तं जलमचिरान्निवेदयन्ति ॥ ५ ॥ गिरयोऽजनपुञ्जसन्निहा यदि वा बाष्पनि-
 र्द्धकन्दराः । रुक्वाकुविलोचनोपमाः परिवेपा शशिनश्च वृष्टिदाः ॥ ६ ॥
 हो और शुभ ग्रहसे देखा जाय तो बहुतसा जल वर्षता है, पापग्रहसे देखा जाय तो
 थोड़ा जल वर्षता है और बहुत कालतक वर्षा नहीं होती । शुक्रभी चन्द्रमाकी समान
 फलदाता है ॥ १ ॥ जो मश्र करनेके समय मश्रक्य करनेवाला गोला द्रव्य वा जल अथवा
 जलपर जिसका नाम हो गेने कितनी द्रव्यको छुए अथवा जलके निकटवाले या जल-
 सम्यन्धी कितनी कार्यमें रत हो या मश्र करनेके कालमें जल या जलवाचक शब्द
 हो तो मश्रकर्तासे निःसन्देह कहा जा सकता है कि बहुत शीघ्र वर्षा होगी ॥ २ ॥
 पार्कालमें जिस दिन उदयपर्वतपर स्थापित सूर्य भगवान् अपनी कांतिसे दृष्टिको
 ताप पहुँचानेवाले हों; पिघले हुए सुवर्णकी समान या वैडूर्यमाणिक्यकी समान
 कृती कांतिवाले हो उस दिन जल वर्षेगा और यदि आकाशके ऊँचे स्थानमें
 कल तीक्ष्ण किरणोंसे तपे तो तिस समय जल वर्षेगा ॥ ३ ॥ जलका स्वाद
 ठा जाना गायकी आंखके समान आकाशका रंग हो जाना, दिशाओंका विमल
 , पवनके बहनेसे धँस जाना, मछलियोंका जलमेंसे बारंवार उछलना और मँड-
 नाका बारंवार शब्द करना, जलकी अगईका चिह्न है ॥ ४ ॥ बिलियोंका अपने
 नाँसे पृथ्वीकी ऊँदेदना, लोहेपर भैल जम जानेसे उसमें कच्चे मांसकी समान गंध
 ना, बालकोंका मार्गमें रेतें आदिक्य पुल बांधना शीघ्रही जल वर्षनेके लक्षणको
 करता है ॥ ५ ॥ समस्त पर्वत अंजनराशिकी समान रंगवाले हो जाय,
 की कंदराओंमें बाफ भर जाय और चन्द्रमाका परिवेप कुमुदके नेत्रकी समान

मयूरशुकचापचातकसमानवर्णा यदा जपाकुसुमपङ्कजद्युतिमुपश्च सन्ध्याधनाः ।
जलेर्मिनगनक्रकच्छपवराहमीनोपमाः प्रभूतपुटसञ्चया न तु चिरेण यच्छ-
न्त्यपः ॥ १४ ॥ पर्यन्तेषु सुधाशशाङ्कधवला मध्येऽज्जनालित्विषः स्निग्धा
नैकपुटाः क्षरजलकणाः सोपानविच्छेदिनः । माहेन्द्रीप्रभवाः प्रयान्त्यपरतः प्रा-
क्चाम्बुपाशोद्भवा ये ते वारिसुचस्त्यजन्ति न चिरादम्भः प्रभूतं भुवि ॥ १५ ॥
शक्रचापपरिधमतिसूर्या रोहितोऽथ तडितः परिवेषाः । उद्गमास्तसमये यादे
भानोराशिरेव प्रचुरमम्बु तदाशु ॥ १६ ॥ यदि तित्तिरपत्रनिभं गगनं मुदिताः
प्रवदन्ति च पक्षिगणाः । उदयास्तसमये सवितुर्द्युनिशं विभृजन्ति घना न चिरेण
जलम् ॥ १७ ॥ यद्यमोघकिरणाः सहस्रगोरस्तभूधरकरा इवोच्छ्रिताः । भूसमं
च रसते यदाम्बुदस्तन्महद्भवति वृष्टिलक्षणम् ॥ १८ ॥ प्रावृषि शीतकरो
ध्रुवपुत्रात् सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः । सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगश्च
जलागमनाय ॥ १९ ॥ प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसंक्रमे च ।

जय संध्याकालके आकाशमें मेघमण मोर, शुक, नीलकण्ठ या श्यातकपक्षीकां
समान रंगवाले या जपाकुसुम वा कमलकी कान्तिको हरण करें और जलकी तरंग,
पर्वत, नाक, कलुआ, शूकर या मछलीकी समान आकरवाले हो तो शीघ्र जल
बर्षेगा ॥ १४ ॥ चारों किनारोंपर सीधा और चन्द्रमाकी समान श्वेतवर्ण हो, मध्यमें
अंजन और भ्रमरकी समान दीप्तिवाला हो, चिकने जलकी बूंदें टपकता हो, पैर-
योकी समान एकत्रे ऊपर एक चढ़े रहें, पूर्वदिशासे आकर पश्चिम दिशाकी जाय
वे यादल शीघ्रही पृथ्वीमें बहुतसा जल वर्षाते हैं ॥ १५ ॥ सूर्यके उदय या अस्तके
समय जो इन्द्रधनुष, परिघ, दूसरा सूर्य, दण्डाकार इन्द्रधनुष या बिजलीकी समान
परिवेष प्रकाशित होय तो शीघ्रही बहुतसा जल वर्षता है ॥ १६ ॥ सूर्यके उदय
अस्तके समय यदि आकाशका रंग तीतरके पंखोंकी समान हो जाय और पक्षिगण
आनन्दित होकर कलरव करते हैं तो मेघ शीघ्रही दिनरात जल वर्षाते हैं ॥ १७ ॥
यदि हजार किरणवाले सूर्यके अस्तकालमें अस्ताचलकी किरणोंके समान ऊंची
और अमोघ किरणें विराजमान हैं और यदि मेघमण पृथ्वीके निकट शब्द करें तो
इन बातोंकी वर्षा होनेका बड़ा भारी लक्षण कहा जा सकता है ॥ १८ ॥ जो वर्षा-
कालमें पन्द्रमा शुभ ग्रहों करके देखा जाय नौ शुक्रसे सप्तम राशिमें या शनिसे
नवम, पञ्चम वा सप्तम राशिमें हो तो यह जलागमका वरण है ॥ १९ ॥ ग्रहोंके
उदयास्तकालमें मण्डल संक्रमण और समागम होनेपर और पक्षधरमें, यवनके

पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्कं नियमेन चार्द्राम् ॥ २० ॥ सप्तमे
 पतति जलं जलशुक्रयोर्ज्ञानोवयोर्गुरुसितयोश्च सङ्गमे । यमारयोः पवनदुर्लभं
 भयं न दृष्टयोरसहितयोश्च सद्यैहैः ॥ २१ ॥ अग्रतः पृष्ठतो वाति इव
 सूर्यावलम्बिनः । यदा तदा प्रकुर्वन्ति महीमेकार्णवामिव ॥ २२ ॥
 इति श्रीवाराहमिहिरकृती बृहत्संहितायां सद्योवृष्टिलक्षणं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

कुसुमलता.

कलकुसुममम्बुवृद्धिं वनस्पतीनां विलोक्य विज्ञेयम् । सुलभत्वं रक्षा
 निष्पत्तिर्भाति सस्यानाम् ॥ १ ॥ शालेन कलमशाली रक्षाशोकेन रक्ष
 मिथ । तान्द्रुकः शीररुपा नीलाशोकेन सूकरकः ॥ २ ॥ न्यग्रोधेन तु र
 क्षाम्बुद्रुकादृषा च पटिको भवति । अभत्येन ज्ञेया निष्पत्तिः सर्वम
 पत्त ॥ ३ ॥ गन्धुभिस्तिलमापाः सिरीषवृक्षपा च कंयुनिष्पत्तिः । गोपुष्प

॥ १ ॥ नीर गुप्ते के आश्रमे जानेपर यदुषा नियमानुसार वर्षा होती है ॥ २०
 ॥ २ ॥ गुप्ते के ममममने, पुष इत्यादिके ममममसे, बालवृक्षपा और गुप्ते प
 के २१ ॥ ३ ॥ जो अग्ने प्रहणे न देता जाकर या न मिलकर शनि
 ॥ २२ ॥ नीर गुप्ते की ती आश्रमा भव होता है ॥ २३ ॥ नन गुप्ते की मा
 ॥ २४ ॥ नीर गुप्ते की ती आश्रमा भव होता है ॥ २५ ॥ नीर गुप्ते की मा
 ॥ २६ ॥ नीर गुप्ते की ती आश्रमा भव होता है ॥ २७ ॥ नीर गुप्ते की मा

॥ २८ ॥ नीर गुप्ते की ती आश्रमा भव होता है ॥ २९ ॥ नीर गुप्ते की मा
 ॥ ३० ॥ नीर गुप्ते की ती आश्रमा भव होता है ॥ ३१ ॥ नीर गुप्ते की मा

॥ ३२ ॥ नीर गुप्ते की ती आश्रमा भव होता है ॥ ३३ ॥ नीर गुप्ते की मा
 ॥ ३४ ॥ नीर गुप्ते की ती आश्रमा भव होता है ॥ ३५ ॥ नीर गुप्ते की मा
 ॥ ३६ ॥ नीर गुप्ते की ती आश्रमा भव होता है ॥ ३७ ॥ नीर गुप्ते की मा
 ॥ ३८ ॥ नीर गुप्ते की ती आश्रमा भव होता है ॥ ३९ ॥ नीर गुप्ते की मा
 ॥ ४० ॥ नीर गुप्ते की ती आश्रमा भव होता है ॥ ४१ ॥ नीर गुप्ते की मा

मधुकैर्यववृद्धिः सप्तपर्णेन ॥ ४ ॥ अतिमुक्तककुन्दाभ्यां कर्पासं सप्तपान्वदे-
शनेः । बदरीभिश्च कुलत्थांश्चिरबिल्वेनादियोन्मुद्रान् ॥ ५ ॥ अतस्ती वेतसपुष्पैः
पलाशकुसुमैश्च कोद्रवा ज्ञेयाः । तिलकेन शङ्खस्वमौक्तिकरजतान्यथ चैगुदेन
शृणः ॥ ६ ॥ करिणश्च हस्तिकर्णरादेश्या वाजिनोऽश्वकर्णेन । गावश्च पाट-
लाभिः कदलीभिरजाविकं भवति ॥ ७ ॥ चम्पककुसुमैः कनकं विद्रुमसम्पच्च
बन्धुजीवेन । कुरुवकवृद्ध्या वज्रं वैदूर्यं नन्दिकार्वतैः ॥ ८ ॥ विद्याच सिन्दु-
वारेण मौक्तिकं कुंकुमं कुसुम्भेन । रक्तोत्पलेन राजा मन्त्री नीलोत्पलेनोक्तः
॥ ९ ॥ श्रेष्ठी सुवर्णपुष्पैः पर्णविप्राः पुरोहिताः कुमुदः । सागन्धिकेन बलपति-
रर्केण हिरण्यपरिवृद्धिः ॥ १० ॥ आम्रैः क्षेमं भल्लातर्करूपं पीलुभिस्तथारो-
ग्यम् । खदिरशर्माभ्यां दुर्भिक्षमजुनेः शोभना वृष्टिः ॥ ११ ॥ पिचुमन्दनागकु-
सुमैः सुभिक्षमथ मारुतः कपित्थेन । निचुलेनावृष्टिभयं व्याधिभयं भवति कुटजेन
॥ १२ ॥ दूर्वाकुशकुसुमाभ्यामिक्षुवंद्विश्च कोविदारणे । श्यामालताभिवृद्ध्या
बन्धक्यो वृद्धिमायान्ति ॥ १३ ॥ यस्मिन्देशे स्निग्धनिशिष्ठशृणवाः संहश्यन्ते

महुषसे गेहूं और सप्तपर्णसे जीकी वृद्धि जानना चाहिये ॥ ४ ॥ अतिमुक्तक और
कुन्द इन दोनों पुष्पवृक्षकी वृद्धिसे कपास, असनासे गरसों, बरसं कुलपी और
सदाबिलसे भृंगको जानना चाहिये ॥ ५ ॥ वेतससे अलसी, पलाशमें कांदांकी
वृद्धि, तिलकमें शंख, मोती और चांदीकी वृद्धि और इंगुदीकी वृद्धिसे शनकी
उत्पत्ति होती है ॥ ६ ॥ हस्तिकर्णसे हाथियोंकी, अश्वकर्णसे घोडोंकी, पाटल्यकी
वृद्धिसे गायोंकी और कदलीसे बकरी व भेडोंकी वृद्धि होती है ॥ ७ ॥ चम्पाके
फूलसे सुवर्ण, दुपहरियाके फूलसे भृंगा, कुरुवककी वृद्धिसे वज्र, नन्दिकार्वतमें
वैदूर्य, सिन्धुवारकी वृद्धिसे रत्नोंकी वृद्धि, कुसुम्भसे केशर, लालकमलसे राजा और
नील कमलसे मंत्री बढ़ा जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुवर्णपुष्पसे बणिक, पद्ममें रिम,
कुमुदसे पुरोहित, सुगन्धद्रव्यसे सेनापति, आम्रके वृक्षसे सुवर्ण, आम्रमें कल्याण,
मिटावेसे भय, पीलुसे आरोग्य, खैर और शमीसे दुर्भिक्ष, अर्जुनसे शुभरती वृद्धि,
नीम और नागकुसुमसे सुभिक्ष, कैयसे पवन, निचुलमें अशुद्धिभय और कुटजसे
व्याधिभयका ज्ञान होता है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ दूब और तुलसीके बरतनेसे
ईश्वर, कपनारसे आग और श्यामालताकी वृद्धिसे व्याधिचारिणी स्त्रियें बरदां हैं
॥ १३ ॥ जिस देशमें वृक्ष और गुल्म और लताओंके पत्ते चिकने और छेदसे

वृत्तयुत्तमा लताम् । तस्मिन् वृष्टिः शोभना सम्प्रदिष्टा तत्संदिष्टैस्तत्सं
प्रदिष्टम् ॥ १४ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कुसुमलताध्याय एकोनविंशोऽध्यायः २१

अथ त्रिंशोऽध्यायः ।

संख्यालक्षण.

आदौस्तमिनालुदितात् सूर्यादस्पर्ष्टमं नभो यावत् । तावत् संख्याकृतं
भिद्वैरेनेः फलं चास्मिन् ॥ १ ॥

चारिः । मन्थवनगरराक्षिरदण्डरजः ॥ २ ॥ मन्थवनगरराक्षिरदण्डरजः ॥ २ ॥
मन्थवनगरराक्षिरदण्डरजः । रविदीनो दक्षिणतो महास्वनः सैन्ययातकः ॥ ३ ॥
आनन्दे मन्थमः मन्थे सेनासमागमः शान्ते । मृगचक्रे पयने वा सन्त्यक्तं
विभवे वृष्टिः ॥ ४ ॥ रविमृगण्डजविरुता प्राक् संख्या देशनाशमास्त्यति ।
रविमृगण्डजविरुता ग्रहणाय पुरस्य दीप्तार्यः ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ ॥ ५७ ॥ ॥ ५८ ॥ ॥ ५९ ॥ ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ ॥ ६३ ॥ ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ ॥ ६६ ॥ ॥ ६७ ॥ ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ ॥ ७० ॥ ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ ॥ ७३ ॥ ॥ ७४ ॥ ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥ ॥ ७८ ॥ ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ ॥ ८१ ॥ ॥ ८२ ॥ ॥ ८३ ॥ ॥ ८४ ॥ ॥ ८५ ॥ ॥ ८६ ॥ ॥ ८७ ॥ ॥ ८८ ॥ ॥ ८९ ॥ ॥ ९० ॥ ॥ ९१ ॥ ॥ ९२ ॥ ॥ ९३ ॥ ॥ ९४ ॥ ॥ ९५ ॥ ॥ ९६ ॥ ॥ ९७ ॥ ॥ ९८ ॥ ॥ ९९ ॥ ॥ १०० ॥

॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ ॥ ५७ ॥ ॥ ५८ ॥ ॥ ५९ ॥ ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ ॥ ६३ ॥ ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ ॥ ६६ ॥ ॥ ६७ ॥ ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ ॥ ७० ॥ ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ ॥ ७३ ॥ ॥ ७४ ॥ ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥ ॥ ७८ ॥ ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ ॥ ८१ ॥ ॥ ८२ ॥ ॥ ८३ ॥ ॥ ८४ ॥ ॥ ८५ ॥ ॥ ८६ ॥ ॥ ८७ ॥ ॥ ८८ ॥ ॥ ८९ ॥ ॥ ९० ॥ ॥ ९१ ॥ ॥ ९२ ॥ ॥ ९३ ॥ ॥ ९४ ॥ ॥ ९५ ॥ ॥ ९६ ॥ ॥ ९७ ॥ ॥ ९८ ॥ ॥ ९९ ॥ ॥ १०० ॥

॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ ॥ ५७ ॥ ॥ ५८ ॥ ॥ ५९ ॥ ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ ॥ ६३ ॥ ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ ॥ ६६ ॥ ॥ ६७ ॥ ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ ॥ ७० ॥ ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ ॥ ७३ ॥ ॥ ७४ ॥ ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥ ॥ ७८ ॥ ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ ॥ ८१ ॥ ॥ ८२ ॥ ॥ ८३ ॥ ॥ ८४ ॥ ॥ ८५ ॥ ॥ ८६ ॥ ॥ ८७ ॥ ॥ ८८ ॥ ॥ ८९ ॥ ॥ ९० ॥ ॥ ९१ ॥ ॥ ९२ ॥ ॥ ९३ ॥ ॥ ९४ ॥ ॥ ९५ ॥ ॥ ९६ ॥ ॥ ९७ ॥ ॥ ९८ ॥ ॥ ९९ ॥ ॥ १०० ॥

गृहतस्फोरणमधने सपांशुलोष्टोत्करेऽनिले प्रचले । भैरवरावे रूक्षे सगपातिनि-
चाशुत्ता सन्ध्या ॥ ६ ॥ मन्दपवनावधटितचालित पलाशद्रुमा विपवना वा ।
मधुरस्वरशान्तविहङ्गमृगरुता । पूजिता सन्ध्या ॥ ७ ॥ सन्ध्याकाले स्निग्धा
दण्डतडिन्मत्स्यपरिधिपरिवेपाः । मुरपतिचापैरावतराविकिरणाभाशु वृष्टिकराः
॥ ८ ॥ विच्छिन्नविषमविध्वस्तविकृतकुटिलापसम्पारिवृत्ताः । तनुह्रस्वाविकल-
कलुषाश्च विग्रहावृष्टिदाः किरणाः ॥ ९ ॥ उद्योतिनः प्रसन्ना क्रजवो-
दीर्घाः प्रदक्षिणावर्ताः । किरणाः शिवाय जगतो वितमस्के नभसि
भ्रातृमतः ॥ १० ॥ शुक्लाः करा दिनकृतो दिवादिमध्यान्तगामिनः
स्निग्धाः । अव्युच्छिन्ना क्रजवो वृष्टिकरास्ते ह्यमोघाख्याः ॥ ११ ॥ कल्पा-
पञ्चकपिला विचित्रमाजिग्रहारितशबलाक्षाः । त्रिदिवातुबन्धिनो वृष्टयेऽल्प-
भयदास्तु सनाहात् ॥ १२ ॥ ताम्रा बलपतिभृत्यं पीतारुणसन्निभाश्च

कर लिया जाता है ॥ ५ ॥ गृह, वृक्ष, तोरणमधन और धूरिके साथ मष्टीके
ढेलोंको उड़ानेवाला पवन, प्रचल वेग और भयङ्कर रूखे शब्दसे पाक्षियोंको गिरावे
तो अशुभकारी सन्ध्या होती है ॥ ६ ॥ सन्ध्याकालमें मन्द पवनके प्रवाहसे हिलते
हुए पलाश अथवा वामुरादित हो और मधुर स्वरसे शान्त दिशामें विहङ्ग और
मृगोंके नाद करनेसे सन्ध्या पूजित होती है ॥ ७ ॥ सन्ध्याकालमें दण्ड, तडित,
मत्स्य, मंडल, पार्ष्विप, इन्द्रधनु, ऐरावत और सूर्यकी किरण इन सबका स्निग्ध
होना शीघ्र वर्षाको लाता है ॥ ८ ॥ दूटी कूटी, टेढ़ी बेड़ी, विध्वस्त, विकल,
कुटिल, व ई ओरको झुकी हुई, जोटी २ विकल और मलीन सूर्यकी किरणें सन्ध्या-
कालमें हों तो युद्ध होवे वर्षा नहीं हो ॥ ९ ॥ अन्धकारहीन आकाशमें सूर्यकी
किरणोंका निर्मल, प्रसन्न, सीधा, दीर्घताका प्राप्त होना और प्रदक्षिणाके आकारमें
पूतना संसारके मंगलका कारण होता है ॥ १० ॥ सूर्यके किरण दिनके आदि
मध्य और अन्तगामी होकर, चिकने अखंडित, सीधे और श्रेत हों तो वर्षा होती
है और इनका नाम अमोघ है ॥ ११ ॥ बड़ी काले, पीले, कपिल, लाल, हरे
अनेक प्रकारके होकर आकाशमें फैल जाय तो वर्षाके कारणरूप है,
परन्तु एक सप्ताहक, कुछ एक भयदायी है ॥ १२ ॥ इनके ताम्ररंग
होनेमें सेनापतिकी भृत्य होती है, पीले और लालरंगकी समान हों तो
सेनापतिकी दुःख होता है, हरे रंगके होनेमें पशु और धान्यका नाश होता है,
धूम्रवर्णसे गोनाश, मजीठरी आभाके समान रंगदार होनेसे शस्त्र व आगिका भय.

तद्व्यसनम् ॥ हरिताः पशुसस्यवधं धूमसवर्णा गवां नाशम् ॥ १३ ॥
 माजिठाभाः शङ्खाग्निसम्भवं बभ्रवः पवनवृष्टिम् । भस्मसदशास्त्ववृष्टिं तनुवतं
 शबलकल्माषाः ॥ १४ ॥ बन्धूकपुष्पाजनचूर्णसन्निभं सान्ध्यं रजोऽप्ये-
 यदा दिवाकरम् । लोकस्तदा रोगशतैर्निपीड्यते शुक्लं रजो लोकविवृद्धि-
 ये ॥ १५ ॥ राविकिरणजलदमस्तां सङ्घातो दण्डवत् स्थितो दण्डः । स वि-
 निस्थितो नृपाणामशुभो दिक्षु द्विजातीनाम् ॥ १६ ॥ शस्त्रभयातङ्कुरो
 प्राङ्मध्यसन्धिषु दिनस्य । शुक्लाद्यो विप्रादीन् यदभिमुखस्तां निहन्ति वि-
 ॥ १७ ॥ दधिसदशाग्रो नीलो जालुच्छादी स्वमध्यगोऽभ्यतरुः । पीतच्युत-
 वना घनमूला भूरिवृष्टिकराः ॥ १८ ॥ अनुलोमगोऽभ्यवृक्षे समुद्रते या-
 नुपस्य वधः । बालतरुप्रतिरूपिणि युवराजामात्ययोर्मृत्युः ॥ १९ ॥ कुव-
 र्वेदूर्यान्बुजकिञ्जल्काभा प्रभजनोन्मुक्ता । सन्ध्या करोति वृष्टिं राविकिरणो-
 सिता तवः ॥ २० ॥ अशुजाततिघनगन्धर्वनगरनीहारपांशुधूमयुता । प्रा-

होता है, पीले हाँ तो पवनके साथ वर्षा होती है, भस्म समान होनेसे अनाशु-
 सयल और कल्माष रंगके होनेसे वृष्टिका क्षीणभाव हो जाता है ॥ १३ ॥ १४
 संध्याकालकी धूरि दुपहरियाके रूल और अंजनचूर्णके समान काली होकर
 सूर्यके सामनेकी जाती है तब मनुष्य सैकड़ों प्रकारके रोगोंसे पीडित होवे
 इसका भेद होना मनुष्योंकी वृद्धि और शान्तिका कारण होता है ॥ १५ ॥
 सूर्यकी किरण जल और पवनसे मिलकर दंडकी समान हो जाय तो यही
 होता है, वह विदिकमें स्थित हो तो राजाओंको और दिक्में स्थिर होकर द्विजातियों
 अशुभकरों होता है ॥ १६ ॥ दिन निकलनेसे पहले और मध्य सन्धिमें जो
 दिशाई दे तो शस्त्रमय और रोगमयका करनेवाला होता है, शुक्लादि वर्णों
 प्राङ्मणियों और तिनके सम्मुख स्थित होवे उन दिशाओंकी हनन करता है ॥ १७ ॥
 आश्विनमें सूर्यके दन्तसाले दहीकी समान किलारेदार नीले मेघको अभ्यतरु
 है, यह और पीले रंगका मेघ जो घनमूल अर्थात् उसके नीचे मुल युक्त हो
 बलुना जल वर्षता है ॥ १८ ॥ अघ्नरु शत्रुके ऊपर चढ़ जानेसाले गजाके पीले
 चउकर अस्त्रमाल शान्त हो जाय तो युवराज और मंत्रांक नाश हो जाता
 ॥ १९ ॥ नीलकमल, वेदूर्य और पद्मेद्वारके समान कानियुक्त, पवनशील मध्य
 रात्रि सूर्यके छिगोमें प्रकाशित हो तो वर्षा करती है ॥ २० ॥ अशुभाकर मेघ

करोत्यवग्रहमन्यतो शस्त्रकोपकरो ॥ २१ ॥ शिशिरादिषु वर्णाः शोणपतिसित-
चित्रपद्मरूपिरतिभाः । मलतिमवाः सन्ध्यायां स्वर्तो शस्ता विरुतिरन्या ॥ २२ ॥
आयुधभृन्नररूपं छिन्नाभं परधयाय रविगामि । सितस्वपुरेऽर्काकान्ते पुरलाभो
भेदने नाशः ॥ २३ ॥ सितनितान्तपनावरणं रवेर्भवति वृष्टिकरं यदि सव्यतः ।
यदि च वीरणयुल्मनिभैर्पेर्नोर्वसन्नतुरदीप्तद्विभ्रवैः ॥ २४ ॥ नृपविपत्तिकरः
परिधः सितः क्षतजलतुल्यवपुर्बलकोपलव । कनकरूपधरो बलवृद्धिदः सवितुरु-
द्गमकालसमुत्थितः ॥ २५ ॥ उभयपार्श्वगतो परिधी रवेः प्रचुरतोयकृतो वपुषा-
न्वितो । अथ समस्तकुम्परिवारिणः परिधयोऽस्ति कणोऽपि न वारिणः ॥ २६ ॥
ध्वजातपत्रपर्वतादिपार्श्वरूपधारिणः । जयाय सन्ध्ययोर्धना रणाय रक्तसन्निभाः
॥ २७ ॥ पलातधूमसञ्जयस्थितोपमा बलाहकाः । बलान्यरुक्षमूर्तयो विवर्द्ध-

गंधर्वनगरी, हिम, धूरि और धूम (कुहर) युक्त संध्या वर्षाकालमें वर्षाकी कमी
करती है व और ऋतुमें हो तो शस्त्रका कोप करनेवाली होती है ॥ २१ ॥ शिशि-
रादिऋतुयें संध्याका स्वभावसे उत्पन्न हुआ रंग जो लाल, पीला, श्वेत, चित्रविचित्र
पद्म और रुधिरकी समान होता है जैसी ऋतु हो वैसाही वर्ण हो तो कल्याणदायी
है, दूसरा रंग हो तो विकार होता है ॥ २२ ॥ शस्त्र धारण किये नररूपधारी
सूर्यके सन्मुखके मेघ जो छिन्नमित्र हों तो शत्रुभय होता है, श्वेत आकाशमें गंध-
र्वनगर जो सूर्यको ढक लेवे तो आक्रमणकारी राजाको घेरा हुआ नगर प्राप्त हो
जाता है, सूर्यनगर गंधर्वनगरका भेदन करे तो नगरका शत्रुसे नाश हो जाता है
॥ २३ ॥ शुक्लवर्ण और शुक्ल किनारेवाले मेघ जो बाई ओरसे सूर्यको ढके अथवा
उशीर (खस) गुल्मकी समान अदीप्त दिशासे उत्पन्न हुए बादलसे जो सूर्य ढक
जाय तो वर्षा करनेवाला होगा ॥ २४ ॥ सूर्यके उदयकालमें जो शुक्लवर्णका परिध
दिखाई दे तो राजाको विपद् होती है, रक्तवर्णसे सेनाका कोप होता है और
कनकरूपधारीसे बलकी शृद्धि होती है ॥ २५ ॥ सूर्यके दोनों ओरकी परिधि
जो शरीरवाली हो जाय तो बहुतसा जल वर्षता है, सब परिधि दिशाओंको घेरे
ले तो जलका एक कणभी नहीं गिरता ॥ २६ ॥ सन्ध्याकालके मेघ ध्वज, छत्र,
पर्वत, हस्तो और घोड़ेका रूप धारण करे तो जयका कारण है और रक्तकी समान
लाल होने तो रणके कारण होते हैं ॥ २७ ॥ पलातके धुएकी समान स्थि-
त्य

च्यन्ति भूभृताम् ॥ २८ ॥ विलम्बिनो दुमोपमाः खरारुणप्रकाशिनः । वन
 शिवाय सन्ध्ययोः पुरोपमाः शुभावहाः ॥ २९ ॥ दीप्तविहङ्गशिवामृगनुश
 दण्डरजःपरिधादियुता च । प्रत्यहमर्कविकारयुता वा देशनरेशमुनिस्त्रिधा
 ॥ ३० ॥ प्राची तत्क्षणमेव नक्तमपरा-सन्ध्या व्यहादा फलं सप्ताहात्तारिष-
 रेणुपरिधाः कुर्वन्ति सद्यो न चेत् । तद्वत्सूर्यकरेन्द्रकामुक्तताडितत्वत्यर्कमेवा-
 निलास्तस्मिन्नेव दिनेऽष्टमेऽथ विहगाः सप्ताहपाका मृगाः ॥ ३१ ॥ एकं शीघ्रा
 योजनं भाति सन्ध्या विद्युद्भासा षट् प्रकाशीकरोति । पञ्चाब्दानां गर्जितं पाति
 शब्दो नास्तीपत्ता काचिदुल्कानिपाते ॥ ३२ ॥ प्रत्यर्कसंज्ञः परिधिस्तु तस्य
 त्रियोजना भा परिधस्य पञ्च । षट् पञ्च दृश्यं परिवेषचक्रं दशानुरेणुस्य
 धनुर्विभाति ॥ ३३ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सन्ध्यालक्षणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

सूर्यपारी मेघ राजालोगोंके चलफो बढ़ाते हैं ॥ २८ ॥ मेघ संध्याकालमें तारुण्य
 सूर्यके मरगमर वृक्षाकार होयें या मुक्त जायें तो मंगल होता है, इसी समयमें नक्ष-
 त्रों समान मेघ होयें तो शुभ होता है ॥ २९ ॥ सूर्यके सन्मुख होकर पक्षी, गाँद और
 मृग सूर्यके शब्दापमान और दंड, धूरि और परिषयुक्त वा प्रतिदिन सूर्यके पिछ-
 छनेराखी मंध्या देश, राजा और मुमिशके नाशकी कारण है ॥ ३० ॥ पूर्वसंध्या
 नाशक फलसे देती है, रात्रि वा सायंसन्ध्या तीन दिनमें और पारिवेप, रज और
 परिध उगी दिनमें फल न दे ती एक सप्ताहमें फल देते हैं, ऐसेही सूर्योदय,
 इन्द्रधनुष, निजली, प्रतिमूर्य, मेघ और वायु आठ दिनमें और पक्षी व मृग सप्ता-
 हमें फलसे परान हैं. मन्ध्या अपनी दीप्तिसे एक योजन और विजली अपनी
 दीप्तिसे छः योजनतक मरगमर किया करती है मेघका गर्जना पांच योजनतक जाय
 है और उदयने मिलनेके योजनका कुछ परिमाण नहीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥
 सूर्यके नाशकी रात्रिसे ही दीप्ति तीन योजन, पारिवेप ही दीप्ति पांच योजन, पारि-
 षयचक्र ही दंडन जाय या छः योजनतक देखी जाती है और इन्द्रधनुष दश योजन-
 तक मरगमर करता है ॥ ३३ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पारिवेपपरिधेशीयमृगशब्द-
 सन्ध्यालक्षणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः ।

दिग्दाहलक्षण.

राहो दिशां राजभयाय पीतो देशस्य नाथाप हुताशवर्णः । यश्चारुणः
पादपत्तव्यवायुः सस्यस्य नाथं स करोति दृष्टः ॥ १ ॥ योजीवदीप्त्या कुरुते
कारं छापामाषि व्यञ्जयतेऽर्कवदः । रात्रौ महद्देदयते भयं स शस्यमकोपं
तजानुरूपः ॥ २ ॥ ग्राम्क्षप्रियाणां सनरेश्वराणां प्राग्दक्षिणे शिल्पि-
मरपीडा । याम्ये सहोमेः पुरुषस्तु वेश्या दूताः पुनर्भुप्रमदाश्च कोणे ॥ ३ ॥
भानु शुद्राः छापेजीविनश्च चौरास्तुरङ्गेः सह वायुदिवस्ये । पीडां व्रजन्त्यु-
रतश्च विभाः पापण्डिनो वाणिजकाश्च शार्ङ्गाम् ॥ ४ ॥ नभः प्रसन्नं विम-
लानि भानि प्रदक्षिणं वाति सदागतिश्च । दिशां च दाहः कनकावदातो हिताय
लोकस्य सपार्थिवस्य ॥ ५ ॥

ति श्रीवराहमिहिरकृती बृहत्संहितायां दिग्दाहलक्षणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ३१

पीले वर्णका दिग्दाह राजभयका कारण, हुताशनके वर्णका दिग्दाह देश नाशका
कारण होता है और लालरंगका हुआ दक्षिणी पवन धान्यको नष्ट करता है ॥ १ ॥
जब दिग्दाहमें अत्यन्त दीप्ति हो, और सूर्यकी समान छायाको (अंतर्गतज्यो-
त्स्नको) प्रकाशित करता है वह रुधिरकी समान दाह राजाको महाभय देता है
और शास्त्रका कोप प्रकाशित करता है ॥ २ ॥ पूर्व दिशामें दिग्दाह हो तो राजा
और क्षत्रियोंकी पीडा होती है, अग्निकोणमें कुमारगण और शिल्पयोगी पीडा
होता है, दक्षिणमें उग्रपुरुष, वेश्य, दूतगण और दूसरी वार व्याही हुई स्त्रियोंकी
पीडादायक होता है ॥ ३ ॥ पश्चिमदिशामें शुद्र और किमान, वायुकोणमें तुरंग-
मादेव चोर लोग और उत्तर दिशामें ब्राह्मण लोग और ईशान कोणमें पापण्डी
और यानियोंकी पीडा होती है ॥ ४ ॥ जो आकाश प्रसन्न हो, नक्षत्र निर्मल हो,
पवन धूमता हुआ चले, तो भुवर्णके रंगका दिग्दाह लोगोंके और राजाके हितका
प्रेमिष्ठ होता है ॥ ५ ॥

ति श्रीवराहमिहिरचार्याविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयपुरादावादास्त-
म-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां मापाटीकाया मेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

चलिताचलवर्माणो गम्भीरविराविणस्ताडित्वन्तः । गवललालिकुलाहिनिषा
 विसृजन्ति पयः पयोवाहाः ॥ १७ ॥ ऐन्द्रं श्रुतिकुलजातिख्यातावनिपालगण-
 विध्वंसि । अतिसारगलग्रहवदनरोगकृच्छर्दिकोपाय ॥ १८ ॥ काशियुगन्धर
 पौरवकिरातकीराभिसारहलमद्राः । अर्जुदसुवास्तुमालवपीडाकरमिश्रवृष्टिकर
 ॥ १९ ॥ पौष्णाप्याद्राश्लेषामूलाहिर्वुष्ण्यवरुणदेवानि । मण्डलमेतदारुणमस्या
 भवन्ति रूपाणि ॥ २० ॥ नीलोत्पलालिभिन्नाजनत्विषो मधुरराविणो बहुलाः
 तडिदुन्नासितदेहा धारांकुशवर्षिणो जलदाः ॥ २१ ॥ वारुणमर्णवसरिदाभि
 घ्नमतिवृष्टिदं विगतवैरम् । गोमर्दचेदिकुकुरान् किरातवेदेहकान् हन्ति ॥ २२ ॥
 पद्भिमर्षैः कम्पो द्वाभ्यां पाकं च याति निर्वातः । अन्यानप्युत्पातान् बहु
 रन्ये मण्डलैरेतैः ॥ २३ ॥ उल्का हरिश्चन्द्रपुरं रजश्च निर्वातभूकम्नकुम्प
 दाहाः । वातोऽतिचण्डो ग्रहणं रवीन्दोर्नक्षत्रतारागणवैरुतानि ॥ २४ ॥ व्ये
 वृष्टिर्वैकृतं वातवृष्टिर्भूमोजग्रेर्विस्फुलिङ्गार्चिषो वा । वन्यं सत्त्वं ग्राममध्ये विधे

पेसा है, चलते-हुए पर्वतकी समान रूपधारी, गंभीर शब्दकारी, ताडिपुक्त, वन
 में, भ्रमर और साँपकी समान काले मेघ जलको वर्षाते हैं। इन्द्रवर्गमें भूमिकम्प
 होनेसे समुद्र और नदियोंमें रहनेवाले राजा और गणपतियोंका विध्वंस होता है
 और अतिसार, गलग्रह, वदनरोग और वमनकोष होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥
 काशी, युगंधर, पौरव, किरात, कीर, अभिसार, हल, मद्र, अर्जुद, सुवास्तु और
 भालव देशमें पीडा होती है और अभिलाषाके अनुसार वर्षा होती है ॥ १९ ॥
 रेवती, पूर्वाषाढा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, उत्तराभाद्रपदा, शतभिषा ये सात नक्षत्र
 वरुणमण्डलके हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है नीला कमल, भ्रमर और अजयकी
 समान प्रतिफलित शुतिमान्, विजलीकरके उद्भासित देह बहुतसे बादल मधुर
 शब्द करते २ जलधारारूप अंकुरोंसे वर्षते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ इस वारुणमंडलमें
 भूमिकम्प हो तो समुद्र और नदियोंके आश्रयमें रहनेवालोंका नाश होता है; यह
 घृष्टिकारक, द्वेषहीन और गोमर्द, चेदी, कुकुर, किरात और विदेहवासियोंका नाश
 करता है ॥ २२ ॥ भूमिकंपका फल छः मासमें पकता है, निर्घातिका फल दो मासमें
 होता है; इन मंडलोंमें और उत्पात हों वेभी इन दो महीनोंमेंही फल देंगे ॥ २३ ॥
 उल्का, गंधर्वपुर, धूरि, उपद्रव, भूकंप, दिग्दाह, प्रचंडपवन और सूर्य चंद्रमा
 ग्रहण, नक्षत्र और तारोंके विकारके लिये कहा गया ॥ २४ ॥ विना बादलके वर्षा

रात्रावैन्द्रं कार्मुकं दृश्यते वा ॥ २५ ॥ सन्ध्याविकाराः परिवेपस्रण्डा नद्यः
प्रतीपा दिवि तूर्यनादाः । अन्यच्च यत्स्यात् प्रकृतः प्रतीपं तन्मण्डलेरेव फलं
निगाद्यम् ॥ २६ ॥ हन्त्येन्द्रो वायव्यं वायुश्चाप्येन्द्रमेवमन्योऽन्यम् । वारुण-
हौतभुजावपि वेलानक्षत्रजाः कम्पाः ॥ २७ ॥ प्रथितनरेश्वरमरणव्यसनान्या-
ग्रेयवायुमण्डल्योः । क्षुद्रपमरकावृष्टिभिरुताप्यन्ते जनाभ्यापि ॥ २८ ॥
वारुणपौरन्दरयोः सुमिक्षशिववृष्टिहार्दयो लोके । गावोऽतिहृरिपयसो निवृत्तवे-
राश्च भूपालाः ॥ २९ ॥ पक्षैश्चतुर्भिरनिलस्त्रिभिरेभिर्द्विराद् च सप्ताहाद् । सद्यः
फलति च वरुणो येषु न कालोऽद्भुतेपक्षः ॥ ३० ॥ चलयति पवनः शतद्वयं
शतमनलो दशयोजनान्वितम् । सलिलपतिरर्थातिसंयुतं कुलिशधरोऽप्यधिकं
च पष्टिकम् ॥ ३१ ॥ त्रिचतुर्थसप्तमदिने मासे पक्षे तथा त्रिपक्षे च । यादि
भवति भूमिकम्पः प्रधाननृपनाशनो भवति ॥ ३२ ॥

इति श्रीविराहमिहिरकृती बृहत्सं० भूमिकम्पलक्षणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

होना, विकार, अग्निकी चिनगारीदार लपट, पवनके साथ वर्षाका होना, भूम, घनेके
माणियोंका घ्राममें आना, रात्रिमें इन्द्रधनुषका दिखाई देना, संध्याका विकार, परि-
वेपस्रंड, नदियोंकी गतिकका विपरीत होना, आकाशमें तुरंदीका बजना, औरमी जो
कुछ संसारमें विपरीतता हो इस वर्गसेही उसका फल पढ़ा जाता है ॥ २५ ॥ २६ ॥
जो इन्द्रमंडल वायव्यमंडलकी निहत करे या वायव्यमंडल इन्द्रवर्गका नाश करे,
जो ऐसेही वारुण और आग्नेयमंडल परस्पर एक दूसरेको इनन करे तो उसको
वेलानक्षत्रजात कम्प कहते हैं ॥ २७ ॥ आग्नेय और वायव्यमंडलके परस्पर टक्-
रानेसे विख्यात राजाकी मृत्यु होती है या वह विपत्तिमें पड़ता है, और मनुष्य
शुभामय, मरी और वर्षाके न होनेसे सन्तापित होते हैं, वरुण और पौरन्दर मंड-
लके अभिषावसे सुमिक्ष, कल्याणी वर्षा और भीति होती है, गावें बहुतसा दूध
देने लगती हैं, राजा लोग आपसका बैर छोड़ देते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ अंग पट्टमन्त्र
आदि जिन उपद्रवोंके फलका समय नहीं कहा; उनके वायव्यमंडलमें होनेसे दो
मासके मध्यमें फल होता है, आग्नेय तीन पक्षमें, इन्द्रवर्ग सप्ताहके पीछे और
वरुणवर्ग शीघ्र फलवान् होता है ॥ ३० ॥ पवनवर्ग दो सप्त योजन, अनलवर्ग
एक सप्त दश योजन, वरुणवर्ग एक सप्त अस्ती योजन और इन्द्रवर्ग सप्त योज-
नसे कुछ अधिक भूमिको कंसायमान करता है ॥ ३१ ॥ भूमिकंपके बाद तीसरे,

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

उल्कालक्षण.

दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः । धिष्ण्योल्काश-
निविद्युत्तारा इति पञ्चधा भिन्नाः ॥ १ ॥ उल्का पक्षेण फलं तद्विष्णयाशनि-
भिः पक्षेः । विद्युदहोभिः पद्भिस्तद्वत्तारा विपाचयति ॥ २ ॥ तारा फलपा-
दकरी फलार्धदात्री प्रकीर्तिता धिष्ण्या । तिस्रः सम्पूर्णफला विद्युदथोल्काश-
निश्चेति ॥ ३ ॥ अशानिः स्वनेन महता नृगजाश्वमृगाशमवेश्मतरुपशुषु । निपति-
विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थाना ॥ ४ ॥ विद्युत्सत्त्वत्रासं जनयन्ती तदतदस्त्रा-
सहसा । कुटिलविशाला निपतति जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता ॥ ५ ॥ धिष्ण्या कृशा-
ल्पपुच्छा धनूपि दश दृश्यतेऽन्तराभ्यधिकम् । ज्वलिताङ्गारनिकाशा द्वौ हस्तौ
सा प्रमाणेन ॥ ६ ॥ तारा हस्तं दीर्घा शुक्ला ताम्राञ्जतन्तुरूपा वा । तिर्यग्धन्वोर्ध्व-
चौथे और सातवें दिनमें या महीनेमें वा पक्षमें अथवा तीन पक्षमें जो फिर भूमिकां
हो तौ मुख्यराजाका नाश होता है ॥ ३२ ॥

स्वर्गमें फल भोगे हुए पुरुषोंका गिरनेके समय जो रूप होता वही उल्का है-
धिष्ण्या, उल्का, अशानि, विजली और तारा यह पांच भाग उल्काके हैं ॥ १ ॥
उल्का १५ दिनमें वैसेही धिष्ण्या और अशानि तीन पक्षमें अर्थात् ४५ दिनमें
और तारा वा विजलीका फल छः दिनमें होता है ॥ २ ॥ तारा एक चौथाई
फलका करनेवाली है, धिष्ण्या आधे फलको देनेवाली और विजली, उल्का, वज्र
इन तीनोंका सम्पूर्ण फल होता है ॥ ३ ॥ अशानिका आकार चक्रकी समान है;
यह बड़े शब्दके साथ पृथ्वीको फाड़ती हुई मनुष्य, गज, अश्व, मृग, पत्थर, एवं
वृक्ष और पशुओंके ऊपर गिरती है ॥ ४ ॥ तड २ शब्द करती हुई विद्युत् अवा-
नक प्राणियोंको त्रास उपजाती हुई कुटिल और विशाल होकर जलती, हुई जीवोंके
ऊपर और ईधनके ढेरपर गिरती है ॥ ५ ॥ पतली, छोटी, पृच्छवाली धिष्ण्या
जलते हुए अंगारकी समान दश धनुषसे कुछ अधिक स्थानतक दिखाई देती है
इसका परिमाण दो हाथका है ॥ ६ ॥ तारा चाचा, कमल, ताररूप वा कुछ होती है;

भाषाटीकासाहेता अ० ३३ ।

या याति वियत्युत्तमानेव ॥ ७ ॥ उल्का शिरासि विशाला निपत
प्रतनुपुच्छा । दीर्घा भवति च पुरुषं भेदा बहवो भवन्त्यस्याः ॥ ८ ॥ मे
स्वरकरभनककपिदंष्ट्रेलाङ्गलमृगात्ताः । गोधाहिधूमरूपाः पापा या च
रक्ता ॥ ९ ॥ ध्वजज्ञपकरिगेरिकमलेन्दुतुरगसन्तमरजतहंसाभाः । श्रीव
शङ्खस्वास्तिकरूपाः शिवसुभेताः ॥ १० ॥ अम्बरमध्याद्वह्यो निप
राजराष्ट्रनाथाय । घनमती गगनोपरि विभ्रममाख्याति लोकस्य ॥ ११
संस्पृशती चन्द्रार्को तद्विस्तृता वा सन्नपकम्पा च । परचक्रागमनृपवधुर्
वृद्धिभयजननी ॥ १२ ॥ पीतेतरघ्नमुल्कापसव्यकरणं दिवाकरहिमाश्वे
उल्का शुभदा पुरनो दिशकरानिःसृता यातुः ॥ १३ ॥ शुक्रा रक्ता पीता क
चोल्का द्विजादिवर्णघ्नी । कमलशब्देतान् हन्युर्मूर्धोरिःपार्श्वपुच्छस्थाः ॥ १४
त्तरदिगादिपतिता विषादीनामनिष्टदा रूक्षा । कज्जी स्निग्धाखण्डा नीचोपगत
रक्ता विस्तार एक हाथ है, खोचते हुएकी समान आकाशमें तिरछी या आर्ध
१ हुई गमन करती है ॥ ७ ॥ प्रतनुपुच्छा विशाला उल्का गिरते २ बढ़ती है; परन्तु
की पूछ छोटी होती जाती है। इसकी दीर्घता पुरुषकी समान होती है, इसके
अनेक भेद हैं ॥ ८ ॥ कभी यह भेत, शख, स्वर, करभ, नाका, बन्दर, डाढ़वाले
जीव और मृगकी समान आकारवाली हो जाती है। कभी गौह सांप और धूमरूप
हो जाती है और कभी दो शिरके रूपवाली होती है। यह पापमयी है ॥ ९ ॥
कभी ध्वज, मत्स्य, हाथी, पर्वत, कमल, चन्द्रमा, अश्व, तपी हुई धूल और हंसकी
समान, कभी श्रीवत्स, वध, शंख और स्वास्तिक रूपसे प्रकाशित होती है परन्तु
इस सब कल्याण और भुमिक्षकारी है ॥ १० ॥ परन्तु अनेक प्रकारकी रूपवाली
रूपायें निरन्तर आकाशमें घूमते २ आकाशमेंसे गिरती हैं ॥ ११ ॥ चंद्र और
सूर्यके स्पर्श करके उनमेंसे गिरे अथवा भूमे कम्पयुक्त हो तो नगरपर पराये
रक्ता अधिकार होगा, नृपवध, दुर्भेद, अष्टाष्टि और भयकारी होती है ॥ १२ ॥
चंद्रमाके दाईं ओर उल्का गिरे तो वनवासियोंका नाश करता है। दिवाकरसे
गिरनेवाली हुई उल्का सन्मुख आवे तो गमनकारीकी शुभ है ॥ १३ ॥ शुक्र, रक्त,
पीत और काले रंगकी उल्का क्रमानुसार दिनातिवर्गोंका नाश करनेवाली है और
उसका मस्तुक, छाती, बगल और पूंछमें यह सब वर्ण स्थापित हों तोभी यह
क्रमानुसार ब्राह्मणादि चार वर्णोंकी नाश करनेवाली है ॥ १४ ॥ भद्रक्षिणाके
क्रमसे उच्चर आदि दिशाओंमें उल्का रूखे भावसे गिरे तो क्रमानुसार ब्राह्मण

च तद्बुद्धये ॥ १५ ॥ श्यामा वारुणनीलासृग्दहनासितभस्मनिष्ठा हस्ताः
 सन्ध्यादिनजा वक्रा दलिता च परागमभयाय ॥ १६ ॥ नक्षत्रग्रहघाते तदङ्गीर्ण
 क्षयाय निर्दिष्टा । उदये घ्नती रविन्दू पौरेतरमृत्यवेऽस्ते वा ॥ १७ ॥ ज्ञान्या-
 दित्यधनिष्ठा मूले पूल्काहतेषु युवतीनाम् । विप्रक्षत्रियपीडा पुष्पानिलविष्णु-
 देवेषु ॥ १८ ॥ ध्रुवसौम्येषु नृपाणामुग्रेषु सदा रूपेषु चौराणाम् । शिरेषु
 कलाविदुषां पीडा साधारणे च हते ॥ १९ ॥ कुर्वन्त्येताः पतिता देवतानाम्
 राजराष्ट्रभयम् । शक्रोपरि नृपतीनां गृहेषु तत्स्वामिनां पीडाम् ॥ २० ॥
 आशाग्रहोपघाते तद्देश्यानां खले कृपिरतानाम् । चैत्यतरो सम्पतिता सत्कृती
 करोत्युल्का ॥ २१ ॥ द्वारि पुरस्य पुरक्षयमथेन्द्रकीले जनक्षयोऽभिहितः

क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंका नाश करती है। सीधी, चिकनी, अखंड और आकाश
 नीचे भागमें जानेवाली हो तो उपरोक्त वर्णोंकी वृद्धि करती है ॥ १५ ॥ श्याम,
 अरुण, नील, रक्त, दहन, असित और भस्मकी समान रूखी संध्यासे उत्पन्न हुई
 दिनसे उत्पन्न हुई, टेढ़ी और दलित हुई उल्काका गिरना शत्रुके भयका कारण
 है ॥ १६ ॥ उल्कासे नक्षत्रघात या ग्रहघात हो तो पीछे कही हुई भक्तिकार्य ना
 होता है और तिस २ वस्तुका क्षय होता है, उदय या अस्तकालमें उल्का दृष्ट
 या चंद्रमाको हनन करे तो वनवासियोंका वध होता है ॥ १७ ॥ पूर्वाफाल्गुनी
 पुनर्वसु, धनिष्ठा और मूल नक्षत्रके योगतारेको उल्का हनन करे तो युवावियोंके
 पीडा होती है, और पुष्य, स्वाति व श्रवणको उल्का हत करे तो ब्राह्मण और
 क्षत्रियोंको पीडा होती है ॥ १८ ॥ रोहिणी, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, चित्रा, ज्येष्ठा
 राधा और रेवतीको उल्का पीडित करे तो राजाओंको पीडा होती है, तीनों पूर्वा
 भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्रको उल्का ताडन करे तो
 चोरोंको पीडा होती है, आश्विनी, पुष्य, अभिजित, कृत्तिका और विशाखाको
 उल्कासे भेद हो तो गीत नृत्य आदि कला जाननेवालोंको पीडा होती है ॥ १९ ॥
 देवताकी मूर्तिपर उल्का गिरे तो राजा और राज्यको भयदायक है। इन्द्रधनुष
 गिरे तो राजाओंको और घरमें गिरे तो गृहस्वामियोंको पीडा उत्पन्न करती है ॥ २० ॥
 दिशाके स्वामी गृहके ऊपर उल्का गिरे तो तिस दिशाके रहवासियोंका, सरोवरमें
 गिरनेसे किसानोंको, छोटे मंदिरके निकट वृक्ष लगा हो उसपर उल्का गिरे तो
 साधुओंको पीडा होती है ॥ २१ ॥ पुरद्वारपर उल्का गिरे तो पुरका क्षय, इन्द्रधनुष

बलापतने विमान् विनिहन्त्याद्रोमिनो गोष्ठे ॥ २२ ॥ क्ष्वेडास्फोटितवादितर्ग
त्कुटस्वना भवन्ति यदा । उत्कानिपातसमये भयाय राष्ट्रस्य सनृपस्य ॥ २३ ॥
यस्याभिरं तिष्ठति त्वेऽनुपद्मो दण्डाकृतिः सा नृपतेर्भयाय । या चो
तन्नुधृतेव स्वस्था या वा महेन्द्रध्वजतुल्यरूपा ॥ २४ ॥ भेठिनः प्रती
तिर्यगा नृपाङ्गनाः । हन्त्यधोमुखी नृपान् बालणानधोर्ध्वगा ॥ २५ ॥
वर्हिषुच्छहपिणी लोकसंक्षयावहा । सर्पवत् प्रसर्पिणी योपितामनिष्ठदा ॥ २६ ॥
हन्ति मण्डला पुरं छत्रवत् पुरोहितम् । वंशयुल्मवत् स्थिता राष्ट्रदोषक
रिणी ॥ २७ ॥ व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी । खण्डशोऽथवा गत
सस्वना च पापदा ॥ २८ ॥ सुरपतिचापप्रतिमा राज्यं नभासि विलीना जलदान
हन्ति । पवनविलोमा कुटिलं याता न भवति यस्ता विनिवृत्ता वा ॥ २९ ॥

उके ऊपर गिरे तो मनुष्योंका क्षय कहा है, मल्लाके मंदिरपर गिरे तो ब्राह्मणोंको
और गोठमें गिरे तो बहुतसे गोसम्पन्न मनुष्योंको हनन करती है ॥ २२ ॥ जो
उल्का गिरनेके समय क्षेड (समरके समय वीरका सिंहनाद करना), आस्फोटित,
वादित गीत और रोनेका ऊँचा शब्द हो तो नृत्ययुक्त राज्यको भय होता है
॥ २३ ॥ जिसका आकार दंडके आकारकी समान होकर आकाशमें बहुत
रतक रहे वह उल्का राजाओंके भयका कारण होती है और जो आकाशमें उहर-
र डोरीसे बंधी हुईकी समान प्रवादित या इन्द्रकी ध्वजाके समान हो तो
नाको भयदायी है ॥ २४ ॥ जो उल्का विपरीत चले अर्थात् जहाँसे निकली हो
वहाँको फिर लौट चले तो शेरलोगोंको भय करती है, टेढ़ी चलनेवाली उल्का रानि-
योंका, नीचेकी मुखवाली उल्का राजाओंका और ऊपरको चलनेवाली उल्का ब्राह्म-
णोंका नाश करती है ॥ २५ ॥ मोरपूँछके समान आकारवाली उल्का लोकक्षय-
कारी और सर्पकी समान चलनेवाली उल्का स्त्रियोंका अनभय करती है ॥ २६ ॥
मंडलरूपवाली उल्का नगरको, छत्ररूप उल्का पुरोहितको नाश करती है और
बांसकी बीटके समान उल्का देशमें दोष उत्पन्न करती है ॥ २७ ॥ व्याल (कछे
साँप) और सूकरकी समान आकारयुक्त वा चिनगारीदार अथवा पिण्डाकार या
शब्दसहित उल्का चले तो पापदायिनी है ॥ २८ ॥ इन्द्रधनुषकी समान होवे तो
राज्यका नाश करे, आकाशमें लीन हो जाय तो बादलोंका नाश करे और पवनकी
प्रतिकूल दिशामें कुटिलभावसे गमन करे और फिर लौट आवे तो शुभदायी नहीं

च तदृद्धये ॥ १५ ॥ श्यामा वारुणनीलासृग्दहनासितभस्मनिष्ठा रुक्मा ।
 सन्ध्यादिनजा वक्रा दलिता च परागमभयाय ॥ १६ ॥ नक्षत्रग्रहघाते तद्रक्षणां
 क्षयाय निर्विघ्ना । उदये घ्नती रवीन्दू पीतेरमृत्यवेऽस्ते वा ॥ १७ ॥ साग्या-
 दित्यधनिष्ठामूलपूल्काहतेषु युवतीनाम् । विप्रक्षान्त्रियपीडा पुष्यानिलविष्णु-
 देवेषु ॥ १८ ॥ ध्रुवसौम्येषु नृपाणामुग्रेषु सदारुणेषु चौराणाम् । क्षिरेऽ
 कलाविदुषां पीडा साधारणे च हते ॥ १९ ॥ कुर्वन्त्येताः पतिता देवपतिमान्
 राजराष्ट्रभयम् । शक्रोपरि नृपतीनां गृहेषु तत्स्वामिनां पीडाम् ॥ २० ॥
 आशामहोपघाते तद्देश्यानां खले कृपिरतानाम् । चैत्यतरौ सम्पतिता सत्त्वतीर्णा
 करोत्युल्का ॥ २१ ॥ द्वारे पुरस्य पुरक्षयमथेन्द्रकीले जनक्षयोऽभिहितः

क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंका नाश करती है। सीधी, चिकनी, अखंड और आकाशसे
 नीचे भागमें जानेवाली हो तौ उपरोक्त वर्णोंकी वृद्धि करती है ॥ १५ ॥ श्याम,
 अरुण, नील, रक्त, दहन, असित और भस्मकी समान रङ्गी संध्यासे उत्पन्न हुई,
 दिनसे उत्पन्न हुई, टेढ़ी और दलित हुई उल्काका गिरना शत्रुके भयका कारण
 है ॥ १६ ॥ उल्कासे नक्षत्रघात या ग्रहघात हो तौ पीछे कही हुई मत्तिका नाश
 होता है और तिस २ वस्तुका क्षय होता है, उदय या अस्तकालमें उल्का ध्रुव
 या चंद्रमाको हनन करे तौ वनवासियोंका वध होता है ॥ १७ ॥ पूर्वाफाल्गुनी,
 पुनर्वसु, धनिष्ठा और मूल नक्षत्रके योगवारेको उल्का हनन करे तौ युवतिपोंके
 पीडा होती है, और पुष्य, स्वाति व श्रवणको उल्का हत करे तौ ब्राह्मण और
 क्षत्रियोंको पीडा होती है ॥ १८ ॥ रोहिणी, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, चित्रा, अशु-
 राधा और रेवतीको उल्का पीडित करे तौ राजाओंको पीडा होती है, तीनों पूर्वा-
 भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्रको उल्का ताडन करे तौ
 चोरोंको पीडा होती है, आश्विनी, पुष्य, अभिजित्, कृत्तिका और विशाखको
 उल्कासे भेद हो तौ गाँव नृत्य आदि कला जाननेवालोंको पीडा होती है ॥ १९ ॥
 देवताकी मूर्तिपर उल्का गिरे तौ राजा और राज्यको भयदायक है। इन्द्रधनुष
 गिरे तौ राजाओंको और घरमें गिरे तौ गृहस्वामियोंको पीडा उत्पन्न करती है ॥ २० ॥
 दिशाके स्वामी गृहके ऊपर उल्का गिरे तौ तिस दिशाके रहवासियोंका, खरीदाने
 गिरनेसे किसानोंको, छोटे मंदिरके निकट वृक्ष लगा हो उसपर उल्का गिरे तौ
 साधुओंको पीडा होती है ॥ २१ ॥ पुरदारपर उल्का गिरे तौ पुरका क्षय, इन्द्र

ब्रह्मायतने विमान् विनिहन्त्याद्रोमिनो गोष्ठे ॥ २२ ॥ स्वेडास्फोटितवादितगीतो-
त्कुलस्त्वना भवन्ति यदा । उल्कानिपातसमये धयाय राष्ट्रस्य सनृपस्य ॥ २३ ॥
यस्याभिरं तिष्ठति त्वेऽनुपद्भो दण्डाकृतिः सा नृपतेर्मयाय । या चोत्सते
तन्तुभूतेष्व सस्था या वा महेन्द्रध्वजतुल्यरूपा ॥ २४ ॥ श्रेष्ठिनः प्रतीपगा
तिर्षगा नृपाङ्गनाः । हन्त्यधोमुक्ती नृपान् ब्राह्मणानथोर्ध्वगा ॥ २५ ॥
वर्हिषुच्छरूपिणी लोकसंक्षयावहा । सर्पवत् प्रसर्पिणी घोषितामनिष्टदा ॥ २६ ॥
हन्ति मण्डला पुरं छत्रवत् पुरोहितम् । वंशसुन्मवत् स्थिता राष्ट्रशोपका-
रिणी ॥ २७ ॥ व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी । खण्डशोऽथवा गता
सस्वना च पापदा ॥ २८ ॥ सुरपतिचापप्रतिमा राज्यं नभासि विलीना जलदान्
हन्ति । पद्मविलोमा कुटिलं याता न भवति शस्ता चिनिवृत्ता वा ॥ २९ ॥

छके ऊपर गिरे तो मनुष्योंका क्षय कहा है, मण्डाके मंदिरपर गिरे तो ब्राह्मणोंको
और गोठमें गिरे तो बहुतसे गोसम्पन्न मनुष्योंको इनन करती है ॥ २२ ॥ जो
उल्का गिरनेके समय स्वेड (समरके समय वीरका सिंहनाद करना), आस्फोटित,
वादित गीत और रोनेका ऊंचा शब्द हो तो नृत्पयुक्त राज्यको भय होता है
॥ २३ ॥ जिसका आकार दंडके आकारकी समान होकर आकाशमें बहुत
देरतक रहे वह उल्का राजाओंके भयका कारण होती है और जो आकाशमें ठहर-
कर डींधरे बंधी हुईकी समान प्रवादित या इन्द्रकी ध्वजाके समान हो तो
राजाको भयदायी है ॥ २४ ॥ जो उल्का विपरीत चले अर्थात् जहांसे निकली हो
वहींको फिर लौट चले तो शूठलोगोंको भय करती है, देदी चलनेवाली उल्का रानि-
पोंका, नीचेकी मुखवाली उल्का राजाओंका और ऊपरको चलनेवाली उल्का ब्राह्म-
णोंका नाश करती है ॥ २५ ॥ मोरपूंछके समान आकारवाली उल्का लोकक्षय-
करी और सर्पकी समान चलनेवाली उल्का स्त्रियोंका अनभल करती है ॥ २६ ॥
मंडलरूपवाली उल्का नगरको, छत्ररूप उल्का पुरोहितको नाश करती है और
बांसकी पीठके समान उल्का देशमें दोष उत्पन्न करती है ॥ २७ ॥ व्याल
सांप) और सूकरकी समान आकारयुक्त वा चिनमाहीदार अथवा
शब्दसहित उल्का चले तो पापदायिनी है ॥ २८ ॥ इन्द्रधनुषकी
राज्यका नाश करे, आकाश में हो जाय तो बादलोंका नाश
प्रतिकूल दिशामें ऊँचे और फिर लौट

अभिभवति यतः पुरं बलं वा भवति भयं तत एव पार्थिवस्य । निपतिः
यथा दिशा प्रदीप्ता जयति रिपूनचिरात्तया प्रयातः ॥ ३० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुत्कालक्षणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

परिवेपलक्षण.

सम्पूर्णिता रवीन्द्रोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः । नानावर्णास्तस्य
न्वभे व्योम्नि परिवेपाः ॥ १ ॥ ते रक्तनीलपाण्डुरकापोताभामशबलहरिशुक्लाः ।
इन्द्रयमवरुणनिर्ऋतिश्वसनशपितामहाग्निकृताः ॥ २ ॥ धनदः करोति मेघक
मन्योऽन्यगुणाश्रयेण चाप्यन्ये । प्रविलीयते सुदुर्मुहुरत्यफलः सोऽपि बाध
कृतः ॥ ३ ॥ चापशिखिरजततैलक्षीरजलाभः स्वकालसम्भूतः । अविकलवृक्ष
स्निग्धः परिवेपः शिवसुभिक्षकरः ॥ ४ ॥ सकलगमनानुचारी नैकाभः क्षनज-

है ॥ २९ ॥ जिस ओरसे उल्का आकर पुर या सेनाके ऊपर गिरे उस दिशासे
राजाको भय होता है और जिस दिशामें प्रकाश करके गिरे राजा उस दिशामें
जाय तौ शीघ्र शत्रुओंको जीतनेके लिये समर्थ होता है ॥ ३० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयसुरादावादा-
स्तव्य-पंडितवलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

सूर्य या चंद्रमाके किरण पर्वतके ऊपर प्रतिबिम्बित और पवनके द्वारा
मंडलाकार होकर थोड़ेसे मेघवाले आकाशमें अनेक रंग और आकारके
दिखलाई देते हैं उनको परिवेप कहते हैं ॥ १ ॥ रक्त, नील, थोड़ा
श्वेत, कबूतरके रंगका, मेघके रंगका, शबल (अनेक प्रकारके रंगोंसे युक्त),
हरिद्वर्ण और शुक्लवर्णके परिवेप क्रमानुसार इन्द्र, यम, वरुण, निर्ऋति, बल,
महादेव, ब्रह्मा और अग्निसे उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ धनदाता कुबेरजी काले रंगका
परिवेप करते हैं और परस्पर गुण आश्रयके हेतु जो बारंबार लीन होता है वर
अल्प फल देनेवाला परिवेप वायुका है ॥ ३ ॥ जो परिवेप नीलकंठ, मोर चांदी,
तेल, दूध और जलकी समान आभावाला हो, स्वकालसम्भूत हो जिसका वृक्ष
खंडित न हो, जो स्निग्ध हो वह सुभिक्ष और मंगलका करनेवाला है ॥ ४ ॥ जो
परिवेप सारे आकाशमें गमन करे, अनेक आभादार हो, रुधिरकी समान हो, रुद्र,

निधो रुतः । असकलशकटशरासनशृङ्गाटकवत् स्थितः पापः ॥ ५ ॥ शिखि-
गलसमेऽतिवर्षं बहुवर्णं नृपवधो भयं धूम्रे । हरिचापनिभे युञ्जान्यशोककुमु-
धमे चानि ॥ ६ ॥ वर्णनेकेन यदा बहुलः स्निग्धः क्षुराभकाकीर्णः । स्वर्तो
सद्यो वर्षं करोति पीतम् दीमार्कः ॥ ७ ॥ दीमविहङ्गमृगरुतः कलुषः सन्ध्या-
त्रयोत्थितोऽतिमहान् । भयलुत्तडिदुल्कायैर्हतो नृपं हन्ति शस्त्रेण ॥ ८ ॥
प्रतिदिनमर्कहिमांशोरहर्निशं रक्तयोनिरेन्द्रवधः । परिवेषिषोरभीक्ष्णं लग्नास्तनभः-
स्थयोस्तद्वत् ॥ ९ ॥ सेनापतेर्भयकरो द्विमण्डलो नातिशयकोपकरः । त्रिप्रभृति
शस्त्रकोपं युवराजभयं नगररोधम् ॥ १० ॥ वृष्टिद्वयेण मासेन विग्रहो वा
ग्रहेन्दुभनिरोधे । होराजन्माभिनयोर्जन्मर्क्षे वाशुभो रात्रः ॥ ११ ॥ परिवेषम-
ण्डलगतो रात्रिनयः क्षुद्रधान्यनाथकरः । जनयति च वातवृष्टिं स्थावरकृपिक-

खंडित छकडेकी समान, धनुष और शृङ्गाटकी समान हो सो पापकारी है ॥ ५ ॥
मोरकी गर्दनकी समान परिवेष हो तो अतिवर्षा होती है, बहुतसे रंगासे युक्त हो
तो राजाका वध होता है, धूमवर्ण होनेसे भय होता है, इन्द्रधनुषके समान या
अशोकके फूलकी समान कान्तिमान होनेसे युद्ध होता है ॥ ६ ॥ जिस ऋतुमें
परिवेष एक वर्णके मेलसे बहुत चिकना, उस्तरेकी समान छोटे २ मेघोंसे व्याप्त हो
॥ सूर्यकी किरणें पीले वर्णकी हों उस समय शीघ्र वृष्टि होती है ॥ ७ ॥ सूर्यकी
ओरको मुख करके पक्षी और मृगोंके शब्दसाहित त्रिकलके शब्दसाहित त्रिकलकी
सन्ध्यामें उत्पन्न हुअ, अतिमहान् परिवेष भयंकर होता है, परन्तु जो यह उत्क्र
या विजली करके भेदित हो तो शस्त्रसे राजाकी मृत्यु होती ॥ ८ ॥ प्रति दिन रात
सूर्य चन्द्रमाका परिवेष रक्तवर्ण हो तो राजाका वध होता है और उदयकाल,
अस्तकाल, दिनरातके मध्यकालमें सूर्य चन्द्रमाको एक दिनमें यदि अधिक परिवेष
हो तोभी वही फल अर्थात् राजाका वध होता है ॥ ९ ॥ दो मंडलवाला परिवेष
सेनापतिको भयकारी है, परन्तु अत्यन्त शस्त्रकोपकारी नहीं है, तीन मंडलवाला या
अधिक मंडलवाला परिवेष शस्त्रकोप, युवराजभय और नगररोधका कारण होता
है ॥ १० ॥ भौमादि कोई ग्रह, चन्द्रमा, नक्षत्र यदि एक परिवेषमें हों तो तीन
दिनमें वर्षा या एक मासमें युद्ध होता है, होरा और लग्नाधिपति वा जन्मनक्षत्रका
परिवेष हो तो राजाका अशुभ होता है ॥ ११ ॥ जो शनि परिवेषमंडलमें हो तो
छोटे धान्यको नष्ट करता है और स्थावर वा किसानोंका इननकारी होकर पवनयुक्त

निहन्ता च ॥ १२ ॥ मौमे कुमारबलपतिसैन्यानां विद्रवोऽग्निशस्त्रतन्म
जीवे परिवेषणते पुरोहितामात्यनृपपीडा ॥ १३ ॥ मन्त्रिस्थावरलेखकारि-
द्धिश्चन्द्रजे सुवृष्टिश्च । शुके यापिक्षत्रियराज्ञां पीडाप्रियं चान्नम् ॥ १४ ॥
क्षुदनलमृत्युनराधिपशस्त्रेभ्यो जायते भयं केतौ । परिविष्टे गर्भमयं राहौ व्याधि-
नृपमयं च ॥ १५ ॥ युद्धानि विजानीयात् परिवेषाम्बन्तरे द्वयोर्ग्रहयोः । ति-
सकृतः शशिनो वा क्षुद्वृष्टिभयं त्रिषु प्रोक्तम् ॥ १६ ॥ याति चतुर्षु नरेन्द्र-
सामात्यपुरोहितो वशं मृत्योः । प्रलयमिव विद्धि जगतः पञ्चादिषु मण्डल-
स्थेषु ॥ १७ ॥ ताराग्रहस्य कुर्यात् पृथगेव समुत्थितो नरेन्द्रवधम् । नक्षत्र-
णामथवा यदि केतोर्नोदयो भवति ॥ १८ ॥ विप्रक्षत्रियविद्वद्ब्रह्मा भवेत् प्र-
पदादिषु क्रमशः । श्रेणीपुरकोशानां पञ्चम्यादिष्वशुभकारी ॥ १९ ॥ युवराज-
स्याष्टम्यां परतसिषु पार्थिवस्य दोषकरः । पुररोधो द्वादश्यां सैन्यक्षोभप्रयो-

वृष्टिको उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥ मङ्गल परिवेषमें हो तो कुमार, सेनापति और
सेनाको व्याकुलता होय और अग्नि व शस्त्रका भय हो व बृहस्पति परिवेषमें हो
तो पुरोहित, मंत्री आर राजाओंको पीडा होती है ॥ १३ ॥ बुध परिवेषमें हो तो
मंत्री, स्थावर और लेखकलोगोंकी वृद्धि और अच्छा वर्षा होती है. परिवेषमें शुक्र हो
तो चन्द्रक जानेवाले राजा, क्षत्री राजाको पीडा और दुर्भिक्ष होता है ॥ १४ ॥
केतु परिवेषमें हो तो धुधा, अनल, मृत्यु, राजा और शस्त्रसे मय उत्पन्न होता है.
राहु परिवेषमें हो तो गर्भमय, व्याधि और राजमय होता है ॥ १५ ॥ रवि, चन्द्रके
परिवेषके भीतर दो ग्रहोंके होनेसे युद्ध होता है. तीन ग्रह जो परिवेषमें हो तो
दुर्भिक्ष और वर्षा न होनेका मय होता है ॥ १६ ॥ परिवेषमें चार ग्रह हो तो
मंत्री और पुरोहितके साथ राजाकी मृत्यु हो जाय, पंचादि ग्रह मंडलमें हो तो
जगत्में मानो मण्डल हो जाय ॥ १७ ॥ ताराग्रह अर्थात् मङ्गलादि पंचग्रह मय
नक्षत्रमय यदि मंडल २ परिवेषमें हो तो राजाका वध हुआ करता है यदि मंडल
उदय न हो केतुदय होनेसे उसीका फल होता है ताराग्रहादिकल नहीं होता
है ॥ १८ ॥ प्रविष्टासे लेकर चौवनक तिथिमें परिवेष हो तो क्रमानुसार ब्रह्म
क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंका नाश हो जाता है. पंचमीसे लेकर सातवक तिथिमें
श्रेष्ठ, पुर और क्षीयका अशुभकारी होता है ॥ १९ ॥ अष्टमीमें परिवेष हो तो
उत्पन्न हो और निम्नके पीडे तीन तिथिमें परिवेष होनेसे राजाका नाश होता है

दश्याम् ॥ २० ॥ नरपतिपत्नीपीडां परिवेषोऽप्युत्थितश्चतुर्दश्याम् । कुर्यात्
तु पञ्चदश्यां पीडां मनुजाधिपस्यैव ॥ २१ ॥ नागरकाणामभ्यन्तरास्थिता
यायिनां च बाह्यस्था । परिवेषमध्यरेस्ता विज्ञेयाक्रन्दसारणाम् ॥ २२ ॥
रक्तः श्यामो रक्तश्च भवति येषां पराजयस्तेषाम् । स्निग्धः श्वेतो द्युतिमान्
येषां भागो जयस्तेषाम् ॥ २३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० परिवेषलक्षणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अथ पंचत्रिंशोऽध्यायः ।

इन्द्रायुधलक्षण.

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघटिताः कराः साधे । विपति धनुसंस्थाना
ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ॥ १ ॥ केचिदनन्तकुलोत्पत्तिः श्वासोद्भूतमादुराचार्याः ।
तद्यायिनां नृपाणामभिसुखमजयावहं भवति ॥ २ ॥ अस्त्रिजमवनिगाढं द्युति-
द्वादशीमें परिवेष होनेसे पुरका रोध हो जाता है और त्रयोदशीमें होनेसे शस्त्रका
क्षोभ होता है ॥ २० ॥ चतुर्दशीमें परिवेष होनेसे रानीको पीडा होती है. पंचद-
शीमें राजाको पीडा होती है ॥ २१ ॥ जो परिवेषके भीतर रेखा दिखाई दे ती नग-
रवासियोंको पीडा होती है; परिवेषके बाहर रेखा हो ती चढ जानेवाले राजाओंको
पीडा होती है; परिवेषके बीचमें हो ती आक्रन्दसारका शुभाशुभ विचारे ॥ २२ ॥
महभक्ति या पूर्वविभागके अनुसार देशका विभाग करनेसे जिस देशके भागमें
परिवेषका रंग लाल श्याम या कृष्ण हो उस देशकी पराजय होगी. स्निग्ध, श्वेत-
वर्ण या दीप्तिशाली परिवेष जिनके भागमें गिरे उनकी जय होगी ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अनेक रंगवाले सूर्यके किरण पवनसे रोके जाकर मेघयुक्त आकाशमें जो धनु-
षका आकार दिखाई देता है वही इन्द्रधनुष है ॥ १ ॥ कोई २ आचार्य कहते
हैं कि, अनन्तनामक कुलनागके श्वाससे यह उत्पन्न होता है; जो राजाओंके इस
इन्द्रधनुषके सन्मुख रखकर जाय तो युद्धमें उनकी पराजय होती है ॥ २ ॥ वह
असंखित भूमेमें लगा हुआ, मकराक्षर, चिकना, निविड, अनेक रंगोंसे युक्त और

अस्तिगन्धं धनं विविधवर्णम् । द्विरुदितमनुलोमं च प्रशस्तमग्निः ययत् ॥ ३ ॥ विदिगुह्यतं दिक्स्वामिनाशनं व्यञ्जजं मरककारि । पाटलीत
शस्त्राग्निक्षुत्कृता दोषाः ॥ ४ ॥ जलमध्येऽनावृष्टिर्भुवि सत्यवधस्तौ
व्याधिः । वल्मीके शस्त्रभयं निशि सचिववधाय धनुरेन्द्रम् ॥ ५ ॥
करोत्यवृष्ट्यां वृष्टिं वृष्ट्यां निवारयत्यन्द्रचाम् । पश्चात्सदैव वृष्टिं कुलिश
यमाचष्टे ॥ ६ ॥ चापं मधोनः कुरुते निशायामाखण्डलायां दिशि भूपा
यान्यापरोदकप्रभवं निहन्यात्सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च ॥ ७ ॥
सुरचापं सितवर्णाद्यं जनयति पीडां द्विजपूर्वाणाम् । भवति च यस्यां
तद्देश्यं नरपतिमुख्यं न चिराद्धन्यात् ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० मिन्द्रायुधलक्षणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

दोनों वार उदित व अनुलोम होनेपर श्रेष्ठ है और बहुतसा जल वर्षाता है ॥
ईशान, अग्नि, नैऋत और वायु इन चारों कोनोंमें जो इन्द्रधनुष उदय
संस्थानके राजाका नाश होता है। विना मेघके आकाशमें इन्द्रधनुष हो तो
पडती है । पाटलके फूल, पीले और नीले रंगका हो तो शस्त्र, अग्नि और
क्षादि दोष उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥ जलमें इन्द्रधनुष हो तो अनावृष्टि, पृथ
होनेसे धान्यकी हानि, वृक्षपर होनेसे व्याधि और वल्मीक (बमई) पर
शस्त्रमय और रात्रिमें होनेसे मंत्रीके वधका कारण होता है ॥ ५ ॥ जो अ
ष्टिके समय इन्द्रधनुष पूर्वदिशामें हो तो जल वर्षता है; वर्षनेके समय पूर्वदिश
हो तो वृष्टिको रोकता है । पश्चिममें इन्द्रधनुष हो तो सदाही वर्षा होती है ॥
पूर्वदिशामें रात्रिकालके समय इन्द्रधनुष हो तो राजाओंको पीडित करता है
दक्षिण, पश्चिम और उत्तरदिशासे उत्पन्न हुआ इन्द्रधनुष सेनापति, नायक
मंत्रीका नाश करता है ॥ ७ ॥ रात्रिके समय इन्द्रधनुष श्वेत वर्णादि अर्थात्
रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण हो तो क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और
शूद्रका नाश करता है; परन्तु जिस दिशामें होय उसी दिशाओंके राजाओंके
शत्रु नाश होगा ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुद्राकादिक
स्त्वय्य-पंडितवडदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचात्रिंशोऽध्यायः ॥

निष्पत्तिरस्ति महती पश्चात् परचक्रोपपन्नम् ॥ ७ ॥ मध्ये पापग्रहयोः सूर्यः
 सस्यं विनाशयत्यल्लिङ्गः । पापः सप्तमराशौ जातं जातं विनाशयति ॥ ८ ॥
 अर्थस्थाने क्रूरः सौम्यैरनिरोक्षितः प्रथमजातम् । सस्यं निहन्ति पश्चात्
 निष्पादयेद्व्यक्तम् ॥ ९ ॥ जामित्रकेन्द्रसंस्थौ क्रूरो सूर्यस्य वृश्चिकस्य
 सस्यविपत्तिं कुरुतः सौम्यैर्दृष्टौ न सर्वत्र ॥ १० ॥ वृश्चिकसंस्थादर्कात् तन्म-
 पठोपगौ यदा क्रूरो । भवति तदा निष्पत्तिः सस्यानामवपरिहानिः ॥ ११ ॥
 विधिगानेनैव रविर्वृषप्रवेशे शरत्समुत्थानाम् । विज्ञेयः सस्यानां नाशाय शिवार-
 वा तज्ज्ञैः ॥ १२ ॥ त्रिषु मेपादिषु सूर्यः सौम्ययुतो वीक्षितोऽपि वा विचरन् ।
 ग्रीष्मिकधान्यं कुरुते समर्थमुत्तमयोग्यं च ॥ १३ ॥ कार्मुकमृगयद्वत्स-
 शारदस्य तद्वदेव रविः । सङ्ग्रहकाले ज्ञेयो विपर्ययः क्रूरग्रहयोगात् ॥ १४ ॥
 इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० सस्यजातकं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

राशिमें गमन करे उस समय जो कुंभमें बृहस्पति, वृषमें चन्द्रमा और मंगल व कृति
 यदि मकरराशिमें हों तो अन्न भली भांतिसे होता है, परन्तु पीछेसे परचक्र और
 रोगका भय हुआ करता है ॥ ७ ॥ जो सूर्य वृश्चिकराशिमें दो पापग्रहोंके बीचमें
 हो तो धान्यका नाश करता है, इस समय वृषराशिमें स्थित हो तो पैदा होनेसे
 अन्नका नाश कर देता है ॥ ८ ॥ उसके अर्थस्थानमें स्थित क्रूर ग्रह शुभ ग्रहसे न
 देखा जाय तो पहिली चोई हुई खेतीका नाश करता है; परन्तु पाँछेसी चोई हुई
 खेती भली भांतिसे उपजती है ॥ ९ ॥ वृश्चिक राशिमें स्थित सूर्यसे सातवीं राशि
 मेंके या केन्द्रस्थित और क्रूर ग्रह खेतीका नाश करते हैं; परन्तु उनको शुभ ग्रह
 देसना हो तो सब जगहके धान्यका नाश नहीं कर सकते ॥ १० ॥ जब दो ही
 ग्रह वृश्चिकराशिमें स्थित सूर्यसे सातवें और छठे हों तो खेती होती है; परन्तु पूरा
 महंगा रहता है ॥ ११ ॥ वृषराशिमें सूर्यके प्रवेश करनेसे उत्पन्न हुए धान्यके
 नाशका या मंगलका कारणभी होता है ऐसा पाँडितोंको कहना चाहिये ॥ १२ ॥
 मेपादि तीन राशियोंमें स्थित सूर्य शुभ ग्रह करके युक्त हो या शुभ ग्रहसे देखा
 जाय तो ग्रीष्मकी खेती समर्थ हो और इतना सस्ता अन्न रहे कि आदमी खेती
 परछोछ दोनों बना छे (परछोछ बनानेके छिये अन्नदान करें) ॥ १३ ॥ ५१,
 मध्य और कुंभराशिमें स्थित सूर्य शरत्कालमें उत्पन्न हुई खेतीकीभी वैसी ही

थिकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

द्रव्यनिश्चयः ।

नभिरतपो राशयः समुद्दिष्टाः । मुनिभिः शुभाशुभार्थ
 ॥ १ ॥ पञ्चाधिककुतुषानां ममूरगोष्मसालक्यवा-
 शीनां कवकस्य च कीर्तितो मेघः ॥ २ ॥ गवि पद्मकुसु-
 सुराभितनयाः स्युः । मिथुनेऽपि धान्यगारदवर्षीणात्क-
 र्कणि कोद्रवकदलीर्द्वाफलकन्दपत्रचोचानि । सिंहे
 नां स्वचः सगुहाः ॥ ४ ॥ पठेऽनर्त्ताकलापाः कुलस्यगो-
 पसाली माषा गोधूमाः सर्पं वा सयवाः ॥ ५ ॥ भटम-
 हान्यजाविकं चारि । नभे तु तुरगलगाभ्यराधानिल-

ह और अजसरे खंडकालमें कूर मइकी दृष्टि और योगसे इसका उलटा फल होता है यही जानना चाहिये ॥ १४ ॥

इति श्रीराक्षसिदिशचार्यविशितायां पृथ्वीसंहितायां पद्मिनीधरदेशिनिपुणराजोद्धारक-
 व्य-संहितपठदेशमताश्चिन्तयितव्यतायां भाषाटीकया चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

नित २ राक्षसी निज द्रव्योंका स्वामी मुनिजोगोंने कहा है, शुभ और अशुभ जाननेके लिये आगमने उनका विषय कहा जाता है ॥ १ ॥ मेघराशि वृश्च, मेषके दोमने पने कम्बुज, पक्षीको ऊरने पने कम्बुज, मयूर, गेहूँ, राख (गुराँको गोई), नी, स्यउरी उरनी दुई ओषधिये और गुराँकी स्वामिनी कही जानी है ॥ २ ॥ राख, कुतुन, गेहूँ, गाँउ धान्य, जौ, महुष और गाँव इनकी स्वामिनी वृश्चाल है धान्य और गुराँके उत्तरज दुपपक्षय, लडा, कनल कुमकुमादिभी जइ और वाराच पद मिथुनके अश्विन हैं ॥ ३ ॥ करंमे पक्षी, केडा, दूब, फल, पत्र और पाउरी स्वामिनी है सिंहेके अयिराखमें, भुस्ती, धान्य, रस, दुध और सिंहादिके घने हैं ॥ ४ ॥ कन्याराशिमें भटली, मयूर, कुतुबी, गेहूँ, रंग निपान (मयूर) हैं, तुडा राशिमें उई, गेहूँ सराँ और जी दिपकान हैं ॥ ५ ॥ ईस, शिरस्य द्रव्य (ईसमें पानी देवते ओ बरु उत्पन्न होती है), छेरा, मेद, पक्षीका स्वामी शुक्र है ।

धान्यमूलानि ॥ ६ ॥ मकरे तरुगुल्माद्यं सैक्येशुसुवर्णकृष्णलोहानि । कुम्भे
 सलिलजफलकुसुमरजचित्राणि रूपाणि ॥ ७ ॥ मीने कपालसम्भवतान्य-
 म्बूद्धवानि वज्राणि । स्नेहाश्च नैकरूपा व्याख्याता मत्स्यजातं च ॥ ८ ॥ राधे-
 श्वतुर्दशार्यायसप्तनवपञ्चमस्थितो जीवः । व्येकादशदशपञ्चाष्टमेषु राशिजम्ब
 वृद्धिकरः ॥ ९ ॥ षट्सप्तमगो हानिं वृद्धिं शुक्रः करोति शेषेषु । उपचय-
 संस्थाः क्रूराः शुभदाः शेषेषु हानिकराः ॥ १० ॥ राधेयस्य क्रूराः पीडास्थानेषु
 संस्थिता बलिनः । तत्प्रोक्तद्रव्याणां महार्घता दुर्लभत्वं च ॥ ११ ॥ इदस्याने
 सौम्या बलिनो येषां भवन्ति राशीनाम् । तद्द्रव्याणां वृद्धिः सामर्थ्यमदुर्लभत्वं
 च ॥ १२ ॥ गोचरपीडायामपि राशिचलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः । पीडां न करोति
 तथा क्रूरेरेवं विपर्यासः ॥ १३ ॥

इति वराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां द्रव्यनिश्चयो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१

अम्बर, अस्त्र, तिल, धान्य और मूल धनराशिमें विराजमान है ॥ ६ ॥ मकरमें
 वृक्ष गुल्मादि और सौचनेसे जो वस्तु उत्पन्न होती है, ईख, सुवर्ण और कल
 लोहा है। कुम्भमें जलसे उत्पन्न हुए फल, फूल, रत्न और चित्रविचित्र रूप-
 वाले वर्तमान हैं ॥ ७ ॥ कपालसम्भव रत्न (हाथीके शिरसे निकली मणि या
 नागके शिरसे निकली मणि), जलसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ, अनेक रूपवाले,
 स्नेह द्रव्य और मछलियां मीनराशिके अधीन हैं ॥ ८ ॥ जिस राशिके दूते
 चौथे, पांचवें, सातवें, नववें, दशवें या ग्यारहवें स्थानमें बृहस्पति हो अथवा दूते,
 पांचवें, आठवें, दशवें वा एकादश स्थानमें बुध हो उस राशिमें जो द्रव्य बदे हैं
 उनकी वृद्धि होगी ऐसेही शुक्र तिस राशिके छठे या सातवें स्थानमें हो; जिस
 राशिके द्रव्योंकी हानि और अभिन्न राशियोंमें हो तौ वृद्धि बरते हैं; और क्रूर ग्रह
 उपचय स्थान अर्थात् तीसरे, छठे, दशम या एकादश स्थानमें हों तौ शुभदाय
 हैं और तिसके सिवाय और राशिमें स्थित हों तो हानिकारी हैं ॥ ९ ॥ १० ॥
 बलवान् क्रूर ग्रह जिस राशिके पीडास्थानमें अर्थात् उपचय स्थानके सिवाय
 अलग स्थानमें स्थित हों, उस राशिके अधिकारमें जितने द्रव्य हो वह सब मंभे
 होकर दुर्लभ हो जाते हैं ॥ ११ ॥ बलवान् शुभ ग्रह जिन राशियोंके इष्टस्थानमें
 अर्थात् उपचयस्थानमें हों, उन राशियोंके अधीनमें जो जो द्रव्य हैं उनकी वृद्धि
 होती है, सामर्थ्य और सुलभता होती है ॥ १२ ॥ गोचर पीडामें भी सब राशियें

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अर्घकाण्ड.

अतिवृष्ट्युल्कादण्डान् परिषेपग्रहणपरिधिपूर्वांश्च । दृष्टमावास्यायामुत्पा-
त्तं पूर्णिमास्यां च ॥ १ ॥ त्रयादवधिषेपान् प्रतिमासं राशिषु क्रमात् सूर्य ।
अन्यत्रिधाबुत्ताता ये ते डमरांतये राज्ञाम् ॥ २ ॥ मेघोत्पत्ते सूर्यं ग्रीष्मज-
गन्धस्य संग्रहं कुर्यात् । वनमूलफलस्य वृषे चतुर्थमासे तयोर्लाभः ॥ ३ ॥
निधुनस्ये सर्वरसान् धान्यानि च संग्रहं समुपनीय । पठे मासे विपुलं विक्रीणन्
गुयाछाभम् ॥ ४ ॥ कर्कष्यैर्कं मधुगन्धतैलघृतफाणितानि विनिधाय ।
द्वेष्टुणा द्वितीयमासे लब्धिर्हीनाधिके छेदः ॥ ५ ॥ सिंहं सुवर्णमणिचर्मगद्यानि
भौतिकं रजतम् । पञ्च मासे लब्धिर्विक्रैस्तुरतोऽन्यथा छेदः ॥ ६ ॥ कन्यागणे
बलवान् और शुभ ग्रहों काके देखी जाय तो पीडा नहीं; और ४४ ग्रह देखने
में तो इससे विपरीत फल होता है ॥ १३ ॥

इति श्रीबराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुगादाया-
स्तत्त्व-पंडितबलदेवप्रतापमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१

प्रतिमासमें सब राशिमें जय सूर्यमें गमन करें; अमावास्या या पूर्णिमामें
परिषेप, ग्रहण, परिधि, अतिगृष्टि, उल्का व दंडरूप उत्पत्तियोंमें देखकर क्रमा-
नुसार सब विषयोंको रटना चाहिये और निधियोंमें जो उत्पात होते हैं,
वे सब उत्पात राजाओंके लिये गड़बड़ीका भय प्रगट करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥
सूर्य मेघराशिमें जाय तो ग्रीष्मजात धान्यका संग्रह करना उचित है. वृषराशिमें
वनेके फल और मूलका संग्रह करना कर्त्तव्य है. चौथे मासमें उसमें लाभ होता
है ॥ ३ ॥ सूर्य निधुन राशिमें प्राप्त हो तो सर्व प्रकारके रत्न और सब प्रकारके
धान्योंका संग्रह करके छठे मासमें विक्रय करें तो बहुतसा लाभ होता है ॥ ४ ॥
सूर्य कर्क राशिमें स्थित हो तो मधु, गन्ध, तेल, धातु और शस्त्रकी रक्षा करनेसे
अपवाद इनके भर देनेसे दूसरे मासमें इना लाभ होता है, परन्तु अल्पाधिक समय
होनेपर कम लाभ और नाश होवे ॥ ५ ॥ सिंहराशिमें सूर्य हो तो सुवर्ण, मणि,
चर्म, वस्त्र, शस्त्र, मोती और चांदीका संग्रह करके सातवें मासमें बेचें तो बेचने-
वालेमें लाभ होता है, इसके विरुद्ध होनेसे हानि होती है ॥ ६ ॥ सूर्य कन्यारा-

विभूषणं च । उत्थानमिदमशुभं यस्तोऽन्यथा स्यात् तच्छान्तिभिर्नरपतेः
 मयेत्पुरोधाः ॥ ६१ ॥ कव्यादकौशिकरूपोत्ककाककङ्कैः केतुस्थितैर्महदु-
 न्ति भयं नृपस्य । चापेण चापि युवराजभयं वदन्ति श्वेनो विलोचनभयं
 नेपथ्यं करोति ॥ ६२ ॥ उन्नतङ्गातने नृमृत्युस्तत्स्करान्मधु करोति निली-
 म् । हन्ति चाप्यथ पुरोहिन्मुल्का पार्थिवस्य महिषमिथानिश्च ॥ ६३ ॥
 ज्ञीविनाशं पतिता पताका करोत्यवृष्टिं पिदकस्य पातः । मध्याग्रमूलेषु च
 त्वभङ्गो निहन्ति मन्त्रिक्षितिपालपौरान् ॥ ६४ ॥ धूमावृते शिखिभयं
 भस्मा च मोहो व्यालिष्य भयप्रतितेर्न भवन्त्यमात्याः । ग्लायन्त्युद्वज्रमृति च
 ह्मयो दिनाद्या भङ्गे च बन्धकियथः कथितः कुमार्याः ॥ ६५ ॥ रज्जुसङ्कट-
 ने पालीढा राज्ञो मातुः पीडनं मातृकायाः । यद्यत्कुर्यात्तत्काधारणा या
 त्तत्तादृग्भावि पापं शुभं वा ॥ ६६ ॥ दिनचतुष्टयमुत्थितमर्चितं समभिषुज्य
 गिरं तौ उत्पन्ना उद्यना हितकारी होता दे । इसके सिवाय और भौतिक उद्यना
 मशुभ है । राजाके पुरोहितको चाहिये कि शास्ति करके सब विप्रोंको दूर करे
 ॥ ६१ ॥ मांसको खानेवाले पक्षी, उड़, क्यूतर, कग, गिद्ध जो इन्द्रध्वजपर बैठे
 तो राजाको अत्यन्त अशान्ति होती है । इन्द्रध्वजपर नीलकण्ठ बैठे तो युवराजको
 मय कहा जाता है । पाजपक्षीका इन्द्रध्वजपर गिरना नेत्रभयको उत्पन्न करता है
 ॥ ६२ ॥ छत्र भंग होकर ध्वजका गिरना राजाओंको मृत्युको प्रकट करता है । जो
 गिरे इन्द्रध्वजपर शहदारी मुहाल लगा दें तो तस्करोंको मृत्यु होती है । ध्वजपर
 उड़का गिरे तो पुरोहितकी और राजाकी रानीकी मृत्यु होती है ॥ ६३ ॥
 रताकाके गिरनेसे रानीका नाश और पिदकके गिरनेसे सखा पड़ता है निचला,
 ऊपरका और जड़का भाग इन्द्रध्वजका टूट जाय तो क्रमसे भंशी, राजा और पु-
 रोहितोंका नाश करता है ॥ ६४ ॥ इसपर धून छा जाय तो मोह होता है, बीचमेंसे
 टूटकर गिर जाय तो भंशियोंका जमाव हुआ करता है । उत्तरदि चार दिशाओंमें
 टूटकर गिरे तो क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको ग्लानि उत्पन्न करता
 है । कुमारियां फट फट जाय तो न्यायिचारीणी शिखां मरती हैं ॥ ६५ ॥ इन्द्र-
 ध्वज उद्यनेके समय उसके रास्ते बड़ी जटका जाय तो बालकोंको पीडा होती है ।
 तोरणकी बगलमें रखे हुए बालके टूट जानेसे राजमाताको पीडा होती है, बालक
 या दूत इन्द्रध्वजके समीप जैती २ चेरा करें बैराही (मशुम करय होनेपर)
 नापकर वा (शुभकरयमें) शुभकारी होता है ॥ ६६ ॥ उठे हुए ओर धूमित ध्वजकी

नृपोऽहनि पञ्चमे । प्रकृतिभिः सह लक्ष्म विसर्जयेदलभिदः स्ववलाभिर्विह्वलः
॥६७॥ उपरिचरवसुप्रवर्तितं नृपातिभिरप्यनु सन्ततं कृतम् । विधिमिमनुम
पार्थिवो न रिपुच्छतं भयमायादिति ॥ ६८ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरकृतो बृहत्सं० मिन्द्रध्वजसम्पन्नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

नीराजन.

भगवति जलधरपक्ष्मक्षपाकरार्कक्षणे कमलनाभे । उन्मीलयति तुरङ्गन
रिनरनीराजनं कुर्यात् ॥ १ ॥ द्वादश्यामष्टम्यां कार्तिकशुक्लस्य पञ्चदश्यां वा
आश्वयुजे वा कुर्यान्नीराजनसंज्ञितां शान्तिम् ॥ २ ॥ नगरोत्तरपूर्वादिशि प्रशस्त
भूमौ प्रशस्तदारुमयम् । पौडशहस्तोच्छ्रायं दशविपुलं तोरणं कार्पम् ॥ ३ ॥
सर्जोदुम्बरशाखाककुभमयं शान्तिसन्न कुशवहुलम् । वंशविनिर्मितमत्स्यभक्त
चक्रालंकृतद्वारम् ॥ ४ ॥ प्रतिसरया तुरगाणां जघातकशालिकुशसिद्धार्थम्

भली भांतिसे चार दिन पूजा कर पांचवें दिन मजाकी साथ ले राजा उस इन्द्रध्वज
विसर्जन करे तो राजाकी सेनाका बल बढ़ता है ॥ ६७ ॥ उपरिचरवसुप्रवर्तित
चलाई हुई, फिर राजाओंके द्वारा सदा की हुई इस विधिसे जो राजा इस प्रकृत
इन्द्रध्वजकी पूजा करेंगे, वे शत्रु लोगोंसे भयको प्राप्त नहीं होंगे ॥ ६८ ॥

इति श्रीवाराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयपुरादावाङ्मय-
व्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां मायाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥६८॥

बादल जिसकी आंखोंके पलक हैं, चंद्रमा सूर्य जिसके दोनों नेत्र हैं वह न
वान् कमलनाम जब नेत्र खोलते हैं अर्थात् जागते हैं तब घोड़े, हाथी और सु
प्योंको नीराजन करना चाहिये ॥ १ ॥ कार्तिकके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा, द्वादशी और
अष्टमीमें या आश्विनमासमें नीराजन संज्ञाकी शान्ति करे ॥ २ ॥ नगरकी उत्त
पूर्वदिशामें श्रेष्ठ भूमिके ऊपर अच्छे काठका सोलह हाथ ऊंचा और दश हा
चौड़ा एक तोरण बनावे ॥ ३ ॥ विजयसारका वृक्ष, गूलर और अर्जुनइसके
काठका शान्तिप्रद बनावे तिसमें बहुतसे कुशभी रक्खे हों । इसके द्वारमें वंशके दो
द्वार मत्स्य, ध्वज और चक्र लगाये जाय ॥ ४ ॥ शान्तिप्रद और सबकी पुर्ति

चेदीपुरोहितानललक्षणमस्मिन्स्तदवधार्यम् ॥ १४ ॥ लक्षणयुक्तं तुरगं द्विस्तं
 चैव दीक्षितं स्नातम् । अहतसिताम्बरगन्धसम्भूपाभ्यर्चितं कृत्वा ॥ १५ ॥
 आश्रमतोरणमूलं समुपनयेत्सान्त्वयञ्छनेर्वाचा । वादित्रशंखपुण्याहनिःस्तन
 पूरितदिगन्तम् ॥ १६ ॥ यदानीतस्तिष्ठेदक्षिणचरणं हयः समुत्क्षिप्य ।
 जयति तदा नरेन्द्रः शत्रूनचिराद्विना यत्नात् ॥ १७ ॥ तस्यनेतो राज्ञः परितो
 घोष्ठितं द्विपहयानाम् । यात्रायां व्याख्यातं तदिह विचिन्त्यं यथायुक्तिं ॥ १८ ॥
 पिण्डमभिमन्य दद्यात् पुरोहितो वाजिने स यदि जिघेद । अश्रीयता
 जयकृद्विपरीतोऽतोऽन्यथाभिहितः ॥ १९ ॥ कलशोदकेषु शाखामाग्राण्यौदुम्बरी
 स्पृशेत्तुरगान् । शान्तिकपौष्टिकमन्त्रैरेवं सेनां सनृपनागाम् ॥ २० ॥ शान्ति
 राष्ट्रविवृद्धयै कृत्वा भूयोऽभिचारकैर्मन्त्रैः । मृण्मयमरिं विभिन्द्याच्छूलनेोरभयं
 विप्रः ॥ २१ ॥ खलिनं हयाय दद्यादाभिमन्य पुरोहितस्ततो राजा । आस्तौ
 दक्षपूर्वा यापानीराजितः सबलः ॥ २२ ॥ मृदङ्गशंखध्वनिहृष्टकुञ्जरसङ्घात

चाहिये ॥ १४ ॥ उत्तम लक्षणवाले हाथी, घोडेको दीक्षा देकर न्हावाय, नरेश
 वस्त्र पहिराय फूलोंके हार और गंध धूपादिसे पूजन कर ॥ १५ ॥ मीठे स्नान
 कह उनको समझाते बुझाते धीरे २ अनेक प्रकारके वाजे, शंख, पुण्ययुक्त शस्त्र
 जिसकी ध्वनि दिशामें भर गई है ऐसे आश्रमतोरणमूलके समीप उठाकर ॥
 ॥ १६ ॥ जो लाया हुआ घोड़ा पहले दांया चरण उठाकर खड़ा रहे तो राजा
 राजा शीघ्र और बिना परिश्रमके शत्रुओंको जीत लेगा. परन्तु अधिक मीठे होने
 राजाको भय होता है. हाथी, घोड़ोंकी बाकी चेष्टाका फल जो यात्राध्यायमें पढ़
 है सो यहांपर यथायुक्तिते विचारना चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥ पुरोहित मंत्र पढ़
 कर अश्वको भोजन करनेके लिये पिण्ड दे और घोड़ा उसको संघ ले या अश्व
 कर ले तो जयदायी होता है. इससे विपरीतका होना अशुभ कहा है ॥ १९ ॥
 गूलरकी शाखा कलशके जलसे भिगोकर राजा और हाथियोंसे युक्त सेना और
 घोड़ोंकी शान्तिके लिये पौष्टिकमंत्रसे पुरोहित या ब्राह्मण स्पर्श करे और सम्यक्
 वृद्धिके लिये अभिचारके मंत्र पढ़ बारंबार शान्ति करे. पुरोहित को उचित है कि
 मृत्तिकाकी शत्रुमूर्ति बनाय शूलसे उसकी छातीको फाड़े ॥ २० ॥ २१ ॥ पुरो
 हित मंत्र पढ़कर लगामको घोडेके मुखमें दे, फिर राजा उस अश्वपर सवार हो
 नीराजित होकर सेनाके साथ उत्तर दिशामें जाय ॥ २२ ॥ वह मृदंग, शंख

मोदसुगन्धिमारुतः । शिरोमणिचातचलत्प्रभाचवैज्वल्यनिवस्थानिव तोयदात्यये
॥ २३ ॥ हंसपंक्तिभिरितस्ततोऽद्विराट् सम्पतद्भिरिव शुक्लचामरैः । मृष्टगन्धपव-
नानुवाहिभिर्भूयमानरुचिरस्रगम्बरः ॥ २४ ॥ नैकवर्णमणिवज्रभूषितैर्भूषितो मुकुट-
पुण्डलाङ्गदैः । भूरिवकिरणानुरजितः शक्रकार्मुकरुचं समुद्रहन् ॥ २५ ॥
तत्तद्भिरिव खं तुरङ्गमैर्दारपाद्भिरिव दन्तिभिर्पराम् । निर्जितारिभिरिवामरैर्नरैः
प्रवत्तारिवृतो ब्रजेन्नृपः ॥ २६ ॥ सवज्रमुक्ताफलभूषणोऽथवा सितस्रगुष्णी-
विलेपनाम्बरः । धृतातमो गजपृष्ठमाभितो घनोपरीवेन्दुतले भृगोः सुतः
॥ २७ ॥ सम्प्रहृष्टनरवाजिकुञ्जरं निर्मलप्रहरणांशुभासुरभू । निर्विकारमरिपक्षभी-
षणं यस्य सैन्यमाचिरात्स गां जयेत् ॥ २८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नीराजनविधिर्नाम

चतुरश्रत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

नौ मद् झरते हुए हर्षित हाथीकी मदगन्धसे सुगन्धित हुई, पवनके सेवनसे हर्षित
हो मुकुटमें जड़ी हुई मणियोंकी चञ्चल कान्तिसे बादल फट जानेपर सूर्यकी समान
आकाशमान भूर्ति धारण करके शुद्ध गन्धयुक्त पवनके पीछे बहते हुए गिरनेवाले
वेत चामरसे इंसाबलीसे शोभायमान पर्वतराजकी समान कम्पायमान, सुन्दरमाला
नौर सुन्दर वस्त्र पहरकर शोभित हो ॥ २३ ॥ २४ ॥ अनेक रंगके मणि और
मोरोसे भूषित, मुकुट, पुण्डल और बाजू धारण करे हुए राजा तिस कालमें अनेक
प्रकारकी किरणोंसे रंगे हुए इन्द्रधनुषकी समान सुन्दर रूप धारण करके आकाशमें
गानो उडते हुए घोड़े, धरतीके विदारण करनेवाले हाथी और शत्रुको विजय कर-
वाले मनुष्योंके साथ, देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी समान गमन करे ॥ २५ ॥ २६ ॥
अथवा हीरा, मोती, जड़ी श्वेतमाला, पगड़ी, उबटना या चंदनादि लगाय, वस्त्र
हर, छत्र धारण कर हाथीपर सवार हो, मेघके ऊपर चन्द्रमाके नीचे विराजमान
रुकी समान गमन करे ॥ २७ ॥ तिस कालमें जिसकी सेना हर्षित है और
हर्षित हाथी, घोड़े और मनुष्योंसे युक्त है, निर्मल अस्र शस्त्रोंकी कान्तिसे प्रका-
शमान है, विकारादित और शत्रुपक्षकी मय उपजाओशाली होती है, वह राजा
प्रगल्भी पृथ्वीको जीत लेनेमें समर्थ होता है ॥ २८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पञ्चमोच्चरदेशीयपुरादायादवास्त-
व्य-पंडितमलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां योगः स्मृतो वृष्टिविकारकाले । धान्यान्नोक्तश्च
 क्षिणाश्च देयास्ततः शान्तिमुपैति पापम् ॥ ४६ ॥ इति वृष्टिवैकृतम् । न
 र्पणं नदीनां नगरादचिरेण शून्यतां कुरुते । शोषश्चाशोष्याणामन्येषां वाह
 दीनाम् ॥ ४७ ॥ स्नेहासृङ्मांसवहाः संकुलकलुषाः प्रतीपगाश्चापि । पर
 स्यागमनं नद्यः कथयन्ति पण्मासात् ॥ ४८ ॥ ज्वालाधूमकाया हरिरे
 ष्टानि चैव कूगानाम् । गतिप्रजल्पितानि च जनमरकाय प्रदिशति ॥ ४९ ॥
 तोयोत्पत्तिरखाते गन्धरसविपर्यये च तोयानाम् । सलिलाशयविकृतौ वा
 च्रपं तत्र शान्तिरियम् ॥ ५० ॥ सलिलविकारे कुर्यात् पूजां वरुणस्य रमे
 मन्त्रैः । तैरेव च जपहोमं शममेवं पापमुपयाति ॥ ५१ ॥ इति जलहीन
 प्रसवविकारे स्त्रीणां द्वित्रिचतुःप्रभृतिसम्प्रसूतौ वा । हीनातिरिक्तकाले च र
 कुलसंक्षयो जयति ॥ ५२ ॥ वडवोद्रुमाहिपगोहस्तिनीषु यमलोन्ने मरणमेव
 पण्मासात्सूतिफलं शान्तौ श्लोकौ च गर्गाकौ ॥ ५३ ॥ नार्यः पश्यति

वृष्टि विचारके कालमें सूर्य चन्द्रमा और पवनका यज्ञ करे तिस काल धान्य, न
 गो और मुरगें की दक्षिणा देनेसे पापकी शान्ति होगी ॥ ४६ ॥ इति वृष्टिवैकृतम् ।
 जो नदियां नगरके नीचे बहती हों और वह नगरोंको छोड़कर मरक जा
 नगरके न मरनेवाले स्थान कुंड इत्यादि सूख जाय तो शीघ्रही नगर सूख
 जाता है ॥ ४७ ॥ जो तेल, रुधिर या मांस नदियोंमें बहता हो, मर्जन
 हो जाय, उलटी बहने लगे तो छः मासके बीचमें शुशुभी सेना नगरपर आ
 दे ॥ ४८ ॥ द्रुपमें गाला या धूम दिखाई दे, जल खीलने लगे, सेनेमें
 मर्जन बरसाद मुनाई आये तो इन बातोंका होना मरीक कारण है ॥ ४९ ॥
 स्रग्दे दूर जलस्य निकलना, जलकी गन्ध और रसका बदल पड़ने से
 जलशयय विचारको प्राप्त हो जाना बड़े भारी भयका कारण है, निम्न
 इस प्रकारके कर्मा चाहिये; जलविकारमें वारुणमंत्रसे वरुणजी की पूजा
 करने पर ही इन कामोंका शान्ति होगी ॥ ५० ॥ इति जलहीन
 ॥ ५१ ॥ इति जलहीन । जो म्रियोंमें प्रगल्भिकार हो या उनके पदों
 से रीत या चर बड़े पैदा हों, प्रगल्भमयके पीछे या पड़ने पर
 नेत्र दुःख भोजनहीन भय होना है ॥ ५२ ॥ घोंही, कंदनी, नैय, की
 रंजिते पद मय हो बड़े पैदा हों तो इनकीही शून्य होती है ।

पक्वव्यास्ता हितार्थिना । तर्पयेच्च दिजान् कामैः शान्तिं चैवात्र कारयेत् ॥ ५४ ॥
 चतुष्पदाः स्वयूथेभ्यस्त्यक्तव्याः परभूमिषु । नगरं स्वामिनं यूथमन्यथा हि
 घेनाशयेत् ॥ ५५ ॥ इति प्रसववैकृतम् । परयोनावभिगमनं भवति तिरश्चाम-
 राधु धेनूनाम् । उक्षाणो वान्योऽन्यं पिबति श्वा वा सुरभिपुत्रम् ॥ ५६ ॥
 मासत्रयेण विद्यात् तस्मिन्निःसंशयं परागमनम् । तत्प्रतिघातायैतौ श्लोकौ गर्गेण
 निर्दिष्टौ ॥ ५७ ॥ त्यागो विवासनं दानं तत्तस्याशु शुभं भवेत् । तर्पयेद्ब्राह्मणां-
 भ्रात्र जपहोमांश्च कारयेत् ॥ ५८ ॥ स्थालीपाकेन धातारं पशुना च पुरोहितः ।
 प्राजापत्येन मन्त्रेण यजेद्ब्रह्मदक्षिणाम् ॥ ५९ ॥ इति चतुष्पदवकृतम् । यानं
 बाहवियुक्तं यदि गच्छेन्न व्रजेच बाहयुतम् । राष्ट्रभयं भवति तदा चक्राणां साद-
 भङ्गः च ॥ ६० ॥ अनभिहततूर्यनादः शब्दो वा ताडितेषु यदि न स्यात् । व्युत्पत्ती
 वा तेषां परागमो नृपतिमरणं वा ॥ ६१ ॥ गीतरवतूर्यनादा नभसि यदा वा

फल छः मासके पीछे होता है, इसको शान्तिके लिये गर्गजीने दो श्लोक कहे हैं;
 जिनके प्रसवमें विकार हुआ हो हितार्थी पुरुषको चाहिये कि इन स्त्रियोंको दूर
 देशमें छोड़ आवें, ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार वृत्त करे और इसमें इस
 प्रकारसे शान्ति करावे, चौपायोंको अपने थलसे अलग करके दूसरेकी भूमिमें छोड़
 आवे, नहीं तो नगरस्वामी और अपने हुंडका नाश हो जाता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥
 इति प्रसववैकृतम् । एक जातिका पशु दूसरी जातिके पशुसे मैथुन करे तो अमंगल
 होता है या दो बैल जो परस्पर थन पिये अथवा कुत्ता गायके मछड़ेका थन पिये तो
 अमंगल होता है ॥ ५६ ॥ ऐसा हो तो तान मासमें निःसन्देह शत्रुकी सेना आती है, इसकी
 रोकके लिये गर्गजीने यह दो शान्तिकरी श्लोक कहे हैं—“उनके छोड़ देने, निकाल देने या
 दान कर देनेसे शीघ्र शुभ होता है, इस कारण ब्राह्मणोंको वृत्त करे और जप होम
 करावे । पुरोहितको उचित है कि प्राजापत्यमंत्रसे स्थालीपाक और पशुओंसे धातारक
 यजन करे और बहुतसे अन्नकी दक्षिणा दे” ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इति चतुष्पा-
 दवैकृतम् । १४, पहली आदि सवारी जो बिनाही घोड़े बैलादिके जुते हुए चलने
 लगे या बैलादिसे जुती हुई सवारी गमन न करे और पहिया पृथ्वीमें गड़ जाय
 तो राज्यको भय होता है ॥ ६० ॥ बिना बजायेही तुरहीका शब्द होवे या बजा-
 येसे तुरही पजे नहीं या विसमें व्युत्पत्ति अर्थात् अनेक प्रकारके शब्द हों तो
 शत्रुकी सेनाका आगमन या राजाका मरण होता है ॥ ६१ ॥ जप आकरभ्रम-

चरास्थिरान्यत्वम् । मृत्युस्तदा गदा वा विस्वरतूर्ये पराजिभवः ॥ ६२ ॥ गोर्ध-
 गूलयोः सङ्गे दर्वाश्चर्पाद्युपस्करविकारे । कोटुकनादे च तथा शस्त्रजं मुतिव-
 श्वेदम् ॥ ६३ ॥ वायव्येष्वेषु नृपतिर्वायुं सज्जुभिर्चयेत् । आ वारोरे-
 पश्चर्चा जाप्याश्च प्रयतैर्द्विजैः ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणान् परमात्रेण दक्षिणाभिध तपेत् ।
 बह्वन्नदक्षिणा होमाः कर्तव्याश्च प्रयत्नतः ॥ ६५ ॥ इति वायव्यवैकृतम् । उ-
 पक्षिणो वनचरा वन्या वा निर्भया विशन्ति पुरम् । नक्तं वां दिवसचराः स्ता-
 चरा वा चरन्त्यहनि ॥ ६६ ॥ सन्ध्याद्वयेऽपि मण्डलमावधन्तो मृगा विदुः
 वा । दीप्तायां दिश्यथवा क्रोशन्तः संहता भयदा ॥ ६७ ॥ श्वानः प्रहन्त रा-
 द्वारे वाशन्ति जम्बुका दीप्ताः । प्रविशेन्नरेन्द्रजवने कपोतकः कौशिको परी-
 वां ॥ ६८ ॥ कुम्भदरुतं प्रदोषे हेमन्तादौ च कोकिलालापाः । प्रतिलोमन्त-
 लचराः श्वेताद्याभ्याम्बरे भयदाः ॥ ६९ ॥ गृहचैत्यतोरणेषु द्वारेषु च पक्षि-

प्रतिघानि हो, तुरही चने या कर्कादि राशिका विपरीत घटन हो तो रोग या कुछ
 होनी है । तुरहीका शब्द स्वरहीन हो तो शत्रुकी पराजय होती है ॥ ६२ ॥ रोग
 और इलज अचानक रुक जाना, दर्वा (चमचा) आदि घरकी सामग्रीमें किसी
 प्रकार का भिन्न आ जाना और शृगालके शब्दका होना शस्त्रमयका कारण है ।
 इधरसे शान्ति का होना मुनिजीने इस प्रकार कहा है—“ इस वायव्यदिशमें रात्र
 सुषुप्ति परनकी पूजा करे और ब्राह्मणोंके द्वारा “ आरायोः ” इस ऋष्यपञ्चम
 जप करे, परमात्र और दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे, यत्रके सारित रा-
 तना अन्न दक्षिणामें दे और होम करे ” ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इति वायव्यवैकृतम् ।
 घरके पाँडे हुए पक्षिगण वनचारी हो जाय या वनेले पक्षी निर्भय होकर घुमें
 मवेश्य घर जायें, दिनके चरनेवाले रात्रिमें अथवा रात्रिके चरनेवाले दिनमें भिन्न
 को, दोनों संख्याओंमें मृग और पक्षी मंडल बांध २ कर बैठे अथवा रात्रिमें ही
 सुषुप्ति और ही मुक्त करके चिड़ने तो मय होता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जो उठे
 रोने २ दूसरा उठे रोने, मृगकी औरने मुक्त करके गीदह रोने, जो कूड़ा या
 कुछ गन्धनाममें मवेश्य करे अथवा प्रदोषके समयमें मृगा सुन्द हो, रोग-ही
 शत्रु-हीने कोयल कोड़े, आसुनमें बाज आदि पक्षियोंका प्रतिलोम मंडल भिन्न
 कर हो अथवा होना है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ घरमें, चैत्यमें, तोरण और द्वार
 में होकर घूमने और मृदुल छटा, बमड़े व चमड़ेसे उत्पन्न हुए पदार्थोंमें हो

सम्प्राप्ताः । मधुवल्मीकाम्भोरुहसमुद्रवाष्पापि नाशाय ॥ ७० ॥ श्वभिर-
 त्पयशवावयवप्रवेशनं मन्दिरेषु भरकाय । पशुसप्तव्याहारे नृपमृत्युर्मुनिवचभेदम्
 ७१ ॥ मृगपक्षिविकारेषु कुर्याच्चोमान् सदाक्षिणान् । देवाः कपोत इति च
 तन्व्याः पञ्चभिर्दिनेः ॥ ७२ ॥ सुदेवा इति चैकेन देया गावश्च दक्षिणा । जने-
 षाकुनसूक्तं वा मनोवेदशिखांसि च ॥ ७३ ॥ इति मृगपक्ष्यादिवैतनम् । शुक्रध्व-
 न्द्रकीलस्तम्भद्वारप्रपातभङ्गेषु । तद्वत्कषाटतोरणकेतूनां नरपतेर्मरणम् ॥ ७४ ॥
 तन्व्याद्वयस्य दीप्तिर्धूमोत्पत्तिश्च काननेऽनघा । छिन्नाभावे भूमेर्दणं कम्पश्च
 यकारी ॥ ७५ ॥ पापण्डवानां नास्तिकानां च भक्तः साध्याचारमोक्षितः
 शेषशालः । ईप्सुः क्रूरो विग्रहासक्तचेता यस्मिन् राजा तस्य देशस्य नायः
 ७६ ॥ प्रहर हर छिन्दि भिन्दि त्प्यायुधकाष्ठारप्रपाणयो बालाः । निगदन्तः
 हरन्ते तत्रापि भयं भवत्याशु ॥ ७७ ॥ अङ्गारगिरिकार्यविच्छिन्नमेताभिरेतनं
 स्मिन् । नायकचित्रितमथवा क्षये क्षयं याति न चिरेण ॥ ७८ ॥

पर कहे हुए स्थानोंका नाश होता है ॥ ७० ॥ जो हड्डीको कुसे पारमें छे जाये वा
 तफ अंगका कोई भाग छे जाये तो मरीक्य करण है । पशु और शस्त्र मनुष्यकी
 विषयों तो राजाकी मृत्यु होती है । इन बातोंकी शान्तिके लिये मुनिजीने यह
 मन कहा है—“मृगपक्षियोंके विकारमें दक्षिणाके साथ होम करे, पांच प्राज्ञियोंके
 देवाः कपोत ” इस मंत्रका जप करना चाहिये, और “सुदेवाः” मंत्रके दक्षिणा
 कर शाकुनसूक्तका जप करना उचित है अथवा “मनोवेदशिखांसि ”
 मंत्र जपे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इति मृगपक्षिविकार ।
 ध्वज, इन्द्रकील, स्तम्भ, द्वार, कषाट, तोरण, केतु दूट जाय वा गिर जाय वा
 नाश मरण होता है ॥ ७४ ॥ दोनों सन्व्याके समय तेजका दाना, अभिरहित
 में भूमिका उत्पन्न होना, बिना छेदके पृथ्वीका फट जाना और पर्वतका भयंकर
 ता है ॥ ७५ ॥ जिस देशका राजा पापण्डी और नास्तिकोंका भक्त होता है,
 धुमांकेले आचरण नहीं करता, शुद्धस्वभाव, ईर्ष्या करनेवाला, क्रूर, निगदने
 का लगानेवाला होता है, उस देशका नाश हो जाता है ॥ ७६ ॥ जब शस्त्र,
 छ, पत्थर हाथमें छेकर बालकमण “मारो, छीन लो, मारो, बोट डालो ” ऐसा
 करते २ एक दूसरेको मारते हैं । तब भीमही भय होता है ॥ ७७ ॥ क्रोधके वा
 लो जिस पक्षी भीतोंपर मृतकोंके विश्र बनाये जाय अथवा सिंहाके समक

प्रदाः । अगोरन्यत्र चेत्ताता दृष्टास्ते भृशदारुणाः ॥ ९६ ॥ उन्मत्तान्
गायाः सिद्धां भाषिं च यत् । द्विषो यच्च प्रज्ञापन्ते तस्य नास्ति व्य-
क्रमः ॥ ९७ ॥ पूर्वं चरति देवेड पश्चाद्गच्छति मातृपान् । नाचोदिता वा-
दति सत्या ह्येता सत्सतो ॥ ९८ ॥ उत्तातान् गणितविवर्जितोऽप्रीड
विलयातो भवति नरेन्द्रमठनम् । एतन्मुनिवचनं रहस्यमुक्तं यज्ज्ञात्वा म-
नस्त्रिकालदर्शी ॥ ९९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुत्पातलक्षणं नाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

मयूरचित्रक.

दिव्यान्तरिक्षावप्रमुक्तनारी मया फलं शस्तमद्योतनं च । प्रायेण चो-
समानेडु बुद्धेडु मार्गादिडु विस्तरेण ॥ १ ॥ भूपो वराहमिहिरक-
मुक्तेनैव कर्तुं समाप्तकृद्वर्णनिति तस्य दोषः । तज्ज्ञौ वाच्यनिरमु-

हेते हैं ॥ ९६ ॥ पागडांका गीब और गाया, बालकांके वचन और जिससे श्री
कहे उतका लंबन नहीं होना ॥ ९७ ॥ सत्यस्वरूप, अमेरित, वाप्रपिणी यह
सतीतो पहडे सब देवताओंमें विवाण करतो थी फिर मनुष्योंको प्राप्त हुई ॥ ९८ ॥
जो देवता गणितके ज्ञानसे नहीं जानता, वहभी जो उत्पातोंका ज्ञान मजी मजी
को वो वहमी बिलयात होकर राजाका प्यास होता है. यह वही मुनिवचनका रहस्य
कहा गया है कि जिससे जानकर मनुष्य त्रिकालदर्शी हो सकता है ॥ ९९ ॥
इति श्रीवराहमिहिरचार्यविरचितयां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुत्पातल-
क्षण-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविर० भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

प्रचार, समागम, युद्ध और वीथि आदिमें बहुत दिव्य और अन्तरीक्षीय
याश्रयी, समस्त शुभाशुभ फल हमने निरूपण किये ॥ १ ॥ वराहमिहिरके विवेक
जातोई वारेवार करना ठीक नहीं है क्योंकि उनका दोष यही है कि वह, भूगोल
है. पट्टः यह फलदायी मयूरचित्रक नामक श्रेष्ठ ज्ञानवानेसे मयूरचित्रकके

फलानुगीति यद्वर्हिचित्रकमेति प्रयितं वराङ्गम् ॥ २ ॥ स्वरूपमेव
तस्य तत्र प्रकीर्तितानुकीर्तनम् । वरीष्यहं न चेदिदं तयापि मेऽय
चाचरता ॥ ३ ॥ उत्तरवीथिगता धुनिमन्त्रः क्षेममुमिश्रयिवाय समस्ताः ।
दक्षिणनार्गगता धुनिहीनाः क्षुब्धनरकरमृत्युकरास्ते ॥ ४ ॥ कोठागारगते
भृगुपुत्रे पुष्पस्थे च गिरां प्रभुविष्णौ । निर्बेराः क्षिनिनाः सुखभाजः संहृष्टाश्च
जना गतरोगाः ॥ ५ ॥ पीठपन्ति यदि छत्तिकां मचां रोहिणीं श्रवणमेन्द्रमेव
चा । मनोहर सूर्यनररे प्रहस्तश्च पश्चिमा दिगन्त्येन पीठ्यते ॥ ६ ॥ प्राच्यां
चेह्नवदवस्थिता दिगन्त्ये प्राच्यानां भवति हि विषहो नृपाणाम् । मध्ये
चेमति हि मध्यदेशीया रक्षस्तेन तु रुषिरर्मपूखवन्ति ॥ ७ ॥ दक्षिणा
ककुतनाभिस्तु तेरक्षिणान्तरापोमुचां क्षयः । हीनरक्षस्तनुतिश्च विषहः
स्युलदेहकिरणान्वितैः शुभम् ॥ ८ ॥ उत्तरमांसे स्पष्टमयूखाः शान्तिकरास्ते
ज्ञानीनाम् । हस्तपरीरा भस्मवर्णा दोषकराः स्युर्देशनृपाणाम् ॥ ९ ॥

भाडे पंडित लोग उनही कुलभी निन्दा न करेंगे ॥ २ ॥ (पहले मेर्कुर विषयमें)
ही मयाविशकाय स्वरूप है इस कारण फिर उनका वर्णन नहीं करना चाहिये
परन्तु वर्णन न करनेपरभी निन्दा न छूटेगी ॥ ३ ॥ जो उत्तर मार्गमें प्रह गहन
हैं और मध्यशून्य हैं तो कुशल, सुमिश्र और मंगल होता है, दक्षिणमार्गमें आय
और मध्यशून्य हैं तो अकाल, तस्करमय और मृत्युकारक होते हैं ॥ ४ ॥
प्रह कोठागारमें अर्थात् मयानक्षत्रपर होय और ब्रह्मस्थिति पुष्पनक्षत्रमें दिगन्त-
गान हैं तो राजा लोग शत्रुहीन होते हैं, मया मुली, हर्षित और ऐगहीन रहती
॥ ५ ॥ यदि सूर्यके अतिरिक्त ग्रहण पूरितह, मया, रोहिणी, श्रवण और
पेठा नक्षत्रभी पीठित करें तो अन्यायसे पश्चिमदिशाको पीठा होती है ॥ ६ ॥
तो सन्ध्याकालके समय पूर्वदिशामें घमाको नाई ग्रहण विराजमान होते हैं तो
पूर्वदिशाके रहनेवाले राजाओंमें युद्ध होता है, यदि आकाशके मध्यभागमें पेठा
तो तो मध्यदेश पीठित होता है, परन्तु यह सूर्य, मनोहर अथवा विष्णुद्वार हैं
तो मध्यदेशको पीठा नहीं होती ॥ ७ ॥ जो दक्षिणदिशामें प्रह हैं तो दक्षिणापय
और मेर्कुर क्षय होता है जो इस समयमें प्रह हीनशरीर और सूर्य देहाके हो
तो विप्रह होता है, परन्तु यही देहाके और विष्णुद्वार हैं तो शुभ होता है ॥ ८ ॥
उत्तरमांसे स्पष्ट चिह्नोंसे बलवत्ते हैं तो वहांके राजाओंमें शान्ति करनेवाले
होते हैं, छोटे शरीराके और अस्वस्थ समान रंगवाले हैं तो देश और राजाओंको

नक्षत्राणां तारकाः सग्रहाणां धूमज्वालाविस्फुलिङ्गान्विताश्चेत् । आलोके
 निर्निमित्तं न यान्ति याति ध्वंसं सर्वलोकः सन्नूपः ॥ १० ॥ दिवि जाति
 तुहिनांशुयुगं द्विजवृद्धिरतीव तदाशु शुभा । तदनन्तरवर्णरणोऽर्कयुगे
 प्रलयाच्चिचतुःप्रभृति ॥ ११ ॥ मुनीनभिजितं ध्रुवं मयवतश्च भं तं
 शिखी घनविनाशकत् कुशलकर्महा शो.कदः । भुजङ्गभमथ स्पृशेद्वानि
 नाशो ध्रुवं क्षयं व्रजति विद्रुतो जनपदश्च बालाकुलः ॥ १२ ॥ राव
 चरन् राविपुत्रो नक्षत्रेषु करोति च वक्रम् । दुर्मित्तं कुरुते भयमुग्रं नि
 च विरोधमवृद्धिम् ॥ १३ ॥ रोहिणीशकटमर्कनन्दनो यदि भिनचि सति
 थवा शिखी । किं वदामि यदनिष्टसागरे जगदशेषमुपयाति संक्षयम् ॥ १४ ॥
 उदयति सततं यदा शिखी चरति भचक्रमशेषमेव वा । अनुभवति पुन
 तदा फलमशुभं सचराचरं जगत् ॥ १५ ॥ धनुःस्थायां रक्षो रक्षि
 क्षुब्धकरो घलोयोगं चेन्दुः कथयति जयं ज्यास्य च यतः । असात्

दोषकारी होते हैं ॥ ९ ॥ जो ग्रह और नक्षत्रोंके तारे धुपकी लपट और वि
 रियोंसे युक्त हों या बिनाही कारणके उनमें प्रकाश न हो तो राजाके सार
 लोकरा ध्वंस होता है ॥ १० ॥ जब आकाशमें दो चन्द्रमा दीप्तिमान होते
 तब ब्रह्मर्षीका अन्यन्त शुभ होता है, दो सूर्यके दिखाई देनेसे शत्रुकारि
 सुद होता है और तीन चार इत्यादि अनेक चन्द्रसूर्यके निकलनेसे जगत्में
 होता है ॥ ११ ॥ शिखी अर्थात् केतु यदि सप्तार्धमण्डल, अभिजित्
 श्वेद्वानभयको स्पर्श करे तो यादलोक नाश, कुशल कर्ममें हानि और शत्रु
 होता है, जो आश्विपानक्षत्रको स्पर्श करे तो निश्चयही वृद्धि नाश और रोग
 जनपदमें उपद्रव होकर वह शीघ्र नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ १३ ॥
 शनि द्वारा अर्थात् शूलिकादि सप्त नक्षत्रमें विचरकर रक्षी
 दुर्मिष्ठ, उग्र भय, मित्रोंका विरोध करता है और वर्षाको नहीं पाता है ॥ १४ ॥
 जो शनि, मंगल या केतु रोहिणीशकटको भेद करे तो समस्त जगत्में
 अनन्त होता है कि कुछ बहा नहीं जाता ॥ १५ ॥ जब केतु राव
 है या चन्द्रमें नक्षत्रोंके चन्द्रमें विचरण करता है तो बराबर राव
 समस्त जगत्में घटोका अनुभव करता है ॥ १६ ॥ धनुषी ममान
 १७ और रक्षिकी ममान रंगाला हो ती शुभा और मयना उपद्रव

गोघो निधनमपि सस्यस्य कुरुते ज्वलन्धूमायन् वा नृपतिमरणायेव भवति
 ॥ १३ ॥ स्निग्धः स्थूलः समशृङ्गो विशालस्तुब्धबोधग्विचरज्ञागवीध्याम् ।
 ॥ १४ ॥ सौम्यैरशुभिर्धिमयुक्तो लोकानन्दं कुरुतेऽनीव चन्द्रः ॥ १७ ॥ विज्यमैत्रपु-
 रुहतविशाखात्वाद्ग्रेमेत्य च पुनकि शयाङ्कः । दक्षिणेन न शुभो हितकृत्याद्य-
 धुदक् चरति मध्यगतो वा ॥ १८ ॥ परिष इति मेघरेखा या तिर्यग्भास्करो-
 दयेऽस्ते वा । परिषिस्तु प्रतिसूर्यो दण्डस्तवृजुरिन्द्रचापनिभः ॥ १९ ॥ उदयेऽ-
 स्ते वा भानोर्ये दीर्घा रश्मयस्त्वनोधास्ते । सुरचापखण्डमृजु यदोहितमैरावतं
 दीर्घम् ॥ २० ॥ अर्धास्तमयात्सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत् ।
 तेजःभरिहानिमुखाद् भानोरधोदयं यावत् ॥ २१ ॥ तस्मिन् सन्ध्याकाले
 चिह्नैरेतैः शुभाशुभं वाच्यम् । सर्वैरेतैः स्निग्धैः सद्योवर्षं भयं तक्षैः ॥ २२ ॥
 अच्छिन्नः परिषो विषय विमलं श्यामा मयूखा रवेः स्निग्धा दीधितयः सितं

हे और इस चन्द्रमाके मोहों जिस ओरको होती है वहांपर सेनाका उद्योग और
 जयकी सूचना होती है. चन्द्रमाका शृंग नीचे हो तो धान्य और गायोंका नाश
 होता है और छपट व घुररा बिस्तार करे तो राजाओंके मरणका कारण होता
 है ॥ १६ ॥ चिकना, स्थूल, परावर शृंगवाला, विशाल और ऊंचा चन्द्रमा उत्तर-
 दिशामें नागवीधिमें विचरण करे, अशुभ ग्रहसे अलग और शुभ ग्रहसे देखा जाय
 तो मनुष्योंको अत्यन्त आनन्द देता है ॥ १७ ॥ जो चन्द्रमा मघा, अनुराधा,
 ज्येष्ठा, विशाखा और चिन्ताक्षत्रको प्राप्त होकर दक्षिणमें जाय तो शुभ फल नहीं
 होता; यदि उत्तरदिशामें वा मध्यमें हो तो हितकारी होता है ॥ १८ ॥ सूर्यके
 उदय या अस्तकालमें जो मेघभी रेखा हो, उसकाही "परिष" नाम है यह
 तिरछी हो तो "परिधि" सूर्यकी समान वस्तु हो तो "प्रतिसूर्य" और इन्द्रके
 धनुषकी समान सरल मेघका "दंड" कहते हैं. सूर्यकी लंबी किरणको "अमोघ"
 कहते हैं और लम्बे व सीधे इन्द्रधनुषको "ऐरावत" कहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥
 जब सूर्य आधा छिप गया हो, तबरे प्रकाशित न हुए हों और तेजहानिके आर-
 म्मसे जयतक सूर्यका आधा उदय हो तबतक संध्या कहाती है ॥ २१ ॥ उस
 सन्ध्याकालमें इन चिह्नोंको देखकर शुभ अशुभ फल कहना चाहिये; यह समस्त
 चिकने हों तो शीघ्र वर्षा और रूखे हों तो भय होता है ॥ २२ ॥ सावत परिष,
 विमल आकाश, सूर्यकी श्याम किरणें, स्निग्ध दीधिति, श्वेतवर्णका देवताओंका

सुरधनुर्विद्युच्च पूर्वोत्तरा । सिग्धो मेघतरुर्दिवाकरकरैरालिङ्गितो वा यदा
 स्यादादि वार्कमस्तसमये मेघो महांश्छादयेत् ॥ २३ ॥ सण्डो वक्रः
 ह्रस्वः काकाद्यैर्वा चिह्नैर्विद्धः । यस्मिन्देशे रक्षश्चार्कस्तत्राभावः प्रायो
 ॥ २४ ॥ वाहिनीं समुपयाति पृष्ठतो मांसभुक्स्वगणो युयुत्सतः । यत्
 बलविद्रवो महान् अग्रैस्तु विजयो विहङ्गमैः ॥ २५ ॥ भानोरुपे
 वास्तमये गन्धर्वपुरप्रतिमा ध्वजिनी । बिम्बं निरुणाद्धि तदा नृपतेः प्रांतं
 सभयं प्रवदेत् ॥ २६ ॥ शस्ता शान्ताद्विजमृगघुष्टा सन्ध्या सिग्धा मुमुक्षु
 च । पांशुध्वस्ता जनपदनाशं धत्ते रक्षा रुधिरनिष्ठा वा ॥ २७ ॥ यदिस्त
 कथितं सुनिमित्तस्तदस्मिन् सर्वं मया निगादितं पुनरुक्तवर्जम् । श्रुतं
 कोकिलरुतं बलिभुग्विरौति यत्तत्स्वभावकृतमस्य पिकं न जेतुम् ॥ २८ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मयूरचित्रकं नाम

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

धनुष, पूर्वोत्तर दिशामें बिजली किराजमान हो अथवा जब बादलवृक्ष सूर्यको बि
 णोंके पड़नेसे चिरना हो जाता है या सूर्यको छिपनेके समय महामेघ इत
 है भी रातों होता है ॥ २३ ॥ जिस देशमें सूर्य दुकडेदार, टेढ़ा, कड़ा, भंग
 स्यादादि विद्रुमे बिधा हुआ और रूखा हो वहांपर अकमर राजाका मम
 है ॥ २४ ॥ जिन युद्ध करनेकी इच्छा किये राजाओंके पीछेसे भाग
 पशियोंके साथ गेनाछ समलग्न होता है, उनकी सेनाका बड़ा भारी मय
 परन्तु दिग्गगण आगे २ चले तो विजय होती है ॥ २५ ॥ सूर्यके उत्प
 अस्तमयमें धजाते युक्त गन्धर्वपुराणी प्रतिमा जो सूर्यको रोक ले तो य
 कर्ता है कि राजाको मययुक्त समरकी प्राप्ति होगी ॥ २६ ॥ चित्रने और
 पवनवाती गन्ध्या, पूर्वदिशामें पक्षी और मृगगणोंका शब्द होना अच्छा है
 गन्ध्या धूममें घंटाकी भाँति हुई या रुधिरकी समान रूपा हो तो जनपद
 हो ॥ २७ ॥ मुनिजोगोंने जिसको विस्तारमें कहा है, मैंने उसको जनपद
 पुनरुक्तिमेंको छोड़कर इस शास्त्रमें कहा है, कोपलकी कूक पुनरर राध
 कर्ता उसका ममवर्ती है; वास्तवमें कामका शब्द करना कोपलको
 नेहें छिने नहीं है ॥ २८ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पञ्चमोत्तरदेशीयधनुषक
 धनुष-विद्रुमे बिधा गन्ध्या गन्धर्वपुराणी प्रतिमा मयूरचित्रकं नाम

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

पुष्पस्नान ।

मूलं मनुजापिपातिः प्रजातरोस्तदुपपातसंस्कारात् । अशुभं शुभं च लोके
भवति यतोऽतो नृपतिचिन्ता ॥ १ ॥ या व्य. स्याता शान्तिः स्वयम्भुवा सुर-
गुरोर्महेन्द्रार्थे । तां प्राप्य वृद्धगर्गः प्राह यथा भ. गुरोः शृणुत ॥ २ ॥ पुष्प-
स्नानं नृपतेः कर्तव्यं देववित्पुरोधाम्याम् । नातः परं पवित्रं सर्वोत्पातान्तकर-
मस्ति ॥ ३ ॥ श्रेष्ठातकाक्षकण्टकिव दुत्तित्तिदिगन्धिप. दण्दिर्दाने । कौशिक-
गृध्रमभृतिभिरनिशविहमैः परित्यक्ते ॥ ४ ॥ तरुणतरुलम्बद्वीलताप्रतानावृते
वनोद्देशे । निरुपहतपत्रपल्लवमनोज्ञमधुमधुमभाये ॥ ५ ॥ लकवाकुर्जावजीवक-
शुकाशिसिधतपत्रचापहारतिः । फकरचकोकपिञ्जलकञ्जुलपारावतर्भाकः
॥ ६ ॥ कुसुमरसपानमचक्षिरेफपुंस्कोकिलादिभिश्चान्यैः । विरुते वनोपकण्ठे
क्षेत्रागारे शुचावधवा ॥ ७ ॥ हृदिनीविलानिनीनां जन्ममननविक्षनेषु रम्येषु ।

राजाही मजाकूपी वृक्षके लिये जडकूप है, तिसलिये मजाके ऊपर उपपात
संस्कारके लिये अशुभ और शुभ फल होता है; इसलिये राजाके मद्दतविषयमें
सदा चिन्ता करनी चाहिये ॥ १ ॥ स्वयं इन्द्राजीने महेन्द्रके लिये पृथ्वीपतिजीसे
जो शान्ति वही थी, वृद्धगर्गजीने तिसको प्राप्त हो भागुम्हिये जो वहा है तिसको
श्रवण करो ॥ २ ॥ उद्योतिषी और पुरोहिदगर्गोंमें द्वारा राजाको पुष्पस्नान करना
चाहित है. इसके अतिरिक्त पवित्र और सर्व प्रकारके उपपातोंका नाश करनेवाला
दूसरा कोई नहीं है ॥ ३ ॥ श्रेष्ठातक (लसौडा), अक्ष (घरेडा), बं. टवी
(खैर), चारपरे, पडुवे व गन्धर्वांन वृक्ष और उलू व शत्रुने आदि अनिष्टकारी
पक्षियों वरके छोडे हुए, तरुण वृक्ष, लता, गुल्म, पत्ती और बेलसे सांशरेदार
फिये हुए साधत पत्ते और कोपलोंसे मनोहर और मधुर घटुनसे वृक्षगले बनमें
पुष्पस्नान करना उचित है. जिस स्थानमें वृषकाकु (गिरगिट), औरजीरक
(घणेर), तोता, मोर, नृतपत्र (सुटपटई) चाप (नीलकंठ), रारीत (परेरा),
मगर (बेल. डा), पपिञ्जल (चातक), बंजुल (पारिविज्ञेय) और वधूवर और
फूलोंका मधुपान करनेमें मतवाले भ्रमरमण और कोयलादि पक्षियोंका मनोहर शब्द
होता है, वनके समीप ऐसे पवित्र क्षेत्रागारमें इस शान्तिवश करना चाहिये ॥ ४ ॥
॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ अथवा नवन मनको प्रसन्न करनेवाले जलवासी पक्षियोंके

पुलिनजघनेषु कुर्याद्द्वन्द्वनसोः प्रीतिजननेषु ॥ ८ ॥ ॥ प्रोत्प्लुतहंसच्छत्रे कार
वकुररसारसोर्द्धाते । फुल्लेन्दीवरनयने सरसि सहस्राक्षकान्तिधरे ॥ ९ ॥ प्रोत्
कमलवदनाः । कलहंसकलस्वनप्रभापिण्यः । प्रोत्तुङ्गकुडलकुचा यस्मिन्नसि
विलासिन्यः ॥ १० ॥ कुर्याद्गोरोमन्थजफेनलवशल्लतखुरक्षतोपचिते । अति
प्रसूतहुंकृतवल्लितवत्सोत्सवे गोष्ठे ॥ ११ ॥ अथवा समुद्रतीरे कुशलापनो
रवसम्बाधे । धननिचुललीनजलचरसितखगशबलीकृतोपान्ते ॥ १२ ॥ शन
क्रोध इव जितः सिंहो मृग्याभिभूयते यत्र । दत्ताभयखगमृगशावकेषु तेषाम्
व्यथवा ॥ १३ ॥ काञ्चीकलापनूपुरयुरुजवनोद्ग्रहनाविघ्नितपदाभिः । श्रीम
मृगेशणाभिर्गृहेऽन्यभृतवल्गुवचनाभिः ॥ १४ ॥ पुण्येष्वायतनेषु
तीर्थेषूपयानरम्यदेशेषु । पूर्वोदङ्गुवभूमौ प्रदक्षिणाम्भावहायां च ॥ १५ ॥

नखविक्षत नदीरूप कामिनीकी पुलिनरूप मनोहर जांघोंपर यह शान्ति करनी चाहिये
॥ ८ ॥ या खिले हुए कमलरूप वदनवाली, कलहंसकी कलनादरूप वाक्पात्र
और पद्मके मुकुल (कली) रूप ऊँचे स्तनवाली नालिनीरूप विलासिनिये जात
वर्तमान हैं, उड़ते हुए हंसही जिसका छत्र है, कारण्डव, कुरर और सारस पक्षियों
ध्वनिसे जो गानेके युक्त हैं, प्रकुल इन्दीवर रूपवाले, अतएव सहस्राक्ष इन्द्र
समान रूपधारी पवित्र सरोवरके तीरपर शान्ति करनी चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥
अथवा गायोंके जुगारनेसे फेन गिरा है, खुरोंसे ताड़ित होकर जल
चारों ओर गोबर पड़ा है, जहाँपर नये पैदा हुए बछड़ोंके हुंकार और कूदने का
नेमें उत्सव हो गया है, ऐस गोमोठमें पुण्यस्नान करना चाहिये ॥ ११ ॥ मगर
जहाँपर कुशलसे आये हुए जहाज और रत्नोंके ढेर और घने निचुल (जलज
वृक्ष और जलचर, श्वेत पक्षियोंके लीन होनेसे जहाँका किनारा अनेक रंगध
गया है, उस समुद्रके तीरपर पुण्यस्नान करना चाहिये ॥ १२ ॥ जिस दूर
समाप्ते क्रोध जीत लिया जाता है, वैसेही जिस स्थानमें मृगीगण करके सिंह भिन्न
हैं, जहाँपर पक्षी और मृगोंके बघे निडर होकर घूमते हैं तैसे आश्रममें मर
कांचीकलाप, नूपुर, बड़े २ नितम्बों करके जिनके पांव फिसल रहे हैं अर्थात् मन्द
गतिशालिनी और कोपलके कूकनेकी समान मधुरभाषण करनेवाली मृगनर
ललनाओंसे श्रीमान् गृहमें यह शान्ति करनी चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥ अथ
पवित्र देवमन्दिरमें, तीर्थ या उद्यानके रमणीक स्थानमें या परिरक्षासे

अङ्गरास्युपरतुपकेशश्वभक्तर्कटावासेः । श्वाविन्मूपकविवरेर्वल्मीकैर्या च
यत्का ॥ १६ ॥ धात्री घना सुगन्धा स्निग्धा मधुरा समा च विजयाय ।
वासेऽप्येवं योजयितव्या यथायोगम् ॥ १७ ॥ निष्क्रम्य पुरातनं
रामात्ययाजकाः प्राच्याम् । कीवैर्या वा कृत्वा बलिं दिशींशाधिपायां वा
८ ॥ लाजाक्षतदधिकुसुमैः प्रयतः प्रणतः पुरोहितः कुर्यात् । आवाहनमथ
स्तस्मिन्मुनिभिः समुद्दिष्टः ॥ १९ ॥ आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाभि-
षेणः । दिशो नागा द्विजाश्चैव ये चान्येऽप्यंशभागिनः ॥ २० ॥ आवाहीवं
सर्वानेवं ब्रूयात् पुरोहितः । श्वः पूजां प्राप्य यास्यान्ति दत्त्वा शान्तिं मही-
॥ २१ ॥ आवाहितेषु कृत्वा पूजां तां शर्वरीं वसेयुस्ते । सदसस्त्वमनि-
तं यात्रायां स्वप्नविधिरुक्तः ॥ २२ ॥ अरेऽहनि प्रभाते सम्भारातुपहरेद्यथो-
पुणान् । गत्वावनिप्रदेशे श्लोकाभ्याप्यत्र मुनिर्गीताः ॥ २३ ॥ तस्मिन् मण्ड-

सका जल यहता हो, पूर्व व उत्तरकी ओरकी बहती हुई, क्रमसे नीचेकी भूमिमें
यज्ञान करना चाहिये ॥ १५ ॥ राख, कोपला, हड्डी, ऊपर, तुप, केश, गदा,
तां फांकडा रहता हो, हस्तारे जंतु और चुहोंके मदक जहां नहीं हों, जहांपर बमई
हो, जिस स्थानकी भूमि घनी, मुगन्धित, चिकनी, मधुर और बराबर हो बही
में विजयकी कारण है; छावनीमेंभी

१६ ॥ १७ ॥ देवह, मंत्री और य

त्तर दिशामें या ईशानकोणमें जाय, इसका आवाहन मंत्र मुनियोंने इस प्रकार
कहा है,—"जो देवता लोग इसमें पूजा चाहते हैं; जो दिशा नाग, ब्राह्मण व
और जो कोई अंशके भागी हों, वह सबही आगमन करें" ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥
उसके उपरान्त पुरोहित इस प्रकार सबको बुलाय ऐसा कहे,—"आप लोग आने-
वाले फलको शुभ पूजा प्राप्त कर राजाको शान्ति दे चले जाय" ॥ २१ ॥ बुलाये हुए
देवताओंकी पूजा करके सबको वह रात्रि वहाँपर बितानी चाहिये. रात्रिमें जो स्वप्न दिखाई
दे, उसका शुभाशुभ फल निरूपण करना चाहिये. यह विषय यात्राध्यायमें कहा है ॥ २२ ॥
दूसरे दिन प्रभातको कहे हुए द्रव्य लाय, उस पृथ्वीमें जाय जो जो करना चाहिये
तिस विषयमें मुनिके गाये ये श्लोक हैं— "विद्वान् पुरोहित वहांपर मंडल खेंचकर
तिसमें अनेक रश्योंकी स्थानवाली पृथ्वीको खेंच और विविध स्थानोंकी कल्पना
करे और यथास्थानमें नाग, यक्ष, पितृ, गन्धर्व, अप्सरा, मुनि और सिद्धोंको धरे.

लमालिख्य कलायेत्तत्र मेदिनीम् । नानारवाकरयतीं स्यान्नानि विविधानि
 च ॥ २४ ॥ पुरोहितो यथास्यानं नागान्यक्षान् सुरान् पितॄन् । गन्धर्वान्
 सन्धेय मुनीन् सिद्धांश्च विन्यसेत् ॥ २५ ॥ ग्रहांश्च सह नक्षत्रै रुद्रांश्च स
 मातृभिः । स्कन्दं विष्णुं विशाखं च लोकपालान् सुरस्रियः ॥ २६ ॥ वर्षिकै-
 र्विविधैः कृत्वा हृद्यगन्धयुणान्वितैः । यथास्वं पूजयेद्विद्वान् गन्धमाल्यागुप्तेभिः
 ॥ २७ ॥ भक्ष्यैरन्यैश्च विविधैः फलमूलामिषैस्तथा । पानकैर्विविधैर्हृद्यैः सुगन्धै-
 रासवादिभिः ॥ २८ ॥ कथयाम्यतः परमहं पूजामस्मिन् यथाभिलिप्तिनादम् ।
 ग्रहयज्ञे यः प्रोक्तो विधिर्ग्रहाणां स कर्तव्यः ॥ २९ ॥ मांसौदनमद्याद्यैः पिशाच-
 दितितनयदानवाः पूज्याः । अभ्यञ्जनाञ्जनतिलैः पितरो मांसौदनश्चापि ॥ ३० ॥
 सामयजुर्भिर्मुनयस्त्वृग्भिर्गन्धैश्च धूपमाल्ययुतैः । अष्टेष्वर्कवर्णैः त्रिमधुरेण चा
 र्घ्येन्नागान् ॥ ३१ ॥ धूपाज्याहुतिमाल्यैर्विबुधान् रत्नैः स्तुतिप्रणामैश्च
 गन्धर्वानप्सरसो गन्धैर्माल्यैश्च सुसुगन्धैः ॥ ३२ ॥ शेषांस्तु सार्ववर्णिकवादिनां
 पूजां न्यसेच्च सर्वेषाम् । प्रतिसरवस्त्रपताकाभूषणयज्ञोपवीतानि ॥ ३३

नक्षत्रोंके साथ ग्रह, मातृकाओंके साथ रुद्र, स्कन्द, विष्णु, विशाख और लोक-
 पालोंके व देवताओंकी स्त्रियोंको उचित स्थानमें बनावे। फिर तिनको अनेक प्रकारके
 रंगोंसे रंगकर, सुगन्धित और डोरेवाली मनोहर माला, चन्दनादि फूल,
 मूल, मांसादि विविध भक्ष्य और सराब, दूध, आसवादि विविध अनेक
 जलके पदार्थोंसे रीतिपूर्वक पूजा करे ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥
 इसमें अभिलषित देवताओंकी जैसे पूजा करनी चाहिये, सो मैं कहता हूं। ग्रहयज्ञ
 ग्रहोंकी पूजामें जो विधि कही है, यहांपर वही कर्तव्य है ॥ २९ ॥ तिसमें मांस,
 पका हुआ अन्न और मत्स्यादिसे पिशाच, दैत्य और दानवोंकी पूजा करनी चाहिये
 अभ्यञ्जन, अञ्जन, तिल, मांस और रंधे हुए अन्नसे पितरोंकी पूजा करनी
 चाहिये ॥ ३० ॥ साम, यजु और ऋग्वेदसे गन्धयुक्त धूप और मालासे मुनिवर
 और अनेक वर्ण व त्रिमधुसे नागकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३१ ॥ धूप, घंटे
 आहुति, माला, रत्न, स्तुति व प्रणाम करके देवताओंको व अत्युत्तम गन्धद्रव्य
 गन्धद्रव्य और मालासे गन्धर्व और अप्सराओंकी पूजा करे ॥ ३२ ॥ शेष
 सबकी सार्ववर्णिक बलिसे पूजा करे। प्रतिसर (हारकी लकड़ी), वस्त्र, पताका

मण्डलपश्चिमभागे कृत्वार्घिं दक्षिणेऽथवा वेद्याम् । आदद्यात्सम्भारान् दक्षान्दीर्घा-
नगर्भांश्च ॥ ३४ ॥ लाजाज्याक्षतदधिमधुसिद्धार्घकगन्धसुमनसो धूवान् ।
गोरोचनाजनतिलान् स्वर्तुंजमधुराणि च फलानि ॥ ३५ ॥ सघृतस्य पायसस्य
च तत्र शरावाणि तैश्च सम्भारैः । पश्चिमवेद्यां पूजां कुर्यात् स्नानस्य सा
वेदी ॥ ३६ ॥ ईस्याः कोणेषु दद्यान् कलशान् सितसूत्रवेष्टितर्थावान् । सर्क्षा-
रवृक्षस्रवफलपिधानान् व्यवस्थाप्य ॥ ३७ ॥ पुष्पस्नानविभिन्नेणापुष्पान-
न्नासा सरवांश्च । पुष्पस्नानद्रव्याणादद्याद्गंगीतानि ॥ ३८ ॥ ज्योतिष्मर्तो
प्रापमाणामभयामाराजिनाम् । जीवां विश्वेश्वरीं पाठां समङ्गान् विजयां तथा
॥ ३९ ॥ सदां च सहदेवीं च पूर्णकोशां शतवतीम् । आरिटिकां शिवां भद्रां
तेषु कुम्भेषु विन्यसेत् ॥ ४० ॥ मालीं क्षेमामर्जां चैव सर्वशीनानि काञ्चनम् ।
मङ्गलपानि यथाज्ञानं सर्वोपध्वो रसांस्तथा ॥ ४१ ॥ रत्नानि सर्वगन्धांश्च विल्वं
च सविकङ्कतम् । प्रशस्तनाम्न्यभ्योपध्वो हिरण्यं मङ्गलानि च ॥ ४२ ॥

भूषण और यक्षोपवीत सप्तकोटी अर्पण करे ॥ ३१ ॥ मण्डलके पश्चिमभागमें
अथवा दक्षिणदिशामें वेदीके ऊपर आग्नि स्थापन करके हुँदा और तब सामग्रीपत्र
दान करे। खीरें, घी, घावल, दही, मधु, सिद्धार्घक, तूलमाला, धूप, गंगोत्पन्न,
अजान, तिल, ऋतुके उत्पन्न हुए मधुर फल और घी व रसांसे भरी हुई सरपोंधे
इस समस्त सामग्रीके साथ अर्पण करे, प्रधानवेदीके पश्चिममें ओ वेदी हो उसही परी
पूजा करनी चाहिये, वही वेदी स्नानवेदी है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ सनरउ
मजबूत फलशोके गलेमें सूत बांध, दुधारे वृक्षके पत्ते और फलसे ढककर उस
वेदीके चारों ओरोंमें व्यवस्थासे रखे। सब फलशोको पुष्पस्नानके विधानमें बड़े
हुए पदार्थोंसे मिले जलसे भरकर सिसमें सब रत्न डाले, गंगोत्पन्ने ओ
पुष्पस्नानकी सामग्री करी है वह यह है—“कंगनी, प्रापमाण, अभया (ईर), अर-
राजिता (कोपल), जीरा (रच), विश्वेश्वरी (सौंड), पाय (पाइ), सवेद्य
(पत्तारन), भंग, राहा (कटुही) सहदेवी (सहदेई), पूर्णकोशा (नागरकोशा), सदा-
वती, आरिटिका (रीठ), शिवा, भद्रा (मोथा), अजा (औषधिरिशेव), शेन
(घोरनामक गन्धद्रव्य), माक्षी (विरभी), सर्वशीव, मुरज, मंगलके द्रव्य, सब
प्रशस्त नामक औषधियें, रत्न, रत्न, सब प्रशस्तके गन्धद्रव्य, बेड, विदेक, व (वंश),
प्रशस्त नामक औषध, मुरज और मङ्गलद्रव्य ओ कुछ द्रव्य पावे जाय वह

तेत्तरमयं च मन्त्रोऽथ मुनिगीतः ॥ ५१ ॥ आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं
 हारं परम् । आज्यं मुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ५२ ॥
 मान्तरिक्षं दिव्यं च यत्ते कित्विषमागतम् । सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात्पणाशमुप-
 लब्धु ॥ ५३ ॥ कम्बलमनीष ततः पुष्पस्नानाम्बुभिः सफलपुष्पैः । अभि-
 श्वेन्मनुजेन्द्रं पुरोहितोऽनेन मन्त्रेण ॥ ५४ ॥ मुरास्त्वामभिपिबन्तु ये च
 ज्ञाः पुरतनाः । ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च साध्याश्च समरुद्रणाः ॥ ५५ ॥
 आदित्या वसवो रुद्रा आश्विनौ च त्रिपग्वरी । अदितिर्देवमाता च स्वाहा-
 सिद्धिः सरस्वती ॥ ५६ ॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
 दुश्च मुरसा चैव विनता कदुरेव च ॥ ५७ ॥ देवपत्न्यश्च या नोक्ता देवमातर
 ः च । सर्वास्त्वामभिपिबन्तु दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ ५८ ॥ नक्षत्राणि
 इर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः । संवत्सरा दिनेशाश्च कला काष्ठाः क्षणा लवाः
 ५९ ॥ सर्वे त्वामभिपिबन्तु कालस्यावयवाः शुभाः । विमानिकाः मुर-
 गा मनवः सागरैः सह ॥ ६० ॥ सप्तर्षयः सप्ताराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च ।

। तने अधिक होंगे उतनाही गुण अधिक मदेगा. इस विषयमें मुनिका कहा हुआ
 मन्त्र है,—“आज्य (घी) ही परम तेज है, आज्यही श्रेष्ठ और पापका नाश
 नेशाला है, आज्यही देवताओंका आहार और समस्त लोक आज्यमेंही प्रतिष्ठित
 रहे हैं. हे राजन् ! भौम, आन्तरिक्ष और दिव्य जो समस्त पाप आपको
 परहित हुए हैं, वह समस्त आज्यको लेकर नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥
 । पुरोहित राजाके शरीरसे कम्बलको उतारकर फल और पुष्पयुक्त पुष्पस्नानके
 । तमें राजाका अभिषेक करे. तिसरा विषयका मंत्र यह है—“ ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु,
 रुद्र, साध्य और जो देवता सिद्ध व पुरातन हैं वह तुम्हारा अभिषेक करें.
 आदित्य, वसु, रुद्र, वैद्योंमें श्रेष्ठ दोनों आश्विनीकुमार, देवताओंकी माता अदिति,
 स्वाहा, सिद्धि, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, श्री, सिनीवाली, कुहू, दुश्च, मुरसा,
 विनता, कदु, देवताओंकी माताएं और दिव्य अप्सराएं यह सब तुम्हारा अभिषेक
 करें. नक्षत्र, मुहूर्त, पक्ष, दिवा, रात्रि, सन्ध्या, संवत्सर, श्रेष्ठ दिन, कला, काष्ठा,
 क्षण और लव आदि कालके शुभ अंग तुम्हारा अभिषेक करें. विमानमें बैठनेवाले
 देवतागण, सागर, मनु, क्षियोंके साथ सातों ऋषि, समस्त ध्रुवस्थान, मरीचि,
 अग्नि, पुलह, पुलस्त्य, कदु, अंगिरा, ऋषि, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन,

शास्त्रज्ञः शान्तिमादिशेद्राज्ञः । शस्तनिमित्तः पट्टो नृपराष्ट्रविवृद्धये त्ववि ॥ ८ ॥
इति श्रीवराहमिहिरकृतो बृहत्सं० पट्टलक्षणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

खड्गलक्षण ।

अंगुलशतार्धमुत्तम ऊनः स्यात्पञ्चविंशतिं खड्गः । अंगुलमानाज्ज्ञेयो व्रणे
ऽशुभो विषमपर्वस्थः ॥ १ ॥ श्रीवृक्षवर्द्धमानातपत्रशिवलिङ्गकुण्डलाग्नानाम् ।
सदृशा व्रणाः प्रशस्ता ध्वजायुधस्वस्तिकानां च ॥ २ ॥ कृकलासकाककङ्क-
व्यादकबन्धवृश्चिकारुतयः । खड्गे व्रणा न शुभदा वंशानुगाः प्रभूताश्च ॥ ३ ॥
स्फुटितो ह्रस्वः कुण्ठो वंशच्छिन्नो न दृढ्मनोऽनुगतः । अस्वन इति वानि-
प्रोक्तविपर्यस्त इष्टफलः ॥ ४ ॥ कणितं मरणायोक्तं पराजयाय परत-
कोशात् । स्वयमुद्गीर्णे युद्धं ज्वलिते विजयो भवति खड्गे ॥ ५ ॥ नाकार-
जाननेवाले शान्तिकी आज्ञा दे, जिस मुकुटमें किसी प्रकारके अशुभ चिह्न नहीं
होते, तिसके धारण करनेसे राजाका राज्य बढ़ता है ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुद्रा-
वाद्वास्तव्य-पंडितवलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकाया-
मेकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पचास अंगुलके प्रमाणका खड्ग उत्तम है, पच्चीस अंगुलके परिमाणका वह
अधम है। अंगुलिके परिमाणसे इसमें व्रणको जानना चाहिये, यदि विषम अंगुलके
परिमाणमें अर्थात् ३।५।७।९ आदिमें व्रण हो तो अशुभ है ॥ १ ॥
श्रीवृक्ष, वर्द्धमान, आतपत्र, शिवलिङ्ग, कुण्डल, कमल, ध्वज, आयुध और स्वस्ति
ककी समान दाग शुभदायी है ॥ २ ॥ गिरगिट, काक, गिद्ध, कृक्याद, इन्व
वा विच्छूके आकारका अथवा वांसकी समान बहुतसे दागवाला खड्ग अशुभ
नहीं होता ॥ ३ ॥ फूटा हुआ, छोटा, खुटला, वंशछिन्न, दाँष्ट और मनसे
अच्छा लगनेवाला और शब्दराहित खड्ग अनिष्टकारी है। इससे विपरीत हो तो
फलका देनेवाला है ॥ ४ ॥ अचानक खड्गमेंसे शब्द हो तो मरणका कारण है।
म्यानसे खटखटानेपर पराजय, स्वयं म्यानसे निकल पड़े तो युद्ध और मरण
का कारण हो तो विजय होती है ॥ ५ ॥ राजाको चाहिये कि बंधा खड्ग को न म्यानसे

विवृणुयान्न विवट्टयेच्च पश्येन्न तत्र वदनं न वदेच्च मूल्यम् । देशं न
चांस्ये कथयेत् प्रतिमानयेच्च नैव स्पृशेन्नृपतिरप्रयतोऽसियाष्टिम् ॥ ६ ॥
गोजिह्वासंस्थानो नीलोत्तलवंशपत्रसदृशश्च । करवीरपत्रशृङ्गाग्रमण्डलाग्राः प्रश-
स्ताः स्युः ॥ ७ ॥ निषंजो न च्छेदो निकपेः कार्यः प्रमाणयुक्ताः सः । मूले
त्रियते स्वामी जननी तस्याग्रतश्छिन्ने ॥ ८ ॥ यस्मिन् तत्परुषदेशो व्रणो भवेत्त-
द्देव खड्गस्य । वनितानामिव तिलको गुह्ये वाच्यो मुखे दृष्टा ॥ ९ ॥ अथवा
स्पृशति यदङ्गं प्रष्टा निर्विशन्नृचदवधार्य । कोरस्यस्यादेशयो व्रणोऽस्ति शास्त्रं
विदित्वेदम् ॥ १० ॥ शिरसि स्पृष्टे प्रथमेऽंगुले द्वितीये ललाटसंस्पर्शे । भ्रूमध्ये
च तृतीये नेत्रे स्पृष्टे चतुर्थे च ॥ ११ ॥ नासोष्ठकपोलहनुभ्रवणमीवांसकेषु
पञ्चाद्याः । उरसि द्वादशसंस्थस्योदरो कक्षयोर्ज्ञयः ॥ १२ ॥ स्तनहृदयोदरकुक्षी-
निकाले या न दिलावे कुलावे, तिसमें मुख न देखे, तिसका मुख्य न कहे,
इसकी उत्पत्तिक देश न बतावे और अपवित्र होकर उसको नहीं छुए ॥ ६ ॥
गायकी जीभके समान आकरवाला, नोले कमल और वंशके पत्रकी समान,
केरके पत्तेकी समान, शूलग्र और मंडलाग्र यही सब खड्ग अच्छे हैं ॥ ७ ॥
ऊपर कहे हुए प्रमाणवाले खड्गोंका कसीटीसे परीक्षा करना या काटना उचित
नहीं है, खड्गकी नोक टूट जाय तो खड्गके स्वामीकी और मूठ टूट जाय तो खड्गके
मालिककी माता मरे ॥ ८ ॥ जिस प्रकार खियोंके मुखपर तिल देखकर उनके
गुप्तस्थानमें भी तिल कहे जा सकते हैं, वैसेही खड्गकी मूठमें हुए दागोंको देखकर,
खड्गमें व्रण कहे जा सकते हैं ॥ ९ ॥ खड्गधारी पूछनेवाला (इस खड्गके किस
स्थानमें व्रण है बताओ ऐसा पूछकर) जिस अंगको छुए दैवज्ञ तिसका निश्चय
करके इस शस्त्रज्ञानके शास्त्रके अनुसार स्थानमें पड़े हुए खड्गमें कहां २ व्रण हैं सो
बता सकेगा ॥ १० ॥ जो पूछनेके समय प्रश्नका करनेवाला मस्तकको छुए तो
कहना चाहिये कि खड्गके प्रथम अंगुलमें व्रण है, ललाट छुए तो दूसरे अंगुलमें,
भौवाँके बीचमें छुए तो तीसरे अंगुलमें, नेत्रोंको छुए तो चौथे अंगुलमें व्रणका
होना कहना चाहिये ॥ ११ ॥ जो प्रश्न करनेवाला नासिका, ओठ, गाल, ओढ़ी,
कान, गरदन या अंसकन्ध स्थानोंको छुए तो क्रमसे पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें,
नववें, दशवें और ग्यारहवें अंगुलमें व्रणका होना बताना चाहिये- उरके छुनेसे
बारह अंगुलमें और दोनों कोखोंके छुनेसे तेरह अंगुलके स्थानमें व्रणका होना
बतावे ॥ १२ ॥ स्तन, हृदय, उदर, कोख या नामीका स्पर्श करनेसे क्रमानुसार

नाभीपु चतुर्दशादयो ज्ञेयाः । नाभ्यामूले कट्यां युह्ये चकोनविंशतिः ॥ ११ ॥
 ऊर्वोर्द्वाविंशे स्यादूर्वोर्मध्ये व्रणस्रयोर्विंशे । जानुनि च चतुर्विंशे जङ्घायां पञ्चविंशे
 च ॥ १४ ॥ जङ्घामध्ये गुल्फे पाण्यां पादे तदंगुलीष्वपि च । पञ्चविंशतिस्तद्विंशति
 पञ्चविंशति मतेन गर्गस्य ॥ १५ ॥ पुत्रमरणं धनाभिर्धनहानिः सम्पदश्च वन्धनम् ।
 एकादशंगुलसंस्थैर्वर्णैः फलं निर्दिशेत् क्रमशः ॥ १६ ॥ सुतलाजः कटहो हस्तौ
 लब्धयः पुत्रमरणधनलाभौ । क्रमशो विनाशवनितामिचित्तदुःखानि पद्मपुत्रे ॥ १७ ॥
 लब्धिर्हानिर्घ्नौ लब्धयो वधो वृद्धिमरणपरितोषाः । ज्ञेयाभ्युदयशक्तिः
 धनहानिर्धैकविंशे स्यात् ॥ १८ ॥ वित्तातिरानिर्वाणं धनागमो मृत्युमृत्युः
 स्वत्वम् । ऐश्वर्यमृत्युराज्यानि च क्रमाविंशति यावत् ॥ १९ ॥
 परतो न विशेषफलं विषमसमस्थास्तु पापशुभफलदाः । कैश्चिदफलाः पञ्चविंशति

चौदहसे लेकर अठारह अंगुलतकके स्थानमें व्रण बतावे। नाभिकी जड़में, कमर के
 गुह्यस्थानके स्पर्श करनेसे क्रमानुसार उन्नीस बीस और इक्कीस अंगुलमें व्रण हो
 है ॥ १३ ॥ दोनों ऊरुके स्पर्श करनेसे २२ वें अंगुलमें और दोनों उतरे
 मध्य स्थान स्पर्श करनेसे २३ वें अंगुलमें व्रण होता है, जानुके सन्धि
 २४ और जंघाके स्पर्शसे २५ अंगुलमें व्रण होता है ॥ १४ ॥ तिसरमें
 जो पृष्ठनेवाला दो जांघोंके मध्यमें, टंकला, एड़ी पांव और पांवोंकी अंगुल
 इनमेंसे किसी अंगको स्पर्श करे तो क्रमानुसार छब्बीस अंगुलसे लेकर तीस
 अंगुलतकके स्थानमें व्रणका होना निरूपण करे यह गार्गाचार्यका मत कहा है
 ॥ १५ ॥ जो खड्गका व्रण एक अंगुलसे लेकर पांच अंगुलतक हो तो क्रमानुसार
 यह फल होता है;—पुत्रमरण, धनलाभ, धनहानि, सम्पत्ति और वन्धन ॥ १६ ॥
 पुत्रलाभ, क्लेश, हस्तिलाभ, पुत्रमरण, धनलाभ, विनाश, स्त्रीप्राप्ति और विषम
 दुःख यह क्रमानुसार पडादि अंगुलके व्रणका फल है ॥ १७ ॥ लाभ, दुःख,
 स्त्रीलाभ, वध, वृद्धि, मरण और संतोष यह फल क्रमानुसार चौदहसे आदि व्रण
 २० अंगुलमें व्रण हो तो उसके फल जानने चाहिये। २१ अंगुलमें व्रण होने
 धनकी हानि होती है ॥ १८ ॥ धनकी प्राप्ति, अनिर्वाण, धनागम, मृत्यु,
 सम्पत्ति, निर्धनता, ऐश्वर्य, मृत्यु और राज्य यह फल क्रमशः बीस अंगुल
 लेकर तीस अंगुलतक नौ अंगुलवाले व्रणका फल है ॥ १९ ॥ इसके पीछे कोई
 कोई फल नहीं कहा है तौमी विषम अंगुलमें व्रणका होना अशुभ फल और
 सममें होनेसे शुभ फल देता है और कोई कहते हैं कि तीस अंगुलके

त्रिंशत्तरतोऽप्रमिति यावत् ॥ २० ॥ कंरवीरोत्पलजमदधृतकुंकुमकुन्दचम्प-
कसगन्धः । शुभदोऽनिष्टो गोमूत्रपङ्कमेदः सदृशगन्धः ॥ २१ ॥ कूर्मवसासृक्शारो-
पमभ्य भयदुःखदो भवति गन्धः । वैदूर्यकनकविशुध्यजो जयारोग्यवृद्धिकरः
॥ २२ ॥ इदमौशनसं च शस्त्रपानं रुधिरं भ्रियमिच्छतः प्रदीक्षाम् । हविषा
गुणवत्सुताभिलिप्सोः सलिलेनाक्षयमिच्छतश्च विचम् ॥ २३ ॥ वडयोद्भ्रकरे-
णुदुग्धपानं यदि पापेन समीहतेऽर्थसिद्धिम् । झपापित्तमृगाश्ववस्तदुग्धैः करि-
हस्तच्छिदये सतालगर्भैः ॥ २४ ॥ आर्कपयो हुडुविपाणमपीसमेतं पारावता-
खुरकता च युतं प्रलेपः । शस्त्रस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं पश्चाच्छित्तस्य
न शिलासु भवेद्विघातः ॥ २५ ॥ क्षारे कदल्या माथितेन युक्ते दिनोपिते
पायितमायसं यत् । सम्यक् छितं चारुमणि नैति भङ्गं न चान्यलोहेष्वपि
तस्य कौण्ड्यम् ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकनो बृहत्सं० खड्गलक्षणं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

शेषवक कित्ती स्थानमें व्रण हो तो कित्ती प्रकारका विशेष फल नहीं होता
॥ २० ॥ कनेर, उत्पल, द. थोका मद, घी, कुंकुम, कुन्द या चम्पाकी समान
गन्धवाला खड्ग हो तो शुभ फलदायी होता है, परन्तु गोमूत्र, पंक या मेदकी
समान गन्ध आती हो तो अनिष्टकारी होता है ॥ २१ ॥ कूर्म, वसा, रक्त या
क्षारकी समान गन्ध आनेसे भय और दुःखका देनेवाला होता है, जो खड्गमें वैदूर्य,
सुवर्ण और बिजलीकी समान चमक हो तो जय और आरोग्यका बढ़ानेवाला होता
है ॥ २२ ॥ मिनकी लक्ष्मीके प्राप्त करनेकी इच्छा है, उनको अपने शस्त्रोंपर रुधि-
रसे पान देना चाहिये, गुणवान् पुत्रके प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालेके शस्त्रपर
घृतसे पान देवे और अक्षय विचको चाहनेवालेके खड्गपर जलकी पान होनी
चाहिये ऐसा शुक्राचार्यके बनाये शास्त्रका मत है ॥ २३ ॥ जो घोड़ी, ऊंटनी और
इपनीके दूधसे पान दी जाय तो पापकार्यसे भलीभांति अर्थकी सिद्धि होती है.
मत्स्यापित्त, मृग, अश्व और छाग दुग्धके साथ तालमेथीके रसमें पान देनेसे
शायीकी शृङ्गभी काट डाली जा सकती है ॥ २४ ॥ पहिले शस्त्रपर तेल मले फिर
आग वृक्षका गोंद, मेपके सोंगकी मसम और कबूतर व चूहेकी बीट मिलायकर शस्त्रके
ऊपर लेप करे फिर तिसको तेज करके पत्थरकेभी ऊपर मारे तोभी उसकी धार नहीं
टूटती है ॥ २५ ॥ कदली वृक्षका (मूळका) क्षार और मछा मिलायकर एक दिन

अथैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

अंगविद्या.

देवज्ञेन शुभाशुभं दिव्यदितस्थानाहृतानीक्षता वाच्यं
 चालोक्य कालं धिया । सर्वज्ञो हि चराचरात्मकतयासौ सर्वज्ञो
 ग्राह्यतीर्थः शुभाशुभफलं सन्दर्शयत्यर्थिनाम् ॥ १ ॥ स्थानं
 तूरिफलभृत्सुखिग्धकृत्तिच्छदासत्पक्षिच्युतशस्तसंज्ञिततरुच्छायोन्मू
 ष्वर्षिद्विजसाधुसिद्धनिलयं सत्पुष्पसस्योक्षितं

रख छोड़े फिर लोहेका बना हुआ खड्ग उसको पिये फिर उस खड्गसे
 पत्थरपरभी मारे तो वह नहीं टूटेगा और लोहेपरभी मारनेसे वह लोहा
 नहीं होगा ॥ २६ ॥

इति श्रीवाराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशोक्त
 दावादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकान्त
 पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

शास्त्रोंमें कहा हुआ दिशाओंका ज्ञान लाये हुए पदार्थोंके फलनेसे
 छोग मश्र करनेवालेका अंग, अपना अंग और दूसरेके अंगोंकी घटना
 शुद्धिसे शुभ व अशुभ फलको कह सकते हैं. स्थावर जङ्गमादि पदार्थोंके
 भलीभाँतिसे ज्ञान है, इससे देवज्ञ सर्वज्ञानी, सब कुछ देखनेवाला,
 वर्षात् नारायणजीकी समान है. क्योंकि इसी चेष्टा और
 करनेसे अर्थ चाहनेवाले पुरुषोंके शुभाशुभ फल दिखाते हैं ॥
 जो स्थान हूलरूपी मुन्दर मुसकानसे युक्त है, बहुतसे फलोंसे भरा हुआ,
 छाड़गाले, बुरे पक्षियोंसे शून्य, श्रेष्ठ नामको प्राप्त हुए वृक्षोंसे युक्त है,
 जो देवता, ऋषि, द्विज और सिद्धोंके रहनेकी वासभूमि है; जहाँपर धान्य
 और धान्य व्याप्त है, स्वादिष्ट जलकी निर्मलता करके उत्पन्न हुए हैं
 मुन्दर नगान तिनकोंके लगे रहनेसे हरे वर्णगाला स्थानही मश्र करनेके लिये है

१ अंगविद्यापिटकलक्षण भोते द्वाध्यायी न सर्ववादिसम्मतौ । यतोऽङ्गविद्या
 " अङ्गः केचित्तदङ्गविद्या पठन्ति । आपार्येण प्रागेवाक्तं " वास्तुविद्याङ्गविद्योने । अङ्ग
 विद्यायाऽङ्गविद्या " इति, पिटकलक्षणप्रारम्भे च— " अङ्गः परमपि कोपेन पिटकलक्षण
 नद्वयस्य अङ्गविद्यायने " इति दीक्षाकृता महोत्पलेनोक्तम् । तेनाध्यायसंख्या ॥ १ ॥

छादुलम् ॥ २ ॥ छिन्नभिन्नरुमिखातकण्टकिप्लुष्टक्षकुटिलेन सत्
 ॥ क्रूरपक्षिपुतनिन्धनामभिः शुष्कशीर्णबहुपर्णमर्मभिः ॥ ३ ॥ श्मशा-
 यतनं चतुष्पथं तथामनोत्तं विषमं सदोपरम् वस्कराङ्गारकपा-
 तिभित्तं वृषेः शुष्कतूर्णेन शोभनम् ॥ ४ ॥ प्रवजितनग्रनापितरि-
 नसूनिकैस्तथा श्वपचैः । कितवयतिपीडितैर्युतमायुधमाध्वीकविक्रयेन
 ॥ ५ ॥ मायुत्तरेशाभ दिशः प्रशस्ताः प्रष्टुर्न वाप्यम्बुयमागिरक्षः ।
 कालेऽस्ति शुभं न रात्रौ सन्ध्यादये प्रश्नलतोऽपराहे ॥ ६ ॥ यात्रा-
 ने हि शुभाशुभं यत् प्रोक्तं निमित्तं तदिहापि वाच्यम् । दृष्ट्वा पुरो
 नताहतं वा प्रष्टुः स्थितं पाणितलेऽथ वसे ॥ ७ ॥ अथाङ्गान्पूर्वोऽस्तनवृ-
 षादं च दशना भुजौ हस्तौ गण्ठौ कचगलनखांशुप्रमपि यत् । सशंसं
 त्तिभवणयुदसन्धीति पुरुषे स्त्रियां भूनासास्फिग्वलिकटिसुलेखांशुलिचयम्
 : ॥ जिह्वा ग्रीवा पिण्डके पाष्णियुग्मं जंघे नाभि कर्णपाली लुकादी ।

ती हैं ॥ २ ॥ जिस स्थानमें छिन्नभिन्न कीड़ोंके लाये, कांटेदार, जले हुए
 और कुटिल वृक्ष लगे हों, जो स्थान क्रूर पक्षियोंसे घिरा हुआ हो, घुरे नाम
 के, दुपले, बहुत सारे पचेही हैं मानो जिनका मर्म ऐसे वृक्ष लगे हों, वह स्थान
 शुभ है ॥ ३ ॥ जो स्थान चौराहा मसानकी समान सूने गृहसे युक्त, मनको न
 नेवाला, देहा, सदा ऊपर रहनेवाला, जहाँ किसीका वास न हो, कोयला आद-
 की खोपड़ी और सूखे तिनकोंसे व्याप्त है सो शुभदायी नहीं होता है ॥ ४ ॥
 सार्ई, नागा, नार्ई, शत्रु, बन्धन, कसार्ई, चाण्डाल, शठ, यति और पीडित
 गोंसे जो स्थान युक्त है और आयुध और मदकी विक्रीका जो स्थान है सो
 नकारी नहीं है ॥ ५ ॥ पूर्व, उत्तर, ईशानकोण, मश्र करनेवालेके लिये श्रेष्ठ हैं,
 न्दु वायु, पश्चिम, दक्षिण और नैऋत दिशा अच्छी नहीं है. रात्रिकाल, दोनों
 न्ध्या और अपराह्नमें मश्र करना शुभ नहीं होता ॥ ६ ॥ यात्राकी विधिमें जो
 भाशुम निमित्त कहे गये हैं, पूछनेवालेके सामने लाये हुए या उनके हाथ वस्त्रके
 देकर उनका शुभाशुभ कहना चाहिये ॥ ७ ॥ ऊरु, होंठ, स्तन, अंडकोश,
 व, दांत, भुजा, हाथ, कपोल, केश, गला, नख, अंगूठा, शंख, कन्धा, कन,
 दा जोड़के स्थान यह पुरुषसंज्ञावाची शब्द हैं. भौं, नासिका, स्फिक (कमरका
 त पिंड), कमर और मुन्दर रेखावाली अंगुलियें स्त्रीनामवाची हैं और जीभ,

न्यतनयानाम् । द्विचतुष्पदाक्षितीनां विनाशतः कीर्तिर्दिष्टैः ॥ १६ ॥ न्यग्रोधमधु-
कतिन्दुकजम्बुपुष्पाप्रवदरिजातिफलैः । धनकनकपुरुषलोहांशुकस्तप्योदुम्बरा-
नेरापि करमैः ॥ १७ ॥ धान्यपरिपूर्णपात्रं कुम्भः पूर्णः कुटुम्बवृद्धिकरो ।
गजगोधुनां पुरीषं धनयुवातिसृहाद्विनाशकरम् ॥ १८ ॥ पशुहस्तिमाहिपङ्कज-
रजतव्याघ्रैर्लभेत सन्दष्टैः । अविधननिवन्तनमलयजकौशेयाभरणसंघातम् ॥ १९ ॥
पृच्छा वृद्धश्रावकस्तुपरिमाद्दर्शने नृभिर्विहिता । मित्रद्यूतार्थभवा गणिकानृप-
सूतिकायं कृता ॥ २० ॥ शास्त्रोपाध्यायाहृतनिर्ग्रन्थनिमित्तनिगमकैर्वर्तैः । चार-
चमूपातिवणिजां दासीयोद्धारणस्थवध्यानाम् ॥ २१ ॥ तापसे शौण्डिके दृष्टे
भोषितः पशुपालनम् । हृदयं पृच्छकस्य स्यादुज्ज्वलवृत्तौ विपन्नता ॥ २२ ॥
इच्छामि ग्रहं भग पश्यत्वार्यः समादिशेत्तुके । संयोगकुटुम्बोत्पत्त्या लाभैर्वर्षाद्रिता

दुपायोंका नाश, चौपायोंका नाश और पृथ्वीके नाशकी चिन्ता कहनी चाहिये
॥ १६ ॥ १६ ॥ जो प्रश्न करनेके समय प्रश्नकर्त्ताके हाथमें वड, महुआ, तेन्दू,
जामन, पिलखन, आम, बेर और जायफल हो तो क्रमानुसार धन, सुवर्ण, पुरुष,
लोह, वज्र, चांदी और तांबेकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ धान्यपरिपूर्ण पात्र और
भरे हुए घडेके देखनेसे कुटुम्ब बढ़ता है। हाथीकी लीद, गायका गोबर और
कुत्तोंकी विष्ट देखनेसे धन, युवाति और मुहर्दोंका विनाशकारी प्रश्न जानना
चाहिये ॥ १८ ॥ जिस कालमें पशु, हाथी, माहिप, पंकज, चांदी और व्याघ्रके
दिखाई देनेसे क्रमानुसार मेघ, धन, मेडके ऊनका बना हुआ कंबल, चन्दन, रेश-
मीन बस्त्र और गहनोंके लाभकी चिन्ता होती है ॥ १९ ॥ वृद्धश्रावक (जैनसं-
न्यासी) का दर्शन होनेसे मनुष्योंकी मित्र, द्यूत और धनकी चिन्ता, संन्यासीका
दर्शन पानेसे बेश्या, राजा, वध्या और धनकी चिन्ता कहनी चाहिये ॥ २० ॥
शास्त्र, उपाध्याय, अहृत, निर्ग्रन्थ, निमित्त, निगम और धर्मरत्ने दिखाई देनेसे
क्रमानुसार चोर, सेनापति, वणिक, दासी, योद्धा, दुकानदारीके द्रव्य और वध-
सम्बन्धी चिन्ता जाननी चाहिये ॥ २१ ॥ तापस या कलालके दिखाई देनेसे
प्रश्नकारीको परदेशमें गये हुए पुरुषकी और पशुपालनकी चिन्ता होती है और
उंड (भूमिपर गिरे हुए एक २ दानेके इकट्ठे करनेका नाम उंड है) वृत्तिसे जीवन
धारण करनेवाले मुनि आदि दिखाई दें तो विपत्ति पड़नेकी चिन्ता होती है ॥ २२ ॥
“ मैं पूछनेकी इच्छा करता हूं ” “ कहिये ” “ दर्शन करिये ” और “ आप
मला भांतिसे आज्ञा दीजिये ” यह वाक्य कहे जानेपर संयोग, कुटुम्बसे उत्पन्न

चिन्ता ॥ २३ ॥ निर्दिशेति गदिते जयाध्वगा ...
 आशु सर्वजनमध्यगं त्वया दृश्यतामिति बन्धुचौरजा ॥ २४ ॥
 स्वजन उदितो बाह्यजे बाह्य एवं पादांयुष्ठांयुल्लिखनस्य
 स्यात् । जंवे प्रेष्यो भवति भागिनी नामितो हृत्स्वभार्या
 यकृतस्पर्शने पुत्रकन्ये ॥ २५ ॥ मातरं जठरे मूर्ध्नि युं ॥
 बाहू भाताथ तत्पत्नी स्पृष्ट्वैव चौरमादिशेत् ॥ २६ ॥
 बाह्यगस्पर्शनं यदि करोति पृच्छकः । श्लेष्ममूत्रशकृतस्यजप्रः
 लस्थवस्तु चेत् ॥ २७ ॥ भृशमवनामिताङ्गपरिमोदनतोऽप्यथा
 कृताण्डमवलोक्य च चौरजनम् ।
 यानिदरवतो लभते न हतम् ॥ २८ ॥ निगदितमिदं यत्तत्तत्र तु
 रिकैः सह मृत्तिकरं पीडार्तानां समं रुदितश्रुतैः । अवयवमपि रसा

इमा लाम और धनकी चिन्ता होती है ॥ २३ ॥ " मलीभांतेसे रिकन
 मनोरय कहिये " और " बताइये " यह कहे जानेसे जय और मानके
 होती है. और " आप शीघ्रही देखिये " यह बात सन आशुमेतो
 बैठे हुए ज्योतिषीमे कही जाय तो बन्धु और चोरकी चिन्ता होती है ॥
 भीतरका भंगसाशं किया जाय तो स्वजनकी चिन्ता कही जाती है, बाह्य
 स्पर्श को तो बाहरके मनुष्यकी चिन्ता होती है. पांरका भंगूया या तब
 छिने हुए जाय तो दागदागीजनकी चिन्ता होती है, मंगके हाथमे
 पुत्र, नामिके स्पर्शमे बहन, हृदयके स्पर्शमे भायां, हाथके भंगूये या
 स्पर्शमे पुत्र व स्त्रियाकी चिन्ता होती है । मश्नरुत्तां पेट धुप तो माता, बा
 तो पुत्र, दाया या माया हाथ धुप तो भ्राता और निगरी भायके
 निगरे सने ॥ २२ ॥ २३ ॥ जो पुछनेवाला भीतरके भंग जो
 जेठे धे पूर भयता श्लेष्म, मूत्र और निद्रा त्याग करने २ हाथमे धे ॥ २४ ॥
 जेठे धे, गुर्मेके बंधु भुछे या माउस्यमे आछ तो है, छिरी म
 एदने होत बंधे देत, चोर हो देत भयता मन्त्रके मन्त्र हर डीग, जे
 रद कया, नुड मया, नड हो गया, दूद गया, चोरी गया और न मया
 कंधु टपक हो तो जेठे गदे मूत्र छिदर नहो मिडती ॥ २५ ॥ २६ ॥
 चनेन छिदर कहे कहे जो इन सबके भाव भुप, ६ठे, निग और

इरेदातिबहु तदा भुक्त्वा भं संस्थितः सुहितो वदेत् ॥ २९ ॥ लला
च्छूकदर्शनाच्छालिजौदनम् । उरःस्पर्शात् पाटिकाभं ग्रीवात्पर्श
म् ॥ ३० ॥ कुत्तिकुचजठरजानुत्पर्शे माषाः पयास्तिलयवाग्वः
नादयतभीष्ठी लिहतो मधुरं रसं ज्ञेयम् ॥ ३१ ॥ विस्पृके स्फोटयेज्जिह्वा
वक्त्रं विकूणयेत् । कटुतिक्तकषायोष्णहिकित्वा ग्रीवे च तेन्धवे ॥ ३२ ॥
त्यागे शुष्कतिकं तदल्पं श्रुत्वा कव्यादं प्रेक्ष्य वा मांसमिधम् । भृगुण्वी-
ने शाकुने तद् भुक्तं तेनेत्युक्तमेतन्निमित्तम् ॥ ३३ ॥ मूर्द्धगलकेशहतुशं-
जङ्घं वस्ति च स्पृष्ट्वा । गजमहिपमेपशूकरगोधशमृगमांसयुग्भुक्तम्
४ ॥ दृष्टे श्रुतेऽप्यशकुने गोधामत्स्यामिषं वदेद्भुक्तम् । गर्भिण्या गर्भस्य च
नमेवं प्रकल्पयेत्प्रश्ने ॥ ३५ ॥ पुंस्त्रीनपुंसकाख्ये दृष्टेऽनुमिते पुरःस्थिते
१ छौंकका शब्द हो तो रोगियोंका मरण होता है, जो पूछनेवाला भीतरके
गर्भको छूकर श्वास लेवे तब भोजन बहुत करनेसे मश्न करनेवाला घृत हो रहा
यातको देवता प्रकाश करे ॥ २९ ॥ पूछनेवाला माषेको स्पर्श करे और
त्याका दर्शन करे तो शौटोका चावल इसने खाया है ऐसा कहे, छाती स्पर्श
करनेसे शौटो और गर्दन स्पर्श करनेसे जीवा अन्न खाया है ॥ ३० ॥ कोत्त, स्तन,
जठर और जानुको मश्न करनेवाला छुए तो क्रमानुसार उरद, दूध, तिल व दालका
भोजन करना बतावे, दोनों ओठोंके चाटनेसे मधुर रसको जाने ॥ ३१ ॥ जो
पूछनेवाला विष्टम्भी हो या जीभसे ओठोंके स्थानको चाटे अथवा वदनको सकोड़े
से उसने खटा खाया है और कटु, तिक्त, कषाय व गरम द्रव्य खानेसे हिचकी
उत्पन्न होती है, सेंधा नोन खानेसे धूकता है ॥ ३२ ॥ जो मश्न करनेके समय
उसका नाम मुने तो उसने मांसका भिला हुआ अन्न भक्षण किया है, भा
गल और ओठके स्पर्श करनेसे तिस करके (नीचे लिखे अनुसार) शाकुन
भीका मांस खाया गया है वह कहे ॥ ३३ ॥ मस्तक, गला, केश, ठोदी, कनपदी,
पंथ और वस्तिके स्पर्श करनेसे क्रमानुसार गज, महिष, मेघ, शूकर, गाय खरगोश,
रथवण करनेसे गोद और मछलीके मांसका खाना कहा जायगा,
करनेपर गर्भिणीका गर्भनिपातभी इससे प्रगट हो जाता है ॥ ३५ ॥
मश्नसे पुरुष, स्त्री या नपुंसक अंग या कुछ दीखे अनुमानसे ज्ञात

स्पृष्टे । तज्जन्म भवति पानान्नपुष्पफलदर्शने शुभम् ॥ ३६ ॥ अंगुष्ठेन भूतं
 वांगुलिं वा स्पृष्ट्वा पृच्छेद्गर्भचिन्ता तदा स्यात् । मध्वाज्यादीर्हमरजरा-
 लेरग्रस्यैर्वा मातृधात्र्यात्मजैश्च ॥ ३७ ॥ गर्भयुता जठरे करणे स्याद्दुः-
 निमित्तवशात्तदुदासः । कर्षति तज्जठरं यदि पीठोत्पीडनतः करणे च क्ते
 ऽपि ॥ ३८ ॥ घ्राणाया दक्षिणे द्वारे स्पृष्टे मासोत्तरं वदेत् । वामे द्वौ कर्म सं-
 वा द्विचतुर्थः श्रुतिस्तने ॥ ३९ ॥ वेणीमूले त्रीन् सुतान् कन्यके द्वे स्ने-
 पुत्रान् पञ्च हस्ते त्रयं च । अंगुष्ठान्ते पञ्चकं चानुपूर्व्या पादांगुष्ठे पार्श्विके
 ऽपि कन्याम् ॥ ४० ॥ सव्यासव्योरुसंस्पर्शं सूते कन्ये सुतद्वयम् । तू-
 ललाटमध्यान्ते चतुस्त्रितनया भवेत् ॥ ४१ ॥ शिरोललाटभ्रूकर्णगण्डहृत्प्रा-
 गलम् । सव्यापसव्यस्कन्धश्च हस्तौ चिबुकनालकम् ॥ ४२ ॥ उरः कुंभं

पुगस्थित जो स्पर्शित होवे उस गर्भसे उसका जन्म होता है, परन्तु पान, भ्रू-
 पुष्प और फलका दर्शन करना शुभ है ॥ ३६ ॥ अंगुष्ठेसे मीं उदर या उंगली
 स्पर्श करके पूछे तो पूछनेवालेको गर्भकी चिन्ता होती है, शहद, घी आदि
 मुरण, रत्न, मूंगा अथवा माता, धाई और पुत्र यह आगे खड़े हुए दिखाई देनेसे
 गर्भकीही चिन्ताको प्रगट करे ॥ ३७ ॥ पेटपर हाथ रखे ही अर्थात् स्पर्श
 हो तो गर्भिणी गर्भयुक्त होती है परन्तु दुष्ट निमित्त दिखाई देनेसे गर्भका नाश
 जाता है, जो पूछनेवाला दबाकर पेटकी खिंचे या हाथसे हाथ मलकर पश्च करे तो
 गर्भका नाश हो जाता है ॥ ३८ ॥ गर्भग्रहण प्रश्नमें प्रश्न करनेवाला जो कन्ये
 करके दाहिने द्वारकी स्पर्श करे तो एक मासके पीछे गर्भ धारण होगा, वाम पार्श्व
 और वाम कर्णकी स्पर्श करे तो चार मासके पीछे गर्भ धारण होगा ॥ ३९ ॥
 घोड़ीकी जड़की स्पर्श करनेसे तीन पुत्र और दो कन्या उत्पन्न होगी, रत्न गर्भ
 करनेसे पांच पुत्र और हाथ स्पर्श करनेसे तीन पुत्र जन्म लेंगे, जो प्रश्न
 प्रश्न करनेके समय पांच अंगुष्ठा अथवा दोनों पक्षी स्पर्श करे तो एक पुत्र
 उत्पन्न होना है, ऐमेही कनकी उंगलीके स्पर्शमें पांच कन्या, अनामिकके स्पर्शमें
 चार, मध्यमाके स्पर्शमें तीन और तर्जनीके स्पर्शमें दो कन्या होंगी ॥ ४० ॥
 हृत्प्रागल स्पर्श करनेसे दो कन्या और बाया ऊरु स्पर्श करनेसे दो पुत्र
 जन्म लेंगे, नाभिका मध्यभाग स्पर्श करनेसे चार और मायेरी शेषभागा स्पर्श
 करनेसे तीन कन्या जन्म लेंगी ॥ ४१ ॥ नाया, ललाट, मीं, कर्ण, नाभ, माया, हृत्प्रागल

दक्षिणमप्यसव्यं हृत्पार्श्वमेवं जठरं कटिस्थं । स्फिग्पायुसन्ध्यूरुयुगं च ज
जंघेऽथ पादाविति लुत्तिकादौ ॥ ४३ ॥ इति निगदितमेतद्वात्रसंस्पर्शलक्षण
प्रकटमभिमतान्त्यै वीक्ष्य शास्त्राणि सम्पक् । विपुलमतिरुदारो वेत्ति यः स
मेतन्नरपातिजनतामिः पूज्यतेऽसौ सदैव ॥ ४४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामङ्गविद्या नामै-
कपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पिटकलक्षण.

सितरक्तपीतरुष्णा विषादीनां क्रमेण पिटका ये । ते क्रमशः प्रोक्तफला
वर्णानामग्रजादीनाम् ॥ १ ॥ तुल्लिग्धव्यक्तशोभाः शिरसि धनचयं मूर्ध्नि सौभाग्य-
दांत, गला, दाहिना कन्धा, बायां कन्धा, दोनों हाथ, खोड़ी, नाल, उदर, कुच,
हृदयके बीचमें और दोनों पार्श्व, जठर, कमर, स्फिक (कमरका मांसापेण्ड),
गुदा, सन्धि, ऊरुयुगल, दो जानु दोनों छात्रा और पांव दोनोंमें क्रमानुसार कृत्ति-
मासे लेकर सय नक्षत्र विराजमान रहते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ सब शास्त्रोंको भली-
भाँति विचार कर पंडितोंकी संदृष्टताके लिये यह गात्रस्पर्शलक्षण भलीभाँतिसे कदा-
या, जो अत्यन्त पुद्गिमान् और उदार स्वभाववाला देवत उत्तको भलीभाँतिसे
न लेगा तो वह, राजा और प्रजासे सदा पूजित होगा ॥ ४४ ॥

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयपुरादावादवास्त-
वपंडितयलदेवमसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

प्राक्षण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंके क्रमानुसार सफेद, लाल, पीली और
रंगकी (कुनसी) चिकनी और रमणीय हो तो वह क्रमानुसार द्विजादे वर्णोंके
धर्म फल प्रकाशित करती हैं, अन्यथा निष्फल हैं. अर्थात् सफेद रंगकी
प्राज्ञणोंको फलदायी हैं, क्षत्रियोंके लिये लालरंगकी कुनसी फलदायी
॥ शिरमें कुनसी हो तो धन प्राप्त आता है. मस्त्वकपर होनेसे सौभाग्यकी
तिमात्रके ब्राह्मणादि यहांपर द्विजातिपदके बाध्य नहीं है. जन्मराशिके अनुसार
णादि चार वर्ष निश्चय हुए हैं, उनकोही समझना चाहिये ।

नयमाराद् दौर्भाग्यं भूयुगोत्थाः प्रियजनवदनामासु
 त्याश्च शोकं नयनपुटगता नेत्रयोरिष्टदृष्टिं प्रवृत्त्यां संत-
 गाश्चातिचिन्ताम् ॥ २ ॥ घ्राणागण्डे
 चिबुकतलगा भूरि वित्तं ललाटे । हन्वोरेवं गलच्छाया
 तद्रूपणगणमपि ज्ञानमात्मस्वरूपम् ॥ ३ ॥ शिखाभि-
 गता अयोधातं घातं सुततनयलाजं शुचमापि । निरन्तरं
 मिश्रार्थमसकृदिनाशं कक्षोत्था विदधति धनानां वपु-
 शत्रुनिचयस्य विधातं पृष्ठबाहुयुगजा रचयन्ति । चरन्तं
 भूपणाद्यमुपबाहुयुगोत्थाः ॥ ५ ॥ धनार्तिं सौभाग्यं धुनन्तं
 सुधानाजं नाभौ तदध इह चौरैर्धनहतिम् । धनं धान्यं वस्त्रं

प्राप्ति, दोनों भौहोंमें हो तो दुर्भगता और प्यारे मनुष्यका नरक-
 भौहोंके बीचमें हो या नेत्रपुटमें हो तो शोक होता है, दोनों नेत्रों
 कनपटीमें हो तो संन्यासी करता है, आंसू गिरनेके स्थानमें हो तो
 होती है ॥ २ ॥ नासिका और गालमें हो तो वसन और घ्राण-
 अग्रमें हो तो अन्न लाभ होता है, छोड़ीके तले हो तो अन्न-
 कण्ठमें हो तो बहुत धनका लाभ होता है, दोनों छोड़ीमें हो तो
 अन्न होता है, गलेमें हो तो भूषण, अन्न और धानका अन्न होता
 अन्न हो तो कर्णभूषण और अपने स्वरूपका ज्ञान प्राप्त हो जाता
 मस्तकमन्त्रि, गरदन, हृदय, कृन्, पाशे और आनीमें निदक
 कुमार गुह्यमान, भाषान, मुन-अन्न, शोक और निषेध का
 होनेने अन्तर मिश्रारके होने भ्रमण और विनाश होता है
 छोड़े करनेके मुख प्राप्त होने है ॥ ४ ॥ पीठ या हो तो
 हो तो अन्न गुह्यनाश नाश होता है मणि-रत्न हो तो नाश
 हो तो अन्न गुह्यनाश नाश होता है ॥ ५ ॥ हाथों, नखों
 हो तो अन्न गुह्यनाश नाश होता है, भोजन-अन्न को नाश
 हो तो अन्न गुह्यनाश नाश होता है अन्न गुह्यनाश नाश होता है

सौभाग्यं वा सुदवृषणजाता विदधति ॥ ६ ॥ ऊर्वोर्यानाङ्गना-
श्वजुजनात् क्षातिम् । शस्त्रेण जङ्घयोर्गुल्फेऽध्वबन्धकेशदायिनः
पार्श्वपादजाता धननाशागम्यगमनमध्वानम् । बन्धनमंगुलित-
ज्ञातिलोकतः पूजाम् ॥ ८ ॥ उत्तातगण्डपिटका दक्षिणतो
ताताः । धन्या त्वन्ति पुंसां तद्विपरीतास्तु नारीणाम् ॥ ९ ॥
विभागः प्रोक्त आ मूर्द्धतोऽयं व्रणतिलकविभागोऽप्येवमेव
भवति मशकलक्ष्मावर्तजन्मापि तद्वन्निगदितफलकारि प्राणिनां
॥ १० ॥

ति श्रीवराहमिहिरकृती बृहत्संहितायां पिटकलक्षणं नाम
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इकोशके ऊपर हो तो धन और सौभाग्यका विधान करता है ॥ ६ ॥
। हो तो सवारों और स्त्रीकी प्राप्ति होती है, दोनों जानुमें हो तो शत्रु-
उठाना पड़ती है; दोनों छात्रोंमें शस्त्रका घाव और गुल्फमें हो तो मार्ग
का छेद होता है ॥ ७ ॥ परन्तु स्त्रिक् (कमरका मांसापेड), पृथी
में हो तो धनका नाश, अयोग्य स्त्रीसे गमन और मार्गका लाम होता है,
के समूहमें हो तो बन्धन और अंगूठेमें हो तो जातिवाले लोगोंसे पूजाकी
ती ॥ ८ ॥ पुरुषके दाहिने भागमें जो पिटक होता है, तिसको " उत्पा-
कहते हैं, वामभागमें पिटकको " अमिघात " पिटक कहते हैं, ऐसे
क्षिण भागमें पिटकवाले आदमीके धान्य होता है, परन्तु शिपोंके उलटे
नेसे फल होता है अर्थात् शिपोंके दाहिने भागके पिटकको "अमिघात"
को पिटकको " उत्पातगण्ड " कहते हैं, यही वामभागले शिपोंके शुभ-
अन्यथा इनका अशुभ फल होता है ॥ ९ ॥ मस्तकसे आरंभ करके
शेकके पिटका विभाग अर्थात् फल यह कहा गया, व्रण या तिल (कट्टे
क तिल होता है) इन दोनोंका फल इसी तरह जानना और मशक या
मक जो दो प्रकारके चिह्न हैं, वे चिह्न यदि प्राणिपौकी देहमें हों तो वह भौ-
ल देते हैं ॥ १० ॥

राहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयपुरादावादवास्त
तवलदेवमसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

वास्तुविद्या.

वास्तुज्ञानमथातः कमलजवान्मुनिपरम्परायातम् । क्रियतेऽधुना नये
विदग्धसांवत्सरप्रीत्यै ॥ १ ॥ किमपि किल भूतमभवद् रुन्धानं रोदसीं शरीरेण
तदमरगणेन सहसा विनिगृह्णाधोमुखं न्यस्तम् ॥ २ ॥ यत्र च येन गृहानं विद्धि
धेनाधिष्ठितः स तत्रैव । तदमरमयं विधाता वास्तुनरं कल्पयामास ॥ ३ ॥ उत्त-
ममष्टाभ्याधिकं हस्तशतं नृपगृहं पृथुत्वेन । अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सपादानि दैव्येन
॥ ४ ॥ पद्भिः पद्भिर्हीना सेनापतिसन्नां चतुःपाटिः । पञ्चैव विस्तारव-

जो ब्रह्माजीके पाससे मुनि लोगोंके पास आई है पंडित और ज्योतिषी
लोगोंकी प्रसन्नताके लिये अब वही वास्तुविद्या कही जाती है ॥ १ ॥ शरीरसे
पृथ्वी और आकाशका रोकनेवाला कोई एक भूत पूर्वकालमें उत्पन्न हुआ था,
वह देवतासे मारा जाकर नीचेको मुखकर पृथ्वीपर गिरा ॥ २ ॥ जिस देवताने
उसके जिस स्थानका अधिकार प्राप्त किया था, वही देवता उस स्थानका स्वामी है,
इसके उपरान्त ब्रह्माजीने उस देवमय शरीर भूतको वास्तु पुरुषरूपसे कल्पित
किया ॥ ३ ॥ (संसारमें समस्त मनुष्योंके वास्तुगृहके भेद पांच प्रकारके हैं)
तीनमें पहला उत्तम, पहलेकी अपेक्षा दूसरा अधम और तिससे तृतीयादि सबसे
पहिले राजाके घरका परिमाण कहा जाता है, एक शत आठ १०८ (१०८)
चौड़ा और १३५ हाथ लम्बा होता है; पांच भेदवाले राजाके घरमें यही उत्तम
घर है, द्वितीयादि और चार प्रकारके गृह क्रमसे लम्बाई और चौड़ाईमें आठ हाथ
कम होंगे, यथा,—दूसरा लम्बाईमें १२५ हाथ और चौड़ाईमें सौ हाथ, तीसरा—
लम्बाईमें ११५, चौड़ाईमें ९२ हाथ, चौथा,—लम्बाईमें १०५, चौड़ाईमें ८४ हाथ,
पांचवां,—लम्बाईमें ९५ और चौड़ाईमें ७६ हाथका होता है ॥ ४ ॥ सेनापति
उत्तम घर ६४ हाथ चौड़ा होता है और फिर छः भागयुक्त विस्तारही उत्तम
लम्बाई होती है. यथा—पहला,—६४ हाथ चौड़ा और ७४ हाथ १६ अंगुल
लम्बा होता है. दूसरा,—५८ हाथ चौड़ा, और ६७ । १६ लम्बा होता है.
तीसरा,—५२, हाथ चौड़ा और ६० हाथ १६ अंगुल लम्बा. चौथा,—४६ हाथ ५
चौड़ा और १६ अंगुल लम्बा होता है. पांचवां,—४० हाथ चौड़ा और ४६ हाथ

१ २४ अंगुलका एक हाथ, और ६० अंगुलका एक अंगुल होता है ।

पद्मागसमान्विता दैर्घ्यम् ॥ ५ ॥ पाटिभुवुर्विहीना वेशमानि भवन्ति पञ्च सचिवरा
स्वादांशयुता दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम् ॥ ६ ॥ पद्मिः पद्मिभैवं युव
जस्यावर्जिताशीतिः । ज्यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धस्तदनु जानाम् ॥ ७ ॥
नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम् । नृपयुवराजविशेषः कञ्जुकि

१६ अंगुल लम्बा होता है ॥ ५ ॥ मंत्रियोंके गृह भी पांच प्रकारके होते हैं, तिनमें
मुख्यगृह ६० हाथ चौड़ा होता है, फिर ६० से कमनुसार चार २ हाथ कम
किये जायंगे, अर्थात् क्रमानुसार ५५ । ५२ । ४८ । ४४ हाथ चौड़ा हो, चौड़ाईके
साथ चौड़ाईका आठवां अंश मिलानेसे लम्बाईका परिमाण निरूपित होगा, तिसका
परिमाण यथा,—पहला ६७ । १२, दूसरा ६३, तीसरा ५८ । १२, चौथा ५४ । ०,
पांचवां ४९ हाथ १२ अंगुल इसकी लम्बाई और चौड़ाईसे मापे भागके
परिमाणका गृह रानियोंका होना चाहिये, लम्बाई यथा,—पहला ३३ । १८, दूसरा
३१ । १२, तीसरा २९ । ६, चौथा २७ । ०, पांचवां २४ । १८ ॥ चौड़ाई
यथा,—पहला ३० । दूसरा २८ । तीसरा २६ । चौथा २४ और पांचवा
२२ हाथ होता है ॥ ६ ॥ युवराजके गृहभी पांच प्रकारके होते हैं, तिनमें उत्तम
गृह ८० हाथका चौड़ा होता है, दूसरे गृहोंकी चौड़ाई क्रमानुसार छः छः हाथ
कम होगी, चौड़ाईका तीसरा अंश मिलानेसे तिनकी लम्बाईका परिमाण निर्णीत
होगा, यथा,—पहला ८० हाथ चौड़ा, १०६ हाथ १६ अंगुल लम्बा, दूसरा ७४
हाथ चौड़ा, ९८ हाथ, १६ अंगुल लम्बा, तीसरा ६८ हाथ चौड़ा, ९० हाथ १६
अंगुल लम्बा, चौथा ६२ हाथ चौड़ा, ८२ हाथ १६ अंगुल लम्बा, पांचवां ५६
हाथ चौड़ा और ७४ हाथ १६ अंगुल लम्बा, इन उत्तमादि गृहोंसे मापे परिमाण—
गृह युवराजके छोटे भ्राताओंके गृह हों, तिसके परिमाणकी चौड़ाई
३७ । ३४ । ३१ । २८ हाथ और लम्बाईका परिमाण यथा,—५६ । ८,
५२ । ८, ४९ । ८, ४५ । ८, ४१ । ८, ३७ । ८ हाथ ॥ ७ ॥ राजा
मंथी इन दोनोंके गृहमें जो अन्तर हो वही सामन्त और श्रेष्ठ राजपुरुषोंके
परिमाण है, उत्तमके कमसे चौड़ाई यथा,—४८ । ४४ । ४० । ३६ ।
३२ अंगुल है, राजा और युवराजके घरमें जो अन्तर होता है, वही अन्तर
वेश्या और नाच गाना जाननेवालोंके घरोंका परिमाण है, उत्तमादि कमसे
लम्बाई यथा,—२८ । ८, २६ । ८, २४ । ८, २२ । ८, २० । ८ अंगुल

वेश्याकलाज्ञानाम् ॥ ८ ॥ अध्यक्षाधिकृतानां सर्वयामेव कोशरतितुल्यम् ।
 युवराजमन्त्रिविवरं कर्मान्ताध्यक्षवृत्तानाम् ॥ ९ ॥ चत्वारिंशद्दीना चतुर्ध-
 र्निस्तु पञ्च यावदिति । पट्टभागयुतां दैर्घ्यं देवज्ञपुरोधसोर्निपजः ॥ १० ॥
 वास्तुनि यो विस्तारः स एव चोच्छ्रायनिश्चयः शुभदः । शालीकेषु गृहेषु
 विस्तराद्विगुणितं दैर्घ्यम् ॥ ११ ॥ चातुर्वर्ण्यव्याप्तो द्वाविंशत्स्याच्चतुर्ध-

हे तिसी तरह उत्तमादेकमसे चौड़ाई २८, २६, २४, २२, २० हे ॥ ८ ॥
 समस्त अध्यक्ष और अधिकारी पुरुषोंके गृहका परिमाण, कोशगृह और
 गृहका परिमाण समान है, युवराज और मंत्रीके गृहमें जो अन्तर हो वही कर्मान्त
 और दूतोंके गृहका परिमाण है। तिसके परिमाणमें चौड़ाई यथा,—२० । १८
 १६ । १४ । १२ हाथ। लम्बाई यथा,—३९ । ४, ३५ । १६, ३२ । ४, २८
 १६, २५ । ४ ॥ ९ ॥ ज्योतिषी, पुरोहित और वैद्योंके उत्तम घरकी चौड़ाई
 हाथ हो यहभी पांच प्रकारके हैं, इसही कारण दूसरे क्रमानुसार चार २ हाथ
 होंगे और इनकी छः पदमागयुक्त चौड़ाईही इनकी क्रमानुसार लम्बाई हो गयेगी
 चौड़ाई यथा,—४० । ३६ । ३२ । २८ । २४ हाथ हो। लम्बाई यथा,—४१
 १६, ४२ । ०, ३७ । १६, ३२ । १६, २८ । ० अंगुल ॥ १० ॥ गृह जिस
 चौड़ा हो उतनाही ऊंचा हो तो शुभदायी है। परन्तु जिन घरोंमें केवल एक छत
 हो उसकी लम्बाई चौड़ाईसे दुगुनी होनी चाहिये ॥ ११ ॥ (ब्राह्मण, क्षत्रिय,
 वैश्य, शूद्र और चाण्डालादि हीन जातियोंमें कित २ को कित २ प्रकार के
 अधिकार है और उस वास्तुगृहका परिमाण कितना हो वही अब कहा जाता है ।
 ब्राह्मणादि चार वर्ण और हीनजातिके लिये उत्तम गृहके व्यासही चौड़ाई ॥
 हाथ होती है। इस ३२ संख्यासे तबतक चार घटाने होंगे कि जबतक १६ न
 न निकलेगी । तबही ३२ मेंसे ४ घटानेपर १६ निकलेने तक पांच अंक होंगे
 यथा,—३२ । २८ । २४ । २० । १६ इन पांच अंकोंमेंही ब्राह्मणजातिके उत्तम
 गृहकी चौड़ाईका व्यास और पांच प्रकारके गृहमें इस जातिके अधिकार है ।
 ब्राह्मणजातिके दूसरे गृहकी चौड़ाईको संख्या २८ से १६ यवनेतक ६ अंकों
 क्षत्रिय जातिके गृहका परिमाण और अधिकार कहा गया। तीसरे अंको वैश्य
 चौथे अंको शूद्र और पाचोंसे अन्त्यज (चाण्डालादिहीन) जातिके गृहका
 और निम्न अधिकार निर्णय हुआ है, चौड़ाईके अंक धरे जाते हैं ॥ १२ ॥

आ पोडयादिति परं न्यूनतरमतीवहीनानाम् ॥ १२ ॥ सदशांशं विप्राणां क्षत्रस्याष्टांशसंयुतं देव्यम् । पद्मभागयुतं वैश्यस्य भवति शूद्रस्य पादयुतम् ॥ १३ ॥ नृपसेनापतिगृहयोरन्तरमानेन कोशरतिभवने । सेनापतिचातुर्वर्ण्य-

	उत्तम.	मध्योत्तम.	मध्यम.	अधम.	अधमाधम.
ब्राह्मण.	३२	२८	२४	२०	१६
क्षत्री.	२८	२४	२०	१६	०
वैश्य.	२४	२०	१६	०	०
शूद्र.	२०	१६	०	०	०
अन्त्यज.	१६	१०	०	०	०

इससे जाना गया कि ब्राह्मणलोग ऐसे पृथु व व्यास युक्त पांच प्रकारके गृहोंमें अधिकारी हैं, वैश्य तीन प्रकार, शूद्र दो प्रकार और अन्त्यजजातिवाले एक प्रकारके गृहमें अधिकारी हैं ॥ १२ ॥ पहले कही हुई चौड़ाईके साथ क्रमानुसार अपना दशवां, आठवां, छठवां और चौथा अंश मिलानेसे ब्राह्मणादि चार वर्णोंके वास्तुमानका व्यास और लंबाईका निर्णय होगा परन्तु अन्त्यजजातिके व्यासमानकी जो चौड़ाई है, वही लम्बाईके नामसे नियत हुई है. लम्बाईके अंक धरे जाते हैं यथा,— ॥ १३ ॥

	उत्तम.	मध्योत्तम.	मध्यम.	अधम	अधमाधम.
ब्राह्मण.	३५।४।४८	३०।१५।१२	२६।९।३६	२२	१७।१४।२४
क्षत्री.	३१।१२	२७	२२।१२	१८	०
वैश्य.	२८	२३।१६	१८।८	०	०
शूद्र.	२५	२०	१	०	०
अन्त्यज.	१६	०	०	०	०

: मजा और सेनापतिके गृहमें जो अन्तर होगा, वही कोषगृह और रतिगृहका परिमाण होगा. विसके परिमाणमें चौड़ाई यथा,— ४४ । ४२ । ४० । ३८ । ३६ हाथ. लम्बाई यथा,— ६० । ८, ५७ । १६, ५४ । ८, ५१ । ८, ४८ । ८ अंगुल कोषगृह वा रतिगृहके साथ सेनापतिके और चार वर्णके वास्तुमानका अंतरमानही राजपुरुषोंके वास्तुगृहका परिमाण होगा अर्थात् राजपुरुष ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण वास्तु-व्यासको सेनापति-वास्तुमान-व्यासले हीन करके जो शेष रहे उस मानाईसे उसका गृह-पंचक बनावे. जो राजपुरुष क्षत्री हो तो विसके वास्तुमानको सेनापति-वास्तुमानके दूसरे अंकसे अधिकारके अनुसार वास्तुमान धराकर अधिकारानुसार

विवरतो राजपुरुषाणाम् ॥ १४ ॥ अथ पारसवादीनां स्वमानसंयोगदत्तं
 भवनम् । होनाधिकं स्वमानादशुभकरं वास्तु सर्वेषाम् ॥ १५ ॥ पश्चाद्वर्ति
 णाममितं धान्यायुधवहिरतिगृहाणां च । नेच्छन्ति शास्त्रकारा हस्तयान-
 च्छ्रुतं परतः ॥ १६ ॥ सेनापतिनृपतीनां समतिसहिते दिग्वाक्ये आने ।
 शाला चतुर्दशहते पञ्चत्रिंशद्द्वेऽलिन्दः ॥ १७ ॥ हस्तद्वात्रिंशादिषु चतुर्धा-
 स्त्रित्रिकत्रिकाः शालाः । समदशत्रितयतिथित्रयोदशकृतांगुलान्याधिकाः ॥ १८ ॥
 त्रिचिद्विद्विद्विसमाः क्षयक्रमादंगुलानि चैतेषाम् । व्येका विंशतिरष्टौ विंशतिर्य-

गृहादि निर्माण करे ॥ १४ ॥ पारसव राजतिलक पाये और अम्बष्ठ आदि जातियों
 गृह निर्माण स्थानमें अपने २ परिमाणके योगजार्द (चौडाई, लम्बाई) तुल्य रा-
 होगा अर्थात् संकर जातियों जिन दो जातियोंसे उत्पन्न हुई हैं उन दो जातियों
 धरोंकी चौडाई और लम्बाई मिलाकर तिसके आधे मानमें उनका गृह-पंचक बनने
 सब जातियोंके लिये अपने २ परिमाणकी अपेक्षा हीन या अधिक वास्तुका परिमाण
 शुभदाई होता है ॥ १५ ॥ पशुशाला, प्रजाजिकालय, धान्यागार, शस्त्रागार, अर्थात्
 शाला और रतिगृह (बैठक) का परिमाण इच्छानुसार किया जा सकता है । परन्तु
 कोई गृहभी शत हाथसे ऊंचा न हो, वही शास्त्रकार लोगोंका अभिमत है ॥ १६ ॥
 सेनापतिकी गृह और राजाके गृहके व्यासाद परस्पर जोड़कर उनमें
 सत्तर मिलाने फिर उसको दो जगह रखे एक जगह १४ चौदहसे भाग करने
 जो कुछ भाग हो, वही शाला अर्थात् घरके भीतरका परिमाण है और दूसरे
 जगहके अंशको १५ पन्द्रहसे भाग करनेपर अलिन्द अर्थात् शालाके
 बाहरी भागका सोपानयुक्त आंगनका परिमाण होगा, यह राजाके लिये है ।
 और जातिके पुरुषोंके घरके भवनशाला और अलिन्दमान निराकरा है ।
 तो राजा और सेनापतिके घरके दो व्यासोंके योग फलके साध (अपने
 क्रमानुसार) सजानीय व्यासाद हीन करके तिसमें (७०) मिटाने, फिर
 उसमें दो जगह रखकर क्रमसे १४ और १५ पन्द्रहसे भाग करनेपर शाला
 शाला और अलिन्दका परिमाण निकल आयेगा ॥ १७ ॥ परले चार अंशों
 को ब्रह्मगादि चार वर्गोंका गृह व्यास ३२ बटीय हाथके रूपसे
 बना है, जिसमें क्रमानुसार ४ चार हाथ, मगद अंगुल, ४ चार हाथ
 ३ तीन अंगुल, ३ हाथ, पन्द्रह अंगुल, तीन हाथ तेरह अंगुल और तीन हाथ
 चार अंगुलके परिमाणकी शाला बनाई जाय और इन गृहोंका अलिन्द १० हाथ
 क्रमानुसार तीन हाथ उर्ध्व अंगुल, तीन हाथ आठ अंगुल, दो हाथ हीन

दश त्रितयम् ॥ १९ ॥ शालात्रिभागंतुल्या कर्तव्या वीथिका बहिर्भव
यद्यप्रतो भवति सा सोष्णीपं नाम तदास्तु ॥ २० ॥ सायाभयमिति
सावष्टमं तु पार्श्वसंस्थितया । संस्थितामिति च समन्ताच्छात्रैः प्रा
सर्वाः ॥ २१ ॥ विस्तारपोडशांशः सचतुर्हस्तो भवेद्गृहोच्छ्रायः । द्वादश
नोनो भूमौ भूमौ समस्तानाम् ॥ २२ ॥ व्यासात् पोडशांशः सर्वेषां स
भवति भित्तिः । पकेटकारुतानां कारुतानां तु सविकल्पः ॥ २३ ॥
एकादशभागद्वयः सप्तमतिर्नृपयलेशपोर्व्यासः । उच्छ्रायं गृहंतुल्यो द्वारस्यापि
विष्कम्भः ॥ २४ ॥ विनाशनां व्यासात् पञ्चाशोऽष्टादशांगुलसमेतः । सादांशः

दो हाथ अठारह अंगुल और दो हाथ तीन अंगुलके परिमाणका होगा ॥ १८ ॥ १९ ॥
पहले कहे हुए शालामानके त्रिभागकी स्थानभूमि, भवनके बाहर रखे, इस
भूमिका नाम वीथिका है, जो यह वीथिका वास्तुभवनके पूर्वभागमें हो तो उक्त
वास्तुका नाम "सोष्णी" है. यदि वास्तुके पश्चिम और वीथिका हो तो उक्त
वास्तुको "सायाश्रय" वास्तु कहते हैं, जो उत्तर अथवा दक्षिण दिशामें वीथिका
हो तो उसको "सावष्टम" नामक वास्तु कहते हैं और जो वास्तुभवनके चारों
ओरही ऐसी वीथिका हो तो तिसको "सुस्थित" कहते हैं, इन समस्त
वास्तुओंकी शास्त्रकार लोग पूजा किया करते हैं अर्थात् ऐसी वास्तु अत्यन्त
गुमदायी है ॥ २० ॥ २१ ॥ उस गृहका जितना विस्तार हो उगकी सोलहवें
इंशके साथ चार हाथ मिलानेसे जितने हाथ हों वही उस घरकी ऊंचाई होगी,
यदि चार प्रकारके घोंकी ऊंचाई क्रमानुसार उसकी अपेक्षा बारह भाग
के कम होगी ॥ २२ ॥ समस्त गृहोंके व्यासका सोलहवा भागही
भीतक्य परिमाण है, यह परिमाण पक्षी इतनेसे बने घरका है, परन्तु काठसे
बने घरकी भीतक्य परिमाण इच्छानुसार कर लेना चाहिये ॥ २३ ॥ राजा
और सेनापतिके घरका जो व्यास हो तिसके साथ नत्तर मिलाव ११ ग्यार-
हसे भाग करनेपर जो प्राप्त हो, जितने हाथ उसके प्रधानद्वारका विस्तार होगा.
विस्तार हस्त परिमाण जितने अंगुल हो, जितने हाथ वह ऊंचा होगा और दार-
वातिके पुरुषोंके गृहव्यासके पचासमें अठारह अंगुल मिलानेसे जो होगा, वही
स घरके दारक्य परिमाण होगा. दारपरिमाणका आठवां भाग, दारक्य विष्कम्भ

न्तो हृदये ब्रह्मा पितामिणतः ॥ ५४ ॥ अष्टाष्टकपदमयवा ॥ ५५ ॥
 गास्तिर्यक् । ब्रह्मा चतुःपदोऽस्मिन्नर्चपदा ब्रह्मकोणस्थाः ॥ ५५ ॥
 बाहिःकोणेऽर्चपदास्तदुभयस्थिताः सार्वाः उक्तेभ्यो ये शेषास्ते
 स्ते च ॥ ५६ ॥ सम्पाता वंशानां मध्यानि समानि यानि च पदानाम् ।
 तानि विन्द्यान् परिपीडयेत् प्राज्ञः ॥ ५७ ॥ तान्यशुचिमा
 पीडितानि शल्यैश्च । गृहमर्तुस्तत्तुल्ये पीडामङ्गे प्रयच्छन्ति ॥ ५८ ॥
 यदङ्गं गृहपातिना यत्र वामराहुत्याम् । अशुभं भवेन्निमित्तं विद्वन्निर्वाणे
 तत् ॥ ५९ ॥ धनहानिर्दारुणये पशुपीडारुग्णयानि चास्थिकृते । लोहने

वास्तुपुरुषके छिन्नपर इन्द्र व जयन्त स्थित हैं, हृदयपर ब्रह्मा स्थित हैं और
 पर पिता है। यह नगर, ग्राम, गृह इत्यादिमें इक्यासी पदके वास्तुका विभाग
 है, अब चौंसठ पदका वास्तु कहते हैं ॥ ५४ ॥ अथवा चौंसठ कोठकाही
 बनावे अर्थात् नौ रेखा पूर्व पश्चिम और नौ रेखा दक्षिण उत्तरमें खेंचकर चौंसठ
 वास्तुमें बनावे और चारों कोनोंमें कर्णके आकार दो तिरछी रेखा खेंचे। इससे
 ब्रह्मा चार कोठोंका स्वामी है। ब्रह्माके कोनोंमें स्थित आठ देवता आपवत्स, वायु,
 सावित्र, इन्द्र, जयन्त, राजयक्ष्मा और रुद्र ॥ ५५ ॥ और बाहिरके कोनोंमें
 हुए आठ देवता हैं अग्नि, अंतरिक्ष, वायु, मृग, पिता, पाप, यक्ष्मरोग और विष
 यह सब आधे आधे कोष्ठके स्वामी हैं और इनके दोनों ओर विराजमान
 भृश, भृशराज, दौवारिक, शोपनाग और अदिति यह डेढ़ डेढ़ पदके स्वामी हैं
 और शेष बीस देवता जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, वितथ, बृहत्क्षत, यम, वंश
 सुग्रीव, कुसुमदंत, वरुण, असुर, मुख्यभल्लाट, सोम, भुजंग, अर्यमा, वितत
 मित्र, पृथ्वीधर यह सब दो दो कोष्ठके स्वामी हैं। यह चौंसठ पदका वास्तु
 है ॥ ५६ ॥ आगे वंशोंके सम्पात जो कहेंगे वह और पदोंके सममध्य यह राज्ञे
 मर्म जाने, प्राज्ञ पुरुषको उचित है कि कभी इनको पीडन न करे ॥ ५७ ॥
 वास्तुमें मर्म स्थान, अपवित्र, भाण्ड, काल, स्तम्भ इत्यादि करके और शल्य
 आगे कहेंगे, उनसे पीडित हो तो घरके स्वामीके उस उस अंगमें अर्थात् वास्तु
 जो जो अंग हो, उसी अंगमें पीडा देते हैं ॥ ५८ ॥ होम अथवा प्रश्नके सन
 घरका मालिक अपने जिस अंगको खुजलावे। वास्तुके उस अंगमें शल्य हो
 और अग्नि आदि जिस देवताके आहुति देनेके समय छोंक रोना आदि अशु
 शकुन हों अथवा अग्निमें कुछ विकार उत्पन्न हो तो वह देवता वास्तुपुरुषके
 अंगमें हो, उस अंगको शल्ययुक्त जाने ॥ ५९ ॥ काष्ठका शल्य होनेसे धनादि

पं कपालकेशेषु मृत्युः स्यात् ॥ ६० ॥ अङ्गारे स्तेनभयं मस्मानि च विनि-
 शेत् सदाग्रिभयम् । शल्यं हि मर्मसंस्थं सुवर्णरजताद्वेद्यशुभम् ॥ ६१ ॥
 रण्यमर्मगो वा रुणद्धयर्थागमं तुपसमहः । अपि नागदन्तको मर्मसंस्थितो
 पकृद्भवति ॥ ६२ ॥ रोमाद्वायुं पितृतो हुताशनं शोषसूत्रमपि वितथात् ।
 व्याहृतं जयन्ताच्च भृङ्गमदितेभ्य सुग्रीवम् ॥ ६३ ॥ तत्सम्पाता नव ये तान्य-
 मर्माणि सम्प्रदिष्टानि । यच्च पदस्याष्टांशस्तत्पोकं मर्मपरिमाणम् ॥ ६४ ॥
 हस्तसंस्थया सम्मितानि वंशोऽगुलानि विस्तीर्णः । वंशव्याप्तोऽध्यर्धः शिरा-
 नाणं विनिर्दिष्टम् ॥ ६५ ॥ सुखमिच्छन् ब्रह्माणं यवाग्रक्षेदृही गृहान्तस्थम् ।
 च्छिदायुश्चाताड् गृहपतिरुपतप्यते तस्मिन् ॥ ६६ ॥ दक्षिणभुजेन हीने
 स्तुनरेऽर्धशयोऽङ्गनादोषाः । वामेऽर्धथान्यहानिः शिरसि गुणेर्हीयते सर्वैः ॥ ६७ ॥

स्थियोंका शल्य होनेसे पशुपांढा और रोगमय होता है। छोड़के शल्यसे मृत्यु
 खमय, कपाल और केशोंके शल्यसे होती है ॥ ६० ॥ कीयलोंके शल्यसे
 रमय, मस्मके शल्यसे सदा आग्रिभय होता है। सुवर्ण और चांदीके सिवाय और
 ई शल्य जो वास्तुपुरुषके मर्ममें टिका हो तो अत्यन्त अशुभ होता है ॥ ६१ ॥
 धान आदिके रूप वास्तुपुरुषके मर्मस्थान या और किसी स्थानमें हो तो धनके
 गमनको रोकते हैं। नागदंत शुभ है, परन्तु मर्मस्थानमें हो तो दोषकारी होता है
 ६२ ॥ वास्तुपुरुषमें रोगनामक देवतासे अनिलतक, पितासे शिखी पर्यंत, वितयसे
 पतक, मुखसे भृशतक, जयन्तसे भृंगतक और अदितिसे सुग्रीवतक सूत्र जाले
 ६३ ॥ इन सूत्रोंके नौ संपात वास्तुपुरुषके अतिमम कहे हैं। एक पदका
 षमांश मर्मका परिमाण कहा है ॥ ६४ ॥ पहले कहे छः सूत्रोंका वंशभी कहते
 और वास्तु विभागके लिये जो पूर्वापर और दक्षिणोत्तर दश दश रेखा करी हैं
 नको शिरा कहते हैं। एक पादका विस्तार वास्तुमें जितने हाथ हो, उतने अंगुल
 क वंशका विस्तार होता है और वंशके विस्तारसे ड्योडा शिराका विस्तार होता
 ॥ ६५ ॥ यदि परका स्वामी सुख चाहे तो वास्तुके बीचमें स्थित हुए ब्रह्माक्षी
 वसे रक्ष करे, ब्रह्माके ऊपर जूँटन इत्यादि डालनेसे धस्के मालिकसे छेड़ होता
 ॥ ६६ ॥ वास्तुपुरुषके दाहिनी भुजा हीन होनेसे धनका नाश व स्त्रीदोष होते
 हैं। वामभुजा हीन होनेसे धन और बच्ची हानि होती है। वास्तुपुरुषका
 शिर हीन हो तो धन आरोग्यादि समस्त गुणोंका होता है ॥ ६७ ॥

स्त्रीदोषाः सुतमरणं प्रेम्पत्वं चापि करणवैकल्ये । अविकल्पपुरुषे वसतां मतार्थ-
युतानि सौख्यानि ॥ ६८ ॥ गृहनगरग्रामेषु च सर्वत्रैवं प्रतिष्ठिता देवाः । न
च यथानुरूपं वर्णा विप्रादयो वास्याः ॥ ६९ ॥ वासगृहाणि च विन्याद् वि-
दीनामुदग्दिगाद्यानि । विशतां च यथाजवनं भवन्ति तान्येव दक्षिणतः ॥ ७० ॥
नवगुणसूत्रविभक्तान्यष्टगुणेनाथवा चतुःपट्टेः । द्वाराणि यानि तेषामनलक्ष-
फलोपनयः ॥ ७१ ॥ अनलक्षयं स्त्रीजन्म प्रभूतधनता नरेन्द्रवाङ्मयम् । को-
परतानृतत्वं कौयं चौयं च पूर्वणं ॥ ७२ ॥ अल्पसुतत्वं प्रेम्पं नीचत्वं वस-
पानसुतवृद्धिः । रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ॥ ७३ ॥ सुत-
रिपुवृद्धिर्न धनसुताभिः सुतार्थबलसम्पत् । धनसम्पन्नपतिजयं धनक्षयो जे-
इत्यपरे ॥ ७४ ॥ वधवन्धौ रिपुवृद्धिर्धनसुतलाभः समस्तगुणसम्पत् । पुत्र-

वास्तुपुरुष चरणरहित हो तो स्त्रीदोष, पुत्रमरण और दासपन होता है ।
वास्तुपुरुषके संपूर्ण अंग पूर्ण हो तो उस वास्तुमें रहनेवालोंको मान और धनसम्पन्न
होता है ॥ ६८ ॥ गृह, नगर और ग्रामोंमेंभी ऐसेही यह वास्तुदेवता विराज रहे
उस नगर ग्रामादिमें ब्राह्मणादि वर्णोंको क्रमानुसार बसावे ॥ ६९ ॥ उत्तर, पूर्व,
दक्षिण और पश्चिम इन चार दिशाओंमें क्रमानुसार चतुःशाल (चट्शाल) के
ग्राममें अथवा नगरमें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र वर्तें, वे घर ऐसे बनावे जो
कि अपने घरके आंगनमें प्रवेश करनेके समय अपने निवासके घर दाहिनी ओ-
र हैं ॥ ७० ॥ इक्यासी पदके वास्तुमें नौ गुणे सूत्रसे और चौंसठ पदके वास्तुमें
आठगुणे सूत्रसे विभक्त किये जाँ अनलादे बत्तीस द्वार हैं । क्रमानुसार उत्तर
फल कहते हैं ॥ ७१ ॥ अग्निसे लेकर अन्तरेक्षितक जो आठ देवता वास्तुपुरुष
पूर्वभागमें हैं, उनपर द्वार होय तो क्रमसे अग्निभय, कन्याजन्म, बहुव्रत, रोग,
राजाकी प्रसन्नता, क्रीडोपन, असत्य बोलना, क्रूरपन और चौरपन यह क्रम
है ॥ ७२ ॥ पवनसे लेकर मृगतक दक्षिणके आठ देवताओंके पदमें द्वार होय तो
क्रमसे अल्पपुत्रता, दासपन, नीचपन, भोजन, पान और पुत्रोंकी वृद्धि, रौद्र, इत्यादि,
धनहीनता, पुत्र और बलका नाश होता है ॥ ७३ ॥ पितासे लेकर पापपर्वत के
मके आठ देवताओंपर द्वार रखनेका फल क्रमसे पुत्रपीडा, शत्रुवृद्धि, धन और पुत्रोंके
अप्राप्ति, पुत्र, धन और बलकी प्राप्ति, धन संपात्ति, राजमय धनक्षय और रोग ॥ ७४ ॥
यक्ष्मरोगसे लेकर दितितक उत्तरके आठ देवताओंपर द्वार रखनेका फल पुत्र,
बंधन, शत्रुवृद्धि, पुत्र और धनका लाम, सब गुणोंकी सम्पत्ति, पुत्र और धन

नातिर्वैरं नुनेन दोषाः प्रिया नैस्वम् ॥ ७५ ॥ मार्गतरुकोणकूरस्तन्नामविद्ध-
मशुभदं द्वाग्म् । उच्छ्रायाद्विद्युणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥ ७६ ॥
स्थपाविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरुणा । पङ्कद्वारे शोको व्ययोऽप्युनि
स्त्राविणि प्रोक्तः ॥ ७७ ॥ कूनासस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे । स्तम्भेन
स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्रह्मणोऽग्निमुखे ॥ ७८ ॥ उन्मादः स्वयमुद्घाटनेऽप्य
पिहिते स्वयं कुलविनाशः । मानाधिके नृपभयं दस्तुभयं व्यमनदं नीचम् ॥ ७९ ॥
द्वारं द्वारस्योपरि पचन्न शिवाय सङ्कटं यच्च । आव्याचं धुन्नयदं कुञ्जं कुल-
नाशनं भवति ॥ ८० ॥ पीडाकरमतिपीडितमन्तर्विनतं भवेदभावाय । बाह्य-
विनते श्वासो दिग्भान्ते दस्तुभिः पीडा ॥ ८१ ॥ मूलद्वारं नान्यद्वारं रतिघ्न-
प्राप्ति, पुरसे वैर स्त्रीदोष और निर्धनता ये हैं ॥ ७५ ॥ मार्गतरु पृथ, किमी दूरी
परसे लुट, कुंआ, स्तम्भ, जल निकलनेकी मोरी इनसे विधा हुआ द्वार अशुभ
होता है अर्थात् पारके द्वारके सन्मुख इनका होना नहीं चाहिये परन्तु पारके द्वारसे
जितनी ऊँचाई हो, उससे दूनी पृथ्वी छोड़कर जो इनमेंसे किसीका बंध हो तो
कुछ दोष नहीं है ॥ ७६ ॥ पारके द्वारके मार्गतरु बंध हो तो पारके मार्गतरु
नाश, पृथका बंध होनेसे पाठकोश दोष, पंक अर्थात् पंचिक बंध होनेसे अर्थात्
पारके सन्मुख सदा पंक बना रहे तो शोक होता है. मोरीका बंध होनेसे पाथ
लर्ष होता है ॥ ७७ ॥ मूलका बंध होनेसे मृगीरोग, देवताकी मूर्तिकी बंध होनेसे
पारके स्वामीका नाश, स्तम्भका बंध होनेसे स्त्रियोंके दोष और ब्रह्मके सन्मुख द्वार
होनेसे कुलका नाश होता है ॥ ७८ ॥ जिस गृहके द्वारका किताब विना खोलेही
खुल जाय उसमें उन्माद रोग होता है. जिसका किताब आपसेही बन्द हो जाय,
उसमें कुलनाश हो जाता है. अपने परिमाणसे द्वार बड़ा हो तो राजाका भय और
छोटा हो तो चोरभय होता है और दुःख देता है ॥ ७९ ॥ ठीक द्वारपर दूसरे
रणद्वार द्वार आवे तो वह शुभ नहीं होता और ओछा द्वारकी शुभ नहीं. बहुत
पीडा द्वार धुपाका भय करता है और कुचका द्वार कुलका नाश करनेवाला होता
ह ॥ ८० ॥ ऊपरके बगलसे पहल दबा हुआ द्वार पारके स्वामीके पीडा करता है.
भीतरकी दुसरा हुआ गृह स्वामीका मरण करता है. बाहरकी दुसरा द्वार तो घर-
स्वामी विदेशमें रहे और किसी दिशाकी ओर देखना हो तो ओरोंसे पीडित होता
है ॥ ८१ ॥ पारके मुख्य द्वारका रूप और साधारण द्वारके समान नहीं बरे अर्थात्
और द्वारोंसे मुख्यद्वारका रूप श्रेष्ठ होना चाहिये. मुख्य द्वारपर बज्र, चक्र, दश,

धीत रूपद्धर्या । घटफलपत्रप्रमथादिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात् ॥ ८२ ॥
 न्यादिषु कोणेषु संस्थिता बाह्यतो गृहस्येताः । चरकी विदारिनामाय
 राक्षसी चेति ॥ ८३ ॥ पुरभवनग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः ।
 चादयोऽन्त्यजात्यास्तेष्वेव विवृद्धिमायान्ति ॥ ८४ ॥ ग्राम्यादिष्वन्त्यज
 जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते । उदगादिषु प्रशस्ताः पृक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः ॥ ८५ ॥
 भासन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय । फलिनः ॥ ८६ ॥
 दारुण्यपि वर्जयेदेषाम् ॥ ८६ ॥ छिन्द्याद्यादि न तर्हस्तान् तदन्तरे प्रवि
 न्वपेदन्यान् । पुन्नागाशोकारिष्टकुलपनसान् शमीशाली ॥ ८७ ॥
 शस्तौपधिद्रुमलतामधुरा सुगन्धा स्निग्धा समा न सुपिरा च मही नारायण
 अप्यध्वनि श्रमविनोदसुपागतानां धत्ते भियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु ॥ ८८ ॥
 साचिवालयेऽर्थनाशो धूर्तगृहे सुतवधः समीपस्थे । उद्वेगो देवकुले चतुर्भुजैः

शिवजीके गण आदि मंगलदायक शोभासे शोभित करे अर्थात् इनके चित्र इन
 खुदवावे ॥ ८२ ॥ घरके बाहर ईशान आदि चारों कोनोंमें क्रमानुसार वृक्ष
 विदारी, पूतना और राक्षसी यह चार देवता टिके हैं ॥ ८३ ॥ घर ग्राम और
 नगरके जो चारों कोण हैं, उनमें वास करनेवालोंको अनेक प्रकारके छेड़ और
 और उन कोणोंमें जो श्वपच आदि नीच जाति वसें तो उनकी वृद्धि होती
 है ॥ ८४ ॥ पिलखन, वट, गूलर, पीपल यह चार वृक्ष क्रमानुसार घरके दक्षिण
 पश्चिम, उत्तर और पूर्वमें हों तो अशुभ होते हैं और उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम
 क्रमसे यह वृक्ष उत्पन्न हों तो शुभ हैं ॥ ८५ ॥ घरके समीप तैर आदि सन्तान
 वृक्ष हों तो शत्रुभय करते हैं. आक आदि दूधवाले वृक्ष धनका नाश करते हैं. काली
 फलनेवाले वृक्ष सन्तानका क्षय करते हैं. इन वृक्षोंको काठमी घरमें न लगावे ॥ ८६ ॥
 जो घरके समीप यह वृक्ष हों और इनको काटे नहीं तो इनके साथ और गुन लगा
 दे. नागकेशर, अशोक, नीम, मौलसिरी, कटहर, जांट, शाळ यह वृक्ष शुभ
 हैं ॥ ८७ ॥ उत्तम औपधिवृक्ष और लताओंसे युक्त मधुर मुगंधवाली विदारी
 समान और छिद्रोंसे रहित भूमिके मार्गमें चलनेवाले पुरुष जो थम दूर करने
 क्षणमात्रके लिये उसमें बैठ जाय तो उनकोमी लक्ष्मी देती है. फिर तिनके पदों
 ऐसी भूमिमें बने हैं और वह पुरुष सदा उनके नीचे वास करते हैं, उन
 लक्ष्मीका प्राप्त होना क्या बड़ी बात है ॥ ८८ ॥ घरके निम्न उमाके मंथन

चाकीर्तिः ॥ ८९ ॥ चैत्ये भयं ग्रहलतं वल्मीकश्वभ्रसंकुले विपदः । गर्तायां तु
पिपासा कूर्माकारे धनविनाशः ॥ ९० ॥ उदगादिष्वामिष्टं विप्रादीनां प्रदाक्षिणेनैव ।
विमः सर्वत्र वसेदनुवर्णमथेष्टमन्येषाम् ॥ ९१ ॥ गृहमध्ये हस्तमितं स्वात्वा
परिपूरितं पुनः श्वभ्रम् । यदूनमनिष्टं तत् समे समं धन्यमधिकं यत् ॥ ९२ ॥
श्वभ्रमथवान्मुपूणं पदशतामित्वागतस्य यदि नोनम् । तन्न्यं यच्च भवेत्
पलान्यपामाढकं चतुःषष्टिः ॥ ९३ ॥ आमे वा मृत्युपत्रे श्वभ्रस्थे दीपवर्ति-
रन्यधिकम् । ज्वलति दिशि यस्य शस्ता सा भूमिस्तस्य वर्णस्य ॥ ९४ ॥

हो तो धनका नाश होता है, दूसरोंको ठगनेवालेका घर पास हो तो पुत्रमरण, देवताका
मंदिर समीप हो तो वित्तको खेद रहे, चतुष्पथ (चौराहा) समीप हो तो अकीर्ति
हो ॥ ८९ ॥ चैत्य अर्थात् प्रधान वृक्ष घरके समीप हो तो स्वामीको प्रहोंका डर
है, सर्पकी पांवी और गडोंदार भूमि घरके पास होय तो विपत्ति होवे, घरके समीप
गदा हो तो प्यासका रोग हो और कटुपके समान आकरकी भूमि घरके समीप हो
तो घरके स्वामीके धनका नाश होता है ॥ ९० ॥ उदगपुव (जिस भूमिका दक्षिण
उत्तरकी ओर हो) वह भूमि ब्राह्मणोंके लिये शुभ है, इसी प्रकार पूर्वपुव, दक्षिण
पुव और पश्चिमपुव भूमि क्रमसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके लिये शुभदायी होती
है, ब्राह्मण सब प्रकारकी भूमिमें वसें, उसका चाहे जिस दिशामें पुव हो और
वर्णोंके लिये अनुवर्ण भूमि शुभ है, पूर्वपुव, दक्षिणपुव और पश्चिमपुव क्षत्रियोंको,
दक्षिणपुव और पश्चिमपुव वैश्योंको और केवल पश्चिमपुव शूद्रोंको शुभ है ॥ ९१ ॥
घरमें एक हाथ चौड़ा एक हाथ गहरा गदा खोदे, फिर उसको उसी मट्टीसे पूर्ण
करे, जो गदा भरनेमें मट्टी कम हो जाय तो वह घर अशुभ होता है, ठीक ठीक
गदा भर जाय तो न शुभ और न अशुभ होता है, और जो गदा भर जाय व मट्टी
बच रहे तो वह गृह सब प्रकारसे शुभ होता है ॥ ९२ ॥ पहली पंक्ति हुई गीतिसे
गदा खोदकर उसमें जल भरे, सौ पदतक जाकर लौट आवे, उसने समयमें यदि
गडेंका जल कुछभी न घटे वह भूमि शुभ होती है, और जहांकी पूरसे आढकको
भरकर फिर वोले और वह पूरे चौसठ पल हो तो वह भूमिभी शुभ है (अज
नापनेका एक फाटका घरतन जिसमें अनुमान चार सेर अज आता है, उसको
आढक कहते हैं, चालीस मासेका एक पल होता है) ॥ ९३ ॥ मट्टीके बचे
वर्त्तनमें चार बचीगलादीपक ढाळे, उनमें उचरादि बच्चियोंमें ब्राह्मण इत्यादि चार
वर्णोंकी कल्पना कर दीपक जलाय गडेमें रखे, जिस वर्णकी दिशामें बची

अजोपिनं न कुसुमं यस्मिन् प्रम्लायतेऽनुवर्णतमम् । तत्र तत्र
यस्य च यस्मिन्मनो रमते ॥ ९५ ॥ तितरक्कातकृष्णा सिंहासनां रत्न
गन्धश्च तत्रानि यस्या वृतरुधिरान्नादमयतमः ॥ ९६ ॥ कुक्ष्यपुष्पा ध्वज
कागावृता क्रमेण मही । अनुवर्णे वृद्धिकरी मधुररुपायान्तद्गुण
कटां प्रहृदबोजां गोड्युपितां बाल्मणैः प्रशस्तां च । गता नदी गुप्त
तावत्तरोद्विटे ॥ ९७ ॥ भक्ष्यैर्नानाकारैर्दध्यशतनुरभिः कुमुदगुणैः
कृत्वा स्थतीतम्यर्च्यं विप्रांश्च ॥ ९९ ॥ मित्रः स्पृष्टा श्रीकं तत्र
निगमोत्त । शूरः पारो स्पृष्टा कुपप्रिस्तां गृह्णाम्हे ॥ १०० ॥
कुर्यान्मध्यांशुल्गायना प्रवेशिन्या । कनकमणिरजामुकाराणि ॥ १०१ ॥

[illegible]

शुभम् ॥ १०१ ॥ शस्त्रेण शस्त्रमृत्युर्वन्धो लोहेन भस्मनाग्निभयम् । तत्स्कर-
ण्यं तृणेन च काष्ठोल्लिखिता च राजभयम् ॥ १०२ ॥ वक्रा पाशालिखिता शस्त्र-
भयकेशदा विरूपा च । चर्मोद्गारास्थिरुता दन्तेन च कर्तुराशिवाय ॥ १०३ ॥
पैरुत्तमस्यलिखिता प्रदक्षिणं सम्प्रदो विनिर्दश्याः । वाचः परुषा निष्ठीवितं
धुनं चागुभं कथितम् ॥ १०४ ॥ अर्द्धनिचितं कृतं वा प्राविशन् स्थितिर्द्वे
निमित्तानि । अवलोकयेद्ब्रह्मपतिः कः संस्थितः स्पृशति किं चाङ्गम् ॥ १०५ ॥
राविदीतो यदि शकुनिस्तस्मिन् काले विरीति परुपरवः । संस्पृष्टाङ्गसमानं
तस्मिन्देयेऽस्थि निर्दश्यम् ॥ १०६ ॥ शकुनसमयेऽयवान्ये हस्त्यश्वश्वादयोऽ-

मोती, दही, फल, पुष्प, अक्षत इनमें किसीसे रेखा करे तो शुभ होता है ॥ १०१ ॥
शस्त्रसे रेखा करे तो शस्त्रसेही गृहस्वामीकी मृत्यु हो, लोहेसे करे तो बंधन, भस्मसे
करे तो अग्निभय, तिनकेसे करे तो चोरभय और काष्ठसे गृहारम्भमें रेखा करे तो
राजभय होता है ॥ १०२ ॥ देश, पैरसे खेंची हुई अथवा घुरे रूपकी रेखा हो
तो शत्रुभय और क्लेशदायक है. चमड़ा, कोयला, अस्थि और दांतसे करी हुई
रेखा गृहस्वामीका अशुभ करती है ॥ १०३ ॥ जो रेखा दाहिनी ओरसे बाईं
ओरको खेंची जाय वह बैर करती है. बाईं ओरसे दाहिनी ओरको जो रेखा खेंची
जाय तो संपत्ति होती है. गृहारम्भके समय कोई कठोर वचन कहे, थूके अथवा
छाँके तो अशुभ कहा है ॥ १०४ ॥ अध बने व संपूर्ण बने गृहमें भवेश करता
हुआ फारीगर शुभ अशुभ चिह्न देखे, कि घरका मालिक वास्तुपुरुषके किस अंग-
पर टिका है और अपने किस अंगको छू रहा है ॥ १०५ ॥ उस काल सूर्यके
वश जो दीप्त दिशा हो उसमें टिका हुआ पक्षी रूखे शब्द बोलता हो तो जिस
स्थानपर गृहपति स्थित हो वहां नीचे दड़ी गड़ी है और दड़ीभी उस अंगकी है
जो अंग गृहस्वामीने उस समय छू रक्खा है, यह जाने. उदय होनेके समय
सूर्य पूर्वदिशामें रहता है. फिर दिन रातके आठ पहरोमें क्रमानुसार
एक एक प्रहर आठों दिशाओंमें सूर्य गमन करता है. जिस दिशाको सूर्य
छोड़ आया हो, वह दिशा अंगारिणी है. जिसमें स्थित हो वह दीप्ता और जिसमें
जानेवाला हो वह धूमिता. दिशा कहाती है. इन तीनोंको त्याग बाकी पांच
दिशा सांता होती हैं ॥ १०६ ॥ शकुन देखनेके समय दीप्त दिशाकी ओर
मुख करके हाथी, घोड़ा, कुत्ता इत्यादि जीव बोले तो जहां गृहस्वामी टिका है
उस स्थानमें उन जीवोंके उसी अंगकी दड़ी जाने जो अंग गृहपतिने छू

धन्यमुदकप्रापतनं न ग्राह्योऽतोऽन्यथा पतितः ॥ १२१ ॥ छेदो यदाविकृतः
ततः शुभं दारु तद्रहोपयिकम् । पीते तु मण्डले निर्दिशेत् तरोर्मध्यं गोत्रम्
॥ १२२ ॥ मज्जिग्राभे जेको नीले सर्पस्तथारूपे सरटः । मुद्राभेऽप्या कतिष्ठे
मूपकोऽन्धश्च स्वङ्गाभे ॥ १२३ ॥ धान्यगोयुरुहुताशसुराणां न स्वपेदुपरि नान्य
सुवंशम् । नोत्तरापरशिरा न च नग्नो नैव चार्द्रचरणः श्रियमिच्छन् ॥ १२४ ॥
भूरिपुष्पनिकरं सतोरणं तोयपूर्णकलशोपशोभितम् । धूपगन्धबलिपूजितं
ब्राह्मणध्वनियुतं विशेद्धहम् ॥ १२५ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वारतुविद्या नाम
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

पूज बलि देकर दिनमें प्रदक्षिणाके क्रमसे ईशानकोणसे लेकर उस वृक्षके छेद
जो वृक्ष कटकर उत्तर अथवा पूर्वदिशामें गिरे तो वह शुभ होता है और दिक्
गिरे तो उसको ग्रहण न करे ॥ १२१ ॥ काटनेके समय वृक्षके कटनेका रक्त
विकाररहित हो तो उस वृक्षका काठ घरके लिये शुभ होता है, वृक्षके छेदमें रक्त
रंगका मण्डल दिखाई दे तो उस वृक्षमें गोहका रहना कहना चाहिये ॥ १२२ ॥
मजीठके सदृश लाल रंगका मण्डल दिखाई दे तो मेंढक, नील रंगका मण्डल
तो सर्प, रक्त वर्णका मण्डल हो तो गिरागिट, मृगके रंगका अर्थात् हरा मण्डल
दिखाई दे तो पत्थर, कपिल वर्णका मण्डल हो तो चुहा और वृक्षके छेदमें लाल
रंगका मण्डल दिखाई पड़े तो वृक्षके घीच जलका होना कहना चाहिये ॥ १२३ ॥
लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाला पुरुष अन्न, गौ, गुरु, आग्नि और देवताके ऊपर हस्त
न करे और बांसके नीचे शय्या बिछाकर भी न सोवे, उत्तर अथवा पश्चिमको मस्तक
करके न सोवे नम्र अर्थात् धोती खोलकर न सोवे और जलसे भीगे हुए पैर रक्त
न सोना चाहिये ॥ १२४ ॥ बहुत पुरुषोंके समूहसे दूषित, तोरणसे दूषित
पूर्ण कलशोंसे शोभायमान और जिसमें धूप, गंध, बलि आदिसे देवताओं
पूजन हुआ हो और ब्राह्मण जिसमें वेदध्वनि कर रहे हों ऐसे घरमें श्राद्ध
करना चाहिये ॥ १२५ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयपुत्र-
दायादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां मापाटीरण्या
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

उदकांगल.

धर्मं यैर्यस्य च वदार्थतोऽहं दकार्मलं येन जलोत्पत्तिः । पुंसां यथाद्वेयु
शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ॥ १ ॥ एकेन वर्णनं स्वेन चान्तव्युत्तं
नभस्तो यत्तुभाविशेषात् । नानासत्त्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितिस्तुल्य-
मेव ॥ २ ॥ पुरुहूतानलयमनिक्रान्तिवरुणपवनेन्दुशङ्करा देवाः । दिव्जानप्याः
क्रमशः प्राच्याद्यानां दिशां पतयः ॥ ३ ॥ दिक्पतिसंज्ञाश्च शिरा नयनी मध्ये
महाशिरानाम्नी । एताभ्योऽन्याः शतशो विनिसृता नामतिः प्रथिताः ॥ ४ ॥
पानालादूर्ध्वशिरा शुभाभतुर्दिक्षु संस्थिता यान् । कोणदिगुत्थानां शुभाः
शिरानिमित्तान्यतो यक्ष्ये ॥ ५ ॥ यदि वेतसोऽम्बुरहिते देशे हर्षसिद्धिस्तनः
पश्चात् । सार्धं पुरुषे तोयं यदति शिरा पश्चिमा तत्र ॥ ६ ॥ विद्वन्मरि धार्प-

अथ धर्म और पशुको देनेवाला उदकांगल कहते हैं, जिसको जाननेमें भूमिमें
स्थित जडवत् ज्ञान होता है, मनुष्योंके अंगमें जिस प्रकार नाडी स्थित है, वेतेही
भूमिमेंभी यहाँ ऊँची और यहाँ नीची शिरा हैं ॥ १ ॥ आकाशमें वर्षा होनेपर तब
जल एकही स्त्रावका गिरता है, वह भूमिमें विशेषतासे अनेक ही और स्त्रावका
हो जाता है, उसही परीक्षा भूमिके तुल्यही करनी चाहिये अर्थात् जहाँ भूमि होगी
वेताही जल होगा ॥ २ ॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और
हैशान यह आठ देवता क्रमानुसार पूर्वादि आठ दिशाओंके स्वामी हैं ॥ ३ ॥ इन
आठ दिशाओंके स्वामियोंके नामसे आठ शिरा विख्यात हैं, जैसा ऐश्वरी, अग्नि
पाश्चा इत्यादि और यौचर्मे एक यही शिरा महाशिराके नामसे विख्यात है इन
आधिक औरभी गैरक्यों शिरा निकलें हैं, वे अपने अपने नामसे विख्यात हैं ॥ ४ ॥
पानालमें जो शिरा सीधी ऊपरको निकलती हो वह और पूर्व अर्थात् पूर्वादि दिशा
ओंमें जो शिरा हो वे शुभ होती हैं, अप्रिक्रमण आदिपार कोणमें जो शिरा हो
शुभ नहीं होती हैं, अब शिराज्ञान होनेके सिद्ध कहते हैं ॥ ५ ॥ जो बलवान् देश
बेदमन्त्रं पृथ हो तो उस वृक्षसे पश्चिमको तीन हाथपर छेद पुरुष नीचे जल
है और वहाँ पश्चिमकी शिरा बहती है, मनुष्य अपनी भुजा ऊपर खड़ी करे, उ
एभर्माको एक पुरुष कहते हैं, वह एक ही बीज अंगुल होती है ॥ ६ ॥ वहाँ पर

पुरुषे मण्डूकः पाण्डुरोऽथ मृत्पीता । पुटभेदकश्च तस्मिन् पापाणो ज्ञानि को-
मथः ॥ ७ ॥ जम्बवाभोदगधस्तैस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा । मृष्टोहपनिरा
पाण्डुराथ पुरुषेऽत्र मण्डूकः ॥ ८ ॥ जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत्त-
पत्यः । तस्मादक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु ॥ ९ ॥ अर्धपुरुषे च स्त-
पारावतसन्निभश्च पापाणः । मृद्वति चात्र नीला दीर्घं कालं बहु च मे-
॥ १० ॥ पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धं । पुरुषे सितोऽग्रिस्त-
जनोपमोऽथः शिरा सुजला ॥ ११ ॥ उदगर्जुनस्य दृश्यो वल्मीको यदि त-
ऽर्जुनाद्वस्तीः । त्रिभिस्त्रु भवति पुरुषेऽत्रिभिर्धसमान्वितः पश्चात् ॥ १२ ॥
श्वेता गोधार्धनरे पुरुषे मृद्वसरा ततः छण्णा । पीता सिता ससिकृता ततो य-
निर्दिशेदमितम् ॥ १३ ॥ वल्मीकोपचितायां निर्युण्ढ्यां दक्षिणेन कथितकरी ।

होना है कि आधा पुरुष सोदनेपर कुछ इधे रंगका मंडक निकलता है, फिर दक्षि-
रंगको मंडो निकलती है फिर परतदार परतार निकलता है उसके नीचे जल होता है ॥ ७ ॥
निर्जल देशमें जो जामुनका वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ उत्तरको दो पुरुष नीचे
पूर्व दिशा होती है वहां सोदनेसे छोड़की समान गन्धवाली मंडी निकलती है जो
जामुनकी मंडी निकलती है और एक पुरुष नीचे मंडक निकलता है ॥ ८ ॥
जामुनके वृक्षमें पूर्व दिशामें समीपही सर्पकी यांथी हो तो उस वृक्षसे तीन हा-
थ उत्तर हो पुरुष नीचे मधुर जल होता है ॥ ९ ॥ आधा पुरुष सोदनेसे नीचे
निकलता है, उत्तरके रंगका परतार निकलता है, नीली मंडी यहा होती है जो
पुष्पकी बहुत होती है और अत्यन्त काला रहता है, आधार्धने वहां कुछ
मजान न रहा, वहां पहला कड़ा प्रमाण जानना जाता वहां प्रमाण नहीं ॥ १० ॥
निर्जल देशमें पूर्व दिशा में जामुनका वृक्ष हो तो उत्तर तीन हाथ पश्चिम मंडी पुरुष नीचे शिरा हो ॥ ११ ॥
पुरुष नीचे येन गर्भ निकलता है, फिर मंत्रनके गरुड अत्यन्त कृष्ण रंगका
निकलता है, उगके नीचे गुल्मर मंडवाली शिरा होती है ॥ १२ ॥ मंडी नीचे
तीन हाथ उत्तर जो कंसो निकलती है जो उत्तर मंडुन वृक्षमें तीन हाथ उत्तर हो
तीन हाथ नीचे जल होता है ॥ १३ ॥ आधा पुरुष सोदनेसे नीचे नीली मंडी
निकलती है, वह पुरुष नीचे खूब रंगकी मंडी निकलती है, फिर मंडी नीचे
नीले रंगका मंड निकलती है, उगके नीचे बहुत जल निकलता है ॥ १४ ॥ उत्तरके मंडक निकलती है मयांत्तु निर्युण्ढ्या हो तो ॥ १५ ॥

पुरुषद्वये सपादे स्वादु जलं भवति चाथोप्यम् ॥ १४ ॥ रोहितमत्स्योऽर्धनरे
मृत्कपिला पाण्डुरा ततः परतः । सिकता सशर्कराथ क्रमेण परतो भवत्यम्नः
॥ १५ ॥ पूर्वेण यदि वदर्या बल्मीको दृश्यते जलं पश्चात् । पुरुषसिन्धिरादेश्यं
श्वेता गृहगोपिकार्धनरे ॥ १६ ॥ सपलाशा बदरी चेद् दिश्यपरस्यां ततो जलं
भवति । पुत्रपत्रये सपादे पुरुषेऽथ च दुण्डुभिभिद्वम् ॥ १७ ॥ विल्वोदुम्बर-
योगे विहाय हस्तत्रयं तु याम्येन । पुरुषसिन्धिरम्बु भवेत् कृष्णोऽर्धनरे च
मण्डूकः ॥ १८ ॥ अर्कोदुम्वारिकायां बल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन् । पुरुष-
त्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था वहति सा च ॥ १९ ॥ आपाण्डुपीतिका मृदो-
रसवर्णश्च भवति पाषाणः । पुरुषाऽर्धे कुमुदनिम्नो दृष्टिपथं मूषको याति ॥ २० ॥
जलरिहीने देशे वृक्षः कम्पिष्ठको यदा दृश्यः । प्राच्यां हस्तत्रितये वहति
शिरा दक्षिणा प्रथमम् ॥ २१ ॥ मृन्मालोत्तरलवर्णा कारोता चैव दृश्यते

हाथ दक्षिण सवा दो पुरुष नीचे मोंठा और कमी न सूखनेवाला जल होता है
॥ १४ ॥ आधा पुरुष खोदनेपर रोहमछली निकलती है, फिर क्रमानुसार कपिल
रंगकी मट्टी, पांडुर रंगकी मट्टी और पत्थरके सूक्ष्म कणोंसे मिला हुआ बालू रेत
निकलता है, उसके नीचे जल होता है ॥ १५ ॥ चेरवृक्षके पूर्व जो बल्मीक हो तो
उस वृक्षसे तीन हाथ पश्चिम तीन पुरुषके नीचे जल कहना चाहिये, आधा पुरुष
खोदनेसे सफेद रंगकी छपकिया निकलती है ॥ १६ ॥ निर्जल देशमें डाकवृक्षयुक्त
चेरी वृक्ष हो तो उससे पश्चिमकी तीन हाथपर सवा तीन पुरुष नीचे जल होता है,
वहां एक पुरुष खोदनेपर एक प्रकारका -निर्विष सर्प निकलता है यही चिह्न है
॥ १७ ॥ बेलका पेड़ व गुलरका पेड़ यह दोनों जहां इकट्ठे हों, उनसे दक्षिण तीन
हाथ छोड़कर तीन पुरुष नीचे जल होता है और आधा पुरुष खोदनेसे काळे
रंगका मेंढक निकलता है ॥ १८ ॥ आकगूलरवृक्षके अतिनिरुद्ध बल्मीक हो तो
उस बल्मीकके नीचेही सवा तीन पुरुष खोदनेसे पश्चिमकी बहनेवाली शिरा निक-
लती है ॥ १९ ॥ पाण्डु और पीठ रंगकी मट्टी निकलती है, गोरत (गायका
मछ) के समान श्वेतरंगका पत्थर निकलता है और आधे पुरुष नीचे कुमुदके
कूलकी सदृश श्वेत रंगका पुहा दिखाई देता है ॥ २० ॥ निर्जल देशमें,
कपिलवृक्ष दिखाई दे तो, उस वृक्षसे तीन हाथ पूर्वकी सवा तीन पुरुषके
नीचे दक्षिण शिरा बहती है ॥ २१ ॥ प्रथम नील कमलके रंगकी मट्टी

तस्मिन् । हस्तेऽङ्गान्विमत्स्यो भवति पयोऽल्पं च सक्षारम् ॥ २२ ॥ शोण-
कतरोरपरोक्षरे शिरा द्वौ करावतिकम्प्य । कुमुदा नाम शिरा सा पुरुषत्रय-
हिनी भवति ॥ २३ ॥ आसन्नो बल्मीको दक्षिणपार्श्वे विनीतकस्य वारि ।
अध्यर्धे तस्य शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम् ॥ २४ ॥ तस्यैव पश्चिनात्
दिशि बल्मीको यदा भवेद्धस्ते । तत्रोदग्भवति शिरा चतुर्भिर्धार्धिकैः पुरुषैः
॥ २५ ॥ श्वेतो विश्वभरकः प्रथमे पुरुषे तु कुंकुमाजोऽश्ना । अस्मात्
दिशि च शिरा नश्यति वर्षत्रयेऽनीते ॥ २६ ॥ सकुशाशित ऐशान्यां बल्मी-
को यत्र कोविदारस्य । मध्ये तयोर्वैरैर्धार्ध्वमैस्तोयमज्ञोऽन्यम् ॥ २७ ॥
प्रथमे पुरुषे भुजगः कमलोदरसन्निभो मही रक्ता । कुरुविन्दः पा-
णश्चिह्नान्येतानि वाच्यानि ॥ २८ ॥ यदि भवति सप्तपर्णो बल्मीकश्च
स्तदुत्तरे तोयम् । वाच्यं पुरुषैः पञ्चाभिस्त्रयापि भवन्ति चिह्नानि ॥ २९ ॥
पुरुषार्थं मण्डूको हरितो हरितालसन्निभा भूश्च । पापाणोऽभनिकाथः संप्र-
निकलती है, फिर कबूतरके रंगकी मट्टी दिखाई पड़ती है, एक हाथ नीचे मट्टी
निकलती है, जिसमें चक्रेकी समान दुर्गंध आती है, वहां घोडा और तारा वृक्ष
निकलता है ॥ २२ ॥ निर्जल देशमें श्योनाकवृक्ष (अरलू) दिखाई दे तो उसमें
दो हाथ वायव्य कोणमें जाकर खोदनेसे तीन पुरुष नीचे क्रमानुसार शिरा निकलती
है ॥ २३ ॥ बड़ेडा वृक्षके समीप बमई हो तो उस वृक्षसे दो हाथ पूर्व डेढ़ डा
नीचे शिरा होती है ॥ २४ ॥ बड़ेडेके वृक्षके पश्चिम दिशामें बमई हो तो उस
वृक्षसे एक हाथ उत्तरकी साठे चार पुरुष नीचे शिरा होती है ॥ २५ ॥ प्रथम एक
पुरुष खोदनेपर श्वेत रंगका विश्वभरक (एक प्रकारका जीव) दिखाई देता है,
फिर केशरी रंगका पत्थर निकलता है, उसके नीचे पश्चिम दिशाकी बहनेवाली
शिरा निकलती है, परन्तु तीन वर्षके पीछे वह शिरा नष्ट हो जाती है अर्थात् उस
सूख जाता है ॥ २६ ॥ कोविदारवृक्ष (सप्तपर्ण) के ईशानकोणमें कुछ दूरी
युक्त श्वेत(गहरी मट्टीकी बमई हो तो वहां कोविदारवृक्ष और बल्मीकके मध्यमें वहां
पांच पुरुष नीचे बहुत जल होता है ॥ २७ ॥ पहले पुरुषमें कमलपुष्पके मध्य
भागकी समान रंगका सर्प निकलता है, लाल वर्णकी भूमि आती है, फिर कुरु-
विन्दनामक पत्थर निकलता है, यह चिह्न कहने चाहिये ॥ २८ ॥ निर्जल देशमें
बमईमें युक्त सप्तपर्णवृक्ष हो तो उससे एक हाथ उत्तर पांच पुरुष नीचे वृक्ष
निकलता चाहिये ॥ २९ ॥ यहांभी चिह्न होते हैं कि आध पुरुष खोदनेपर

च शिरा शुभाऽनुबन्हा ॥ ३० ॥ सर्वेषां वृक्षाणामवःस्थितो दर्दुरो यदा
 दृश्यः । तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरेषार्धैः पुरुषैः ॥ ३१ ॥ पुरुषे तु भवति
 नकुलो नीला मृतीतिका ततः श्वेता । दर्दुरसमानरूपः पापाणो दृश्यते चात्र
 ॥ ३२ ॥ यदाहिनिलयो दृश्यो दक्षिणतः संस्थितः करञ्जस्य । हस्तद्वये तु
 याम्ये पुरुषत्रितये शिरा सार्धे ॥ ३३ ॥ कच्छकः पुरुषार्धं प्रथमं चोद्दिश्यते
 शिरा पूर्वा । उदग्न्या स्वादुजला हरितोऽश्माऽधस्ततस्तोयम् ॥ ३४ ॥ उत्तर-
 तन्व मधुकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम् । परिहृत्य पञ्च हस्तान् अर्धाष्टम-
 पौरुषे प्रथमम् ॥ ३५ ॥ अहिराजः पुरुषेऽस्मिन् धूम्रा धात्री कुलत्थवर्णोऽश्मा ।
 माहेन्दी भवति शिरा वहति सफेनं सदा तोयम् ॥ ३६ ॥ वल्मीकः स्निग्धो
 दक्षिणेन निलकस्य सकुशादूर्वभेदः । पुरुषैः पञ्चभिरग्नौ दिशि वारुण्यां शिरा
 पूर्वा ॥ ३७ ॥ सर्पाशतः पश्चाद् यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम् । परतो

मेंडरु निकलता है, पीछे हरितालके समान पीले रंगकी भूमि निकलती है, फिर
 भेषके समान कृष्णवर्ण पत्थर मिलता है. इन सबके नीचे मधुर जलसंयुक्त उत्तर-
 शिरा होती है ॥ ३० ॥ चाहे जित वृक्षके नीचे घेठा हुआ मेंडरु दिखाई दे तो
 उस वृक्षने एक हाथ उत्तर साडे चार पुरुष नीचे जल होता है ॥ ३१ ॥ एक
 पुरुष नीचे न्योला निकलता है, फिर क्रमानुसार नीली, पीली और श्वेत मट्टी
 निकलती है, पीछे मेंडरुके सदृश रंगका पत्थर दिखाई पड़ता है ॥ ३२ ॥ यदि
 करंजवृक्षके दक्षिणमें वल्मीक दिखाई पड़े तो उस वृक्षसे दो हाथ दक्षिण साडे
 तीन पुरुष नीचे शिरा होती है ॥ ३३ ॥ आधे पुरुष नीचे कटुवा और
 फिर पहले पूर्वकी शिराने जल निकलता है, दूसरी स्वादु जलसे युक्त उत्तर-
 शिरा वहती है, पहले हरे रंगका पत्थर और उसके नीचे जल होता है ॥ ३४ ॥
 मधुपके वृक्षसे उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्षसे पश्चिम पांच हाथ छोड़कर साडे
 आठ पुरुष नीचे जल होता है ॥ ३५ ॥ पहला पुरुष खोदनेसे बड़ा सर्प दिखाई
 देता है. धूमवर्णकी भूमि फिर कुलथोके रंगका पत्थर निकलता है पीछे पूर्वशिरा
 निकलती है. जिसमें सदा श्लागदार जल वहता है ॥ ३६ ॥ तिलकवृक्षके दक्षिण
 कुशा और दूर्वा करके युक्त स्निग्ध वल्मीक हो तो उस वृक्षसे पांच हाथ पश्चिम
 पांच पुरुष नीचे जल होता है और पूर्वशिरा वहती है ॥ ३७ ॥ कदंबवृक्षके पश्चि-
 ममें बमई हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ दक्षिण पौने छः पुरुष नीचे जल होता

हस्तप्रितयात् पद्भिः पुरुषैस्तुरीयोऽनैः ॥ ३८ ॥ कौवेरी चात्र शिरा शरी-
जलं लोहगन्धि चाशोम्यम् । कनकनिम्बो मण्डूको नरमात्रे मृत्तिका शिरा
॥ ३९ ॥ बल्मीकसंवृतो यदि तालो वा भवति नालिकेरो वा । पश्चात् पृ-
भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या ॥ ४० ॥ याम्येन कपित्थस्याऽहिंसंभवे-
बुदग्जलं वाच्यम् । सम परित्यज्य करान् खात्वा पुरुषान् जलं पञ्च ॥ ४१ ॥
कर्दुरकोऽहिः पुरुषे कृष्णा मृत्पुटमिदपि च पापाणः । श्वेता मृत्तुविन-
शिरा ततश्चोत्तरा भवति ॥ ४२ ॥ अश्मन्तकस्य वामे बदरो वा दृश्यते प्री-
निलयो वा । पद्भिर्दक् तस्य करैः सार्धं पुरुषत्रये तोयम् ॥ ४३ ॥ कूर्क-
प्रथमे पुरुषे पापाणो धूसरः सप्तिकता मृत् । आशी शिरा च याम्या पूर्वोत्तरौ
द्वितीया च ॥ ४४ ॥ वामेन हरिद्रतरोर्बल्मीकश्चेत्ततो जलं पूर्वं । हस्तशिरा
पुरुषैः सङ्ग्यैः पञ्चभिर्भवति ॥ ४५ ॥ नीलो भुजगः पुरुषे मृत्तुता मरक-
पमश्वाशमा । कृष्णा भूः प्रथमं वारुणी शिरा दक्षिणे नान्या ॥ ४६ ॥ जलाशिरा

है ॥ ३८ ॥ वहां उत्तराशिरा निकलती है, जल बहुत होता है, परन्तु उसमें लोह
गन्ध आता है, एक पुरुष खोदनेसे सुवर्णके रंगका मेंडक और फिर पीली
निकलती है ॥ ३९ ॥ बमईसे घिरा हुआ ताड़का पेड़ अथवा नारियलका
हो तो उस वृक्षसे छः हाथ पश्चिमकी चार पुरुष नीचे दक्षिणशिरा होती है ॥ ४० ॥
कैयके वृक्षसे दक्षिण बल्मीक हो तो उस वृक्षसे उत्तर सात हाथ छोड़कर दक्षि-
नेसे पांच पुरुष नीचे जल मिलता है ॥ ४१ ॥ एक पुरुष नीचे चित्रवर्णका पत्थर
और काली मट्टी, परतदार पत्थर फिर श्वेत मृत्तिका निकलती है, पीछे उत्तराशिरा
मिलती है ॥ ४२ ॥ अश्मन्तकवृक्षके बाई ओर चेरफा वृक्ष हो अथवा बल्मीक हो
तो उस अश्मन्तकवृक्षसे छः हाथ उत्तरकी साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है
॥ ४३ ॥ पाहिला पुरुष खोदनेसे कलुआ, फिर धूसरवर्णका पत्थर और रेत मिश्र
हुई मट्टी फिर पहले दक्षिणशिरा निकलती है और पीछे ईशानकोणकी शिरा निकल
आती है ॥ ४४ ॥ हरिद्र (हलदुआ) वृक्षकी बाई ओर बल्मीक हो तो उस
वृक्षसे तीन हाथ पूर्व एक तिहाई सहित पांच पुरुष नीचे जल होता है ॥ ४५ ॥
एक पुरुष नीचे नीला सर्प, फिर पीली मट्टी, हरे रंगका पत्थर और बड़ी मट्टी
निकलती है, फिर पहिले पश्चिमशिरा निकलती है और दूसरी दक्षिणशिरा नि-
कलती है ॥ ४६ ॥ निर्मल देशमें जहां बहुत जलाले देशके चिह्न दिताई है

देशे दृश्यन्तेऽनूपजानि चिह्नानि । वीरणदूर्वा मृदवश्च यत्र तस्मिन् जलं
 पुरुषे ॥ ४७ ॥ भार्ङ्गी विवृता दन्ती शूकरपादी च लक्ष्मणा चैव ।
 नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु याम्ये त्रिभिः पुरुषैः ॥ ४८ ॥ स्निग्धाः प्रलम्ब-
 शाखा यामनविटपद्रुमाः समीपजलाः । सुपिरा जर्जरपत्रा लक्ष्माश्च जलेन
 सन्त्यक्ताः ॥ ४९ ॥ तिलकाम्रातकवरुणकभल्लातकबिल्वतिन्दुकाङ्गोष्ठाः ।
 पिण्डारशिरीषांजनपरुषका वज्जुलाऽतिवलाः ॥ ५० ॥ एते यदि सुस्निग्धा
 बल्मीकैः परिवृतास्ततस्तोयम् । हस्तोद्भिभिरुचस्तम्बतुर्गिरर्धेन च नरस्य ॥ ५१ ॥
 अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र । तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा
 पक्ष्म्यं वा धनं तस्मिन् ॥ ५२ ॥ कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेऽम्भस्त्रिभिः करैः
 पश्चात् । खात्वा पुरुषचितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात् ॥ ५३ ॥ नदति
 मही गम्भीरं यस्मिन्भरणाहता जलं तस्मिन् । सार्धोद्भिभिर्मनुष्यैः कौवेरी तत्र
 च शिरा स्यात् ॥ ५४ ॥ वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा

वीरण (गांडर) और दूर्वा जहां अत्यन्त कोमल हों, वहां एक पुरुष नीचे जल
 होता है ॥ ४७ ॥ भार्ङ्गी, निचोत, दन्ती (दातृणी), शूकरपादी, लक्ष्मणा,
 मालती यह औपाधि जहां हो, इनसे दो हाथ दक्षिणको तीन पुरुष नीचे जल
 होता है ॥ ४८ ॥ जहां स्निग्ध लंबी शाखाओंसे युक्त छोटे २ और फैले हुए वृक्ष
 हों, वहां जल समीप होता है और छिद्रयुक्त जर्जर पत्तोंवाले और रूखे वृक्ष जहां
 हों वहां जल नहीं होता ॥ ४९ ॥ जहां तिलक, अंबाडा, वरण, भिलावा,
 बेल, तेंदु, अंकोल, पिंडार, शिरस, अंजन, फालसा, अशोक और अतिवला
 ॥ ५० ॥ यह पेड़ अत्यन्त स्निग्ध बल्मीकोंसे घिरे हों, वहां इन वृक्षोंसे तीन
 हाथ उत्तर साढ़े चार पुरुष नीचे जल होता है ॥ ५१ ॥ जिस भूमिमें
 कहीं तृण न हों और बीचमें एक स्थान तृणयुक्त दिखार्ह दे या सब भूमिमें
 तृण हो और एक स्थान तृणहीन हो तो उस स्थानमें साढ़े चार पुरुष नीचे
 शिरा होती है या धन गटा होता है, यह कहना चाहिये ॥ ५२ ॥ जहां कांटेवाले
 वृक्षोंमें एक वृक्ष बिना कांटेवाला अथवा बिना कांटेवाले वृक्षोंमें एक वृक्ष कांटेवाला हो
 तो उस वृक्षसे तीन हाथ पश्चिमको एक तिहाई युक्त तीन पुरुष खोदनेसे जल
 अथवा धन निकलता है ॥ ५३ ॥ जहां पैरके ताडन करनेसे भूमिमें गम्भीर शब्द हो,
 वहां साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है और उत्तपशिरा निकलती है ॥ ५४ ॥ वृक्षकी
 एक शाखा भूमिकी ओर झुक रही हो, या पीछी पड़ गई हो तो उस शाखाके नीचे

स्यात् । विज्ञातव्यं शाखातले जलं त्रिपुरुषं स्वात्वा ॥ ५५ ॥ पट्टक
विकारो यस्य तस्य पूर्वं शिरा त्रिभिर्हस्तैः । भवति पुरुषैश्चतुर्भिः गतनेत्र
क्षितिः पीता ॥ ५६ ॥ यदि कण्टकारिका कण्टकैर्विना दृश्यते सितैः कुम्भैः
तस्यास्तलेऽम्बु वाच्यं त्रिभिर्नरैरर्धपुरुषे च ॥ ५७ ॥ खर्जुरी द्विशिरसा
भवेज्जलविवर्जिते देशे । तस्याः पश्चिमभागे निर्देश्यं त्रिपुरुषे वारि ॥ ५८ ॥
यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्यात्पलाशवृक्षो वा । सव्येन तत्र हस्त
येऽम्बु पुरुषत्रये भवति ॥ ५९ ॥ ऊष्मा यस्यां धात्र्यां धूमो वा तत्र रा
नरयुग्मे । निर्दष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण ॥ ६० ॥ यस्मिन् क्षेत्रे
क्षेत्रे जातं सस्यं विनाशमुयाति । स्निग्धमतिगण्डुरं वा महाशिरा क
युगे तत्र ॥ ६१ ॥ महदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि ।
करभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति ॥ ६२ ॥ पूर्वोत्तरेण पीनेरौ
वल्मीको जलं भवति पश्चात् । उत्तरगमना च शिरा विज्ञेया पश्चिमा
॥ ६३ ॥ चिह्नं दर्दुर आदौ मृत्कपिलातः परं भवेद्धरिता । भगनि च पुनः

तीन पुरुष खोदनेसे जल निकलता है ॥ ५५ ॥ जिस पेड़के फल और पुष्प
विकार हो, उस वृक्षसे तीन हाथ पूर्व चार पुरुष नीचे शिरा होती है, नीचे
निकलता है और भूमि पीले पीले रंगकी होती है ॥ ५६ ॥ जहाँ कटेरी
कटोंसे रहित और श्वेत पुष्पांसे युक्त दिखा दे उसके नीचे साढ़े तीन पुरुष
खोदनेसे जल निकलता है ॥ ५७ ॥ जिस निर्जल देशमें खजूरा दो शिरा
हो, वहाँ उग सजूरा दो हाथ पश्चिमकी तीन पुरुष नीचे जल बहना
॥ ५८ ॥ श्वेत पुष्पांशु कर्णिकारवृक्ष अथवा दारुका वृक्ष हो तो उस
हाथ दक्षिणकी तीन पुरुष नीचे जल होता है ॥ ५९ ॥ जिस भूमिमें बाक
भूजा निकलता दिखाई दे तो वहाँ दो पुरुष नीचे बहुत जल बहनेवाला स्थान
पादिये ॥ ६० ॥ जिस खेतमें खेती उत्पन्न होकर नाश हो जाय अथवा
स्निग्ध खेती हो या खेती उत्पन्न होकर पीली पड़ जाय वहाँ दो पुरुष
बहुत ही जल होता है ॥ ६१ ॥ मागध देशमें जिस भूमिमें शिरा होती है
बहने है, ऊँटकी गोशिकी भूमिमें नीची ऊँची शिरा जाती है ॥ ६२ ॥
पट्टक (जल) के ईशानकोणमें वल्मीक हो तो उस स्थानमें
चार हाथ पश्चिमकी पाँच पुरुष नीचे उत्तर बहनेवाली शिरा होती है ॥ ६३ ॥
यहाँ खोदनेमें पाँच पुरुषमें मेंढक, छिन्न वणिज व सी

धोऽम्भा तस्य तले वारि निर्देशम् ॥ ६४ ॥ पीलोरेव प्राच्यां बल्मीकोऽतोऽध-
पञ्चमैर्हस्तेः । दिशि याम्यायां तोयं वक्तव्यं सप्तभिः पुरुषैः ॥ ६५ ॥ प्रथमे पुरुषे
भुजगः सिताक्षितो हस्तमात्रमूर्तिश्च । दक्षिणतो वहति शिरा सक्षारं भूरि पानी-
यम् ॥ ६६ ॥ उत्तरतश्च करीरादहिनिलये दक्षिणे जलं स्वादु । दशभिः पुरुषै-
र्होयं पुरुषे पीतोऽत्र मण्डूकः ॥ ६७ ॥ रोहीतकस्य पश्चादहिवासश्चेन्निभिः करै-
र्याम्ये । द्वादश पुरुषान् खात्वा सक्षारा पश्चिमेन शिरा ॥ ६८ ॥ इन्द्रतरोर्व-
ल्मीकः प्राग्दश्यः पश्चिमे शिरा हस्ते । खात्वा चतुर्दश नरान् कपिला गोधा
नरे प्रथमे ॥ ६९ ॥ यदि वा सुवर्णनाम्नस्तरोर्भवेद्वामतो भुजङ्गगृहम् । हस्त-
द्वये तु याम्ये पञ्चदशनरावसानेऽम्बु ॥ ७० ॥ क्षारं पयोऽत्र नकुलोऽर्धमानवे
ताम्रसन्निभश्चाशमा । रक्ता च भवति वसुधा वहति शिरा दक्षिणा तत्र ॥ ७१ ॥
बदरीरोहितवृक्षौ संपृक्तौ चेद्दिनापि बल्मीकम् । हस्तत्रयेऽम्बु पश्चात् पोडश-
भिर्मानवेर्भवति ॥ ७२ ॥ सुरसं जलमादी दक्षिणा शिरा वहति चोत्तरेणान्या ।

और पत्थर निकलता है इन सब सब चिह्नोंके नीचे जल होता है ॥ ६४ ॥
पीलवृक्षकेही पूर्वदिशामें बल्मीक हो तो उस वृक्षसे साढ़े चार हाथ दक्षिणको सात
पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ॥ ६५ ॥ पहले पुरुषमें श्वेत कृष्ण रंगका एक हाथ
लम्बा सर्प, फिर बहुतसा खारा जल बहनेवाली दक्षिणाशिरा निकलती है ॥ ६६ ॥
करीरवृक्षके उत्तर बल्मीक हो तो उस वृक्षके साढ़े चार हाथ दक्षिणको दश पुरुष
नीचे मधुर जल जानना चाहिये, यहां एक पुरुष खोदनेसे पीछे रंगका मेंढक
निकलता है ॥ ६७ ॥ रोहीतकवृक्ष (रुहीडा) के पश्चिममें बल्मीक हो तो उस
वृक्षसे तीन हाथ दक्षिणको चारह पुरुष खोदनेसे खारा जल बहनेवाली, पश्चिम-
शिरा निकलती है ॥ ६८ ॥ अर्जुनवृक्षके पूर्वमें बल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्षसे
एक हाथ पश्चिमको चौदह पुरुष खोदनेसे शिरा निकलती है, यहां पहिले पुरु-
षमें कपिल रंगकी गोद दिखाई देती है ॥ ६९ ॥ जो धतूरावृक्षके वामभागमें
बल्मीक हो तो उस वृक्षसे दो हाथ दक्षिणको पन्द्रह पुरुष नीचे जल होता
है ॥ ७० ॥ वह जल खारा होता है आध पुरुष नीचे न्योला और तांबेके रंगका
पत्थर, लाल रंगकी भूमि मिलती है ॥ ७१ ॥
घेर और रुहीडा यह दोनों वृक्ष जो ॥ ७२ ॥ यहां जल
वृक्षोंसे तीन हाथ पश्चिमको सोलह पुरुष नीचे जल होता है ॥ ७२ ॥ यहां जल
अत्यन्त मधुर होता है, पहिले दक्षिण शिरा और पीछे दूसरी उत्तर शिरामी बहती

पिष्टनिभः पापाणो मृच्छेता वृश्चिकोऽर्धनरे ॥ ७३ ॥ सकरीरा चेदरांति
करैः पश्चिमेन तत्राम्भः । अष्टादशानिः पुरुषैरेशानी बहुजला च शिरा ॥ ७४ ॥
पीलुसमेता बदरी हस्तत्रयसंमिते दिशि प्राच्याम् । विंशत्या पुरुषाणामनेन
मोऽत्र सक्षारम् ॥ ७५ ॥ ककुत्तकरीरावेकत्र संयुती यत्र ककुत्तविली ॥
हस्तद्वयेऽस्तु पश्चान्नैरर्धवेत्पञ्चविंशत्या ॥ ७६ ॥ वल्मीकमूर्धनि पदा द्वा
कुशाब्ध पाण्डुराः सन्ति । कूपो मध्ये देवो जलमत्र नैकविंशत्या ॥ ७७ ॥
भूमी कदम्बकयुता वल्मीके यत्र दृश्यते दूर्वा । हस्तत्रयेण यान्ये नै
पञ्चविंशत्या ॥ ७८ ॥ वल्मीकत्रयमध्ये रोहीतकपादपो यदा भवति । त
वृक्षैः सहितस्त्रिभिर्जलं तत्र वक्तव्यम् ॥ ७९ ॥ हस्तचतुष्के मध्याद पो
निष्ठांयुलैरुद्वारे । चत्वारिंशत्पुरुषान् स्वात्वाश्मातः शिरा भवति ॥ ८० ॥
ग्रन्थिनचुरा यस्मिच्छमी भवेदुत्तरेण वल्मीकः । पश्चात्पञ्चकरान्ते प
संख्यकैः सलिलम् ॥ ८१ ॥ एकस्याः पञ्च यदा वल्मीका मध्यमो भवेत्पे

दे. आटेके समान श्वेत रंगका पत्थर, श्वेत मृत्तिका और आध पुरुष नीचे नि
दिराई देता है ॥ ७३ ॥ जो करीरवृक्षके साथ येरीका वृक्ष हो तो उन वृक्षों के
हाथ पश्चिम अठारह पुरुष खोदनेसे जल निकलता है, वहां बहुत जल बहने
इशानाशिरा होती है ॥ ७४ ॥ पीलुवृक्षके सहित येषा वृक्ष हो तो उनसे दो
हाथ पूर्वको बीच पुरुष नीचे खारा जल होता है, जो कमी नहीं खारता ॥ ७५ ॥
जहां अर्जुनवृक्ष और करीरवृक्ष एकट्ठे हों अथवा अर्जुन वृक्ष और बेडवा
एकट्ठे हों तो उनसे दो हाथ पश्चिमको पचीस पुरुष नीचे जल होता है ॥ ७६ ॥
जो वल्मीकके ऊपर दूध और श्वेत रंगके कुश हों तो उस वल्मीकके नीचे
खोदनेसे इष्टीय पुरुष नीचे जल निकलता है ॥ ७७ ॥ जहांपर मुमिने वृक्ष
वृक्ष लगे हों और वल्मीकके ऊपर दूध दिराई दे, वहां उस कदम्बवृक्षके दो
दक्षिणको पचीस पुरुष नीचे जल होता है ॥ ७८ ॥ तीन वल्मीकोंके बीच
मांजिके तीन वृक्षोंमें युक्त रुहीटेका वृक्ष हो तो वहां जल कटना चाहिये ॥ ७९ ॥
मध्यम स्थित रुहीटेके वृक्षमें चार हाथ और मोलह वंगुल उत्तरसे पांडीय
खोदनेसे पत्थर निकलता है, उसके नीचे शिरा होती है ॥ ८० ॥ वहां
बांझवृक्ष वल्मीक हो और उमके उत्तर वल्मीक हो तो शमी वृक्ष
पश्चिमसे पश्चिम वृक्ष नीचे जल होता है ॥ ८१ ॥ एक स्थानमें पाच रंग

तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा नरपृष्ठा पञ्चवर्जितया ॥ ८२ ॥ सपलाशा यत्र शमी
पश्चिमभागेऽम्बु मानवैः पृष्ठया । अर्धनरेऽहि प्रथमं सवालुका पीतमृत्तरतः
॥ ८३ ॥ बल्मीकेन परिवृतः श्वेतो रोहितको भवेद्यास्मिन् । पूर्वेण हस्तमात्रे
सप्तत्या मानवैरम्बु ॥ ८४ ॥ श्वेता कण्टकबहुला यत्र शमी दक्षिणेन तत्र
पयः । नरपञ्चकसंयुतया सप्तत्याहर्निरार्थे च ॥ ८५ ॥ मरुदेशे यच्चिह्नं न
जाङ्गले तैर्जलं विनिर्दिश्यम् । जम्बूवेतसपूर्वे ये पुरुषास्ते मरौ दिगुणाः ॥ ८६ ॥
जम्बूद्विवृता मूर्वा शिशुमारी सारिवा शिवा श्यामा । वीरुधयो वाराही ज्योति-
ष्मती च गरुडवेगा ॥ ८७ ॥ सूकरिकमापपर्णी व्याघ्रपदाश्चेति यदहर्निलये ।
बल्मीकादुत्तरतस्त्रिभिः करैस्त्रिपुरुषे तोयम् ॥ ८८ ॥ एतदनुपे वाच्यं जाङ्गल-
भूमौ तु पञ्चाभिः पुरुषैः । एतैरेव निमिचेर्मरुदेशे सप्तभिः कथयेत् ॥ ८९ ॥

उनके मध्यका बल्मीक श्वेत बल्मीकमें पचपन पुरुष खोदनेसे जलकी शिरा निक-
लती है ॥ ८२ ॥ जहां पलाशवृक्षयुक्त शमी वृक्ष हों, वहां उन वृक्षोंसे पांच हाथ
पश्चिम साठ पुरुष नीचे जल होता है, प्रथम आध पुरुष खोदनेसे सर्प और पाँछे
बालू मिली हुई पीली मट्टी निकलती है ॥ ८३ ॥ जहां बल्मीकसे घिरा हुआ श्वेत
रंगका कड़ीढेका वृक्ष हो वहां उस वृक्षसे एक हाथ पूर्वको सत्तर पुरुष नीचे जल
होता है ॥ ८४ ॥ जहां बहुत कांटोंसे युक्त श्वेत शमीवृक्ष हो, वहां उस वृक्षसे
एक हाथ दक्षिणको पचहत्तर पुरुष नीचे जल होता है और आध पुरुष खोदनेपर
सर्प निकलता है ॥ ८५ ॥ मरुदेशमें जलज्ञानके जो यह चिह्न कहे इन चिह्नोंसे
जांगलदेशमें जल नहीं कहना चाहिये अर्थात् जांगल देशमें इन चिह्नोंसे जलका
ज्ञान नहीं होता, जामन, वेदमजनुं आदि वृक्षोंके चिह्नोंसे प्रथम जलज्ञान कहा,
यह चिह्न मरुदेशमें दिखाई दे तो जितने पुरुष नीचे पहले उन चिह्नोंसे जल
कहा, वे पुरुष यदांपर देने कहने योग्य है, बहुतही जलवाले देशको अनूपक
कहते हैं, जलके अभाववाला देश मरुस्थल कहाता है, इन दोनोंसे अलग जो
देश हो अर्थात् जहां बहुत अधिक और अत्यन्त कम जल न होय, यह जांगल
देश है, इस भांति तीन प्रकारके देश होते हैं ॥ ८६ ॥ जामन, निषोत, मूर्वा,
शिशुमार, शरिवन, शिवा, श्यामा, वाराहीकंठानी, गरुडवेगा ॥ ८७ ॥ सूकरिका,
मपवन और व्याघ्रपदा (वधनखी) यह औषधी जो बल्मीकके ऊपर हो तो उस
बल्मीकसे तीन हाथ उत्तरको तीन पुरुष नीचे जल होता है ॥ ८८ ॥ तीन पुरुष
नीचे जलकी बात अनूप देशमें कहनी चाहिये, जो यह चिह्न जांगलदेशमें

एकानिभा यत्र मही तृणतरुवल्मीकगुल्मगारिहीना । तस्यां यत्र विकारो वा
 धरित्र्यां जलं तत्र ॥ ९० ॥ यत्र स्निग्धा निम्ना सवालुका सातुनादिनी
 स्यात् । तत्रार्धपञ्चमैर्वारि मानवैः पञ्चभिर्वादि वा ॥ ९१ ॥ स्निग्धतरुणां रस
 मरैश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च । तरुगहनेऽपि हि विरुतो यस्तस्मात्तद्वदेव वदेत् ॥ ९२ ॥
 नमते यत्र धरित्री सार्धं पुरुषेषु जाङ्गलानू । कीटा वा यत्र विनालयेन वा
 षोऽप्यु तत्रारि ॥ ९३ ॥ उष्णा शीता च मही शीतोष्णांजस्त्रिभिर्नरैः सार्धं
 इन्द्रधनुर्मत्स्यो वा वल्मीको वा चतुर्हस्तात् ॥ ९४ ॥ वल्मीकानां पतन्त
 यद्येकोऽप्युच्छ्रिताः शिरा तदधः । शुष्यति न रोहते वा सत्यं यस्यां च वृक्ष
 ऽम्नः ॥ ९५ ॥ न्यग्रोधपलारोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः । वदनिपलम्

दिखाई दें तो तीन पुरुषके स्थानमें पांच पुरुष नीचे जल कहे. इनही विद्वे
 मरुस्थलमें देखनेसे सात पुरुष नीचे जल बतावे ॥ ८९ ॥ एकरंगकी भूमिमें ज
 तृण, वृक्ष, वल्मीक और गुल्म नहीं हों, ऐसी भूमि जहां विकारयुक्त अर्थात् ज
 प्रकारकी दिखाई दे, वहां पांच पुरुष नीचे जल होता है (भूमिमें एवही शब्द
 बहुतसी शाखायुक्त समूहके उत्पन्न होनेको गुल्म कहते हैं) ॥ ९० ॥
 जहां स्निग्ध नीची बालु रेतदार या जहां पैर रखनेसे शब्द हो, ऐसी भूमि हो
 वहां साढ़े चार पुरुष नीचे अथवा पांच पुरुष नीचे जल होता है ॥ ९१ ॥ अ
 बहुतसे स्निग्ध वृक्ष हों, वहां उन वृक्षोंसे दक्षिण चार पुरुष नीचे बहुतसे जल
 होना कहना चाहिये और बहुतसे वृक्षोंमें एक वृक्ष विकृत हो अर्थात् उसके ड
 पुष्प औरही प्रकारके हों तो उस वृक्षसे दक्षिणको चार पुरुष नीचे जल होता है ॥ ९२ ॥
 जिस जांगल या जिस अनूप देशमें पांच रखनेसे भूमि दब जाय वहां डेढ़ ड
 नीचे जल होता है और जहां बहुतसे कीड़े दिखाई दें और उनके रदनेश ध
 मट्टक न हो वहांभी डेढ़ पुरुष नीचे जल होता है ॥ ९३ ॥ जहां सघ्न भूमि क्षत
 हो और एक देशमें ठण्डी हो वहां या जहां सघ्न भूमि शीतल हो और एक देशमें
 गरम हो वहां साढ़े तीन पुरुष नीचे जल रहता है, इन्द्रधनुष, मत्स्य या वल्मीक
 जहां जांगल अथवा अनूप देशमें दिखाई दे, वहां चार हाथ नीचे जल होता है
 ॥ ९४ ॥ जहां जांगल या अनूप देशमें बहुतसे वल्मीकोंकी पांति हो, उसमें एक
 वल्मीक सयसे ऊंचा हो तो उस ऊंचे वल्मीकके नीचे चार हाथ सोढ़नेसे जल
 निचलती है और जहां खेती जमकर सूख जाय या जमेही नहीं, वहांभी चार हा
 नीचे जल होता है ॥ ९५ ॥ बड़, पीपल और गूलर यह तीन वृक्ष जहां हों

वापे तद्वद्वान्नं शिरा चोदक् ॥ ९६ ॥ आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा
प्रवाति कूपः । नित्यं स करोति भयं दाहं च समालुपं प्रायः ॥ ९७ ॥ नैर्ऋत-
कोणे घालक्ष्यं वनिताभयं च वायव्ये । दिक्त्रयमेतत्पक्त्वा शेपासु शुभावहाः
कूराः ॥ ९८ ॥ सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत्कृतं तदवलोक्य । आर्यातिः
कृतमेतद् वृत्तेरपि मानवं वक्ष्ये ॥ ९९ ॥ सिन्ध्यायतः पादपुष्पमवल्यो निश्छि-
द्रपत्राश्च ततः शिरास्ति । पद्मेभुरोशीरकुलाः सगुण्ड्राः काशाः कुशा वा नलिका
मलो वा ॥ १०० ॥ स्वर्जूरजम्बवर्जुनवेतसाः स्युः क्षीरान्विता वा द्रुमपुष्प-
वहयः । छत्रेभरागाः शतपत्रनीपाः स्युर्नक्तमालाश्च ससिन्दुवाराः ॥ १०१ ॥
विभीनको वा मदयान्तिका वा यत्रास्ति तस्मिन् पुरुषत्रयेऽम्भः । स्यात्पर्व-
तस्योपरि पर्वतोऽन्यस्तत्रापि मूले पुरुषत्रयेऽम्भः ॥ १०२ ॥ या मौञ्जकेः काश-
कुशैश्च युक्ता नीला च मृदन्न सशर्करा च । तस्यां प्रभृतं सुरसं च तोयं छप्पा-

वहां इन वृक्षोंके नीचे तीन हाथ खोदनेसे जल निकलता है और जहां बड़, पीपल
दोनों इकट्ठे हों, उनकेभी तीन हाथ नीचे खोदनेसे जल निकलता है। इन दोनों
स्थानोंमें उत्तर शिरा होती है ॥ ९६ ॥ गांवसे अथवा नगरसे आग्निक्वणमें कुआँ
हो तो नित्य भय देता है और प्रायः ग्राम और नगरमें आग्नि लगती है, जिसमें
मनुष्यभी जल जाते हैं ॥ ९७ ॥ नैर्ऋत्यक्वणमें कुआँ हो तो घालक्ष्यका क्षय
होता है। वायव्यक्वणमें कूप हो तो स्त्रियोंको भय होता है। यह तीन दिशा छोड-
कर बाक़ी पांच दिशाओंमें कूप शुभ होते हैं ॥ ९८ ॥ सारस्वतमुनिने जो उदका-
र्गल कहा है, वह देखकर यह उदकार्गल हमने आर्याछन्दके द्वारा कहा। अब मनुष्य
कहा उदकार्गलभी वृक्षोंमें कहते हैं ॥ ९९ ॥ वृक्ष, गुल्म और बल्ली जिस भूमिमें
क्षिण्य हों और छिद्रहीन पत्तोंसे युक्त हों, वहां तीन पुरुष नीचे शिरा होती है या
स्पष्टपत्र, गोखरू, खस, कुल, गंद्र (शर), काश, कुश, नलिका, नल यह छण
॥ १०० ॥ और स्वर्जूर, जामन, मर्जुन, वेतस वृक्ष हों या जहां वृक्ष, गुल्म और
बल्ली ऐसे हों, जिनमें दूध निकले अथवा छत्रो, हस्तिवर्णी, नागवेसर, कमल,
कदम्ब, नक्तमाल, सिंधुवार ॥ १०१ ॥ बहेडे और मदयान्तिका जहां हो
वहां तीन पुरुष नीचे जल होता है और जहां एक पर्वतके ऊपर दूसरा पर्वत
हो वहांभी ऊपरके पर्वतके मूलमें तीन पुरुष नीचे जल होता है ॥ १०२ ॥
मूँज, काश और कुश करके जो भूमि युक्त हो; जहां परंपरावी पणिकामोटे
मिली नाली मदी हो तो वहां बहुत और मोटा जल होता है, जहां काली या लाल

यथा यत्र च रक्तमृदा ॥ १०३ ॥ सशर्करा ताम्रमही कषायं हं
 कपिला करोति । आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टं मिष्टं ॥ १०४ ॥
 शाकाश्वकर्णार्जुनविल्वसर्जा श्रीपर्व्यारिष्टाधवशिखरा-
 पर्वैर्द्रुमगुल्मवह्नयो रुक्षाश्च दूरैः शु निवेदयन्ति ॥ १०५ ॥ सुवर्णा-
 रानुवर्णा या निर्जला सा वसुधा प्रदिष्टा । रक्तांकुराः क्षीरयुवाः क-
 धरा चेज्जलमश्मनोऽधः ॥ १०६ ॥ वैदूर्यमुद्राम्बुदमेचकात्ता गन्त-
 म्बरसन्निभा वा । भृङ्गनाजनाभा कपिलायवा या क्षेया शिला धूर्ति-
 ॥ १०७ ॥ पारावतक्षेत्रिघृतोपमा वा क्षीमस्य वसस्य च तुला-
 सोमवह्न्याश्च समानरूपा साप्याशु तोयं कुरुतेक्षयं च ॥ १०८ ॥
 समेता पृथक् विचित्रैरापाण्डुभस्मोद्गतरानुरूपा । भृङ्गोत्तमाद्यिन्द्रु-
 सूर्याग्निवर्णा च शिला वितोया ॥ १०९ ॥ चन्द्रातपस्फटिकमही

मही दो वहांभी बहुत और मधुर जल होता है ॥ १०३ ॥ शर्करा (क-
 र्णोसे मिली हुई तांबेके रंगकी) भूमि हो तो उसमें करीले स्वाद का जल
 है । कपिल रंगकी भूमिमें खारा पानी होता है । पाण्डुरंगकी भूमिमें
 स्वादका जल निकलता है और नीले रंगकी भूमिमें मीठा जल होता है ।
 शाक, अश्वकर्ण, अर्जुन, विल्व, सर्ज, श्रीपर्णी, अरिष्ट, और शोषण
 जहां उदवाले पर्वोसे युक्त हों और जहां यूश, गुल्म, वेलेमी जिद्राके पर्व
 और करी हों वहां जल बहुत दूर होता है ॥ १०५ ॥ जो भूमि सूर्य, क-
 र्कट, गन्धर्भके रंगकी हो वह भूमि जलहीन होती है और जिस छत (पर्व)
 छाल गिके अंगुठोंदार करीर यूश हों और उन यूशोंमें दूध निरलता हो
 रके नीचे जल होता है ॥ १०६ ॥ वैदूर्य माणि, मुद्र (मृग) और वेलेमी
 जो शिला कृष्णवर्ण हो वपके दूध गूलरके समान रंग हो, जो शिला कोरों
 समान आनेवाले रंगकी निरल या कपिल वर्ण हो उस शिलाके निरल
 जल होता है ॥ १०७ ॥ जो शिला पारावत (कनूर), शर, तम-
 रपरा या जो यत्रके पाममें आनेवाली सोमवेलही समान रंगकी हो
 शिला अश्व जल करती है ॥ १०८ ॥ तांबेके रंगके शिला
 विन्दुमणि युक्त जो शिला हो, पाण्डुरंगकी हो, अंगुठिकाके इतने
 और छत हो, सूर्य या आनेके समान रंगकी हो इस शिलाके जल
 होता है ॥ १०९ ॥ चन्द्रमही चांदनी, स्फटिक, मोती, मुराने की

पाभेन्द्रनीलमणिहिंशुलकाजगताः । सूर्योदयांशुहारितालनिभाभ्य याः
 ॥ शोभता मुनिवचोऽत्र च वृत्तमेतत् ॥ ११० ॥ स्ता सभेद्याभ्य शिलाः
 ॥ यज्ञैभ्य नागैभ्य सदाभिजुष्टाः । येषां च राष्ट्रेषु भवन्ति राज्ञां तेषामवृ-
 ॥ त्तमेतदुदाचित् ॥ १११ ॥ भेदं यदा नैति शिला तदानीं पालाशकाष्ठैः
 ॥ तिन्दुकानाम् । मज्जालपित्तानलमग्निकर्णा सुधाम्बुसिका प्रविदारमेति
 ॥ ११२ ॥ तोपं शृतं मोक्षकमस्मना वा यत्समलुत्वः परिपेचनं तत् । कार्प-
 ॥ त्तारयुतं शिलायाः प्रस्फोटनं वक्षिर्विवारितायाः ॥ ११३ ॥ तक्काजिक-
 ॥ सकुलतथा योजितानि वदराणि च तस्मिन् । समरात्रमुपितान्यभितन्नां
 ॥ पन्ति हि शिलां परिपेकैः ॥ ११४ ॥ नैवं पत्रं तक् च नालं तिलानां
 ॥ गामागं तिन्दुकं स्याद्बुधो । गोमूत्रेण स्नावितः क्षार पर्पा पटुत्वोऽनस्ता-
 ॥ नो भिद्यतेऽश्ना ॥ ११५ ॥ आर्कं पयो हुडुविपाणमपीक्षमेतं पारावता-

रूपके समान रंगकी जो शिला हो, तिंगरफके समान बहुत लाल रंगकी या अंजनकी
 समान बहुत काली, उदय होते हुए सूर्यके किरणोंकी समान बहुत लाल और
 नकदार हो अथवा हरितालके तुल्य पीले रंगकी शिला हो ती वह शुभ होती है.
 ॥ मकारणमें आगे कहा हुआ वृत्त मुनिवचन है अर्थात् प्रामाणिक है ॥ ११० ॥
 ॥ जो शिला कही यह सब शुभ है, इसलिये इन शिलाओंको सोदना योग्य
 ॥ है. यह शिला सदा यज्ञ और नागोंसे सेवित रहती है, जिन राजाओंके राज्यमें
 ॥ ती शिला हो उनके राज्यमें कभी अवृष्टि नहीं होती ॥ १११ ॥ कूप आदि
 ॥ गद्दनेके समय शिला निकल आवे और वह फूट न सके तो उसके ऊपर ढाक
 ॥ शर तेंदूके काष्ठको जलायकर उस शिलाको छाल कर ले फिर उसके ऊपर चूनेकी
 ॥ लीसे मिला हुआ जल छिड़के ती वह शिला टूट जाती है ॥ ११२ ॥ मरुवा
 ॥ सक्की मसूर मिलाय जलको ओटावे फिर उसमें शरकर खार मिला पीछे अग्निसे
 ॥ पाई हुई शिलाके ऊपर सात बार उस जलको छिड़के ती शिला टूट जाती है
 ॥ ११३ ॥ छाल, कांजी, मघ, कुलपी और बेरके फल इन सबको एक बरतनमें
 ॥ गाव राखि रखले फिर शिलाको पहले कही कई रीतिसे तपाय इन वस्तुओंसे पार
 ॥ गर छिड़के ती वह शिला टूट जाती है ॥ ११४ ॥ नींबूके पत्ते, नींबूकी छाल,
 ॥ तेलोंका नाल, अपामार्ग (चिरघिया), तेंदूके फल गिलोप इनकी मसूरको
 ॥ गोमूत्रसे छान ले फिर पत्थरको तपायकर छः बार इसमें छिड़के ती वह पत्थर टूट
 ॥ जाता है ॥ ११५ ॥ हुडुमेपके सींगको जलायकर उसकी स्याही कबूतर और घुरेकी

खुशालता च युतं प्रलेपः । दङ्कस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं पञ्चाच्छित्त
 न-शिलासु भवेद्विघातः ॥ ११६ ॥ क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते शिरोति
 शायितमायसं यत् । सम्यक् छितं चाश्मनि नेति जङ्गं न चान्पलोहेकी
 तस्य कौण्ड्यम् ॥ ११७ ॥ वापी प्रागपरायताम्बु सुचिरं धने न यान्प्रोव
 फलोलैरवधारमेति मरुता सा प्रायशः प्रेरतिः । तां चेदिच्छति सारदाहमि
 संपातमाधारयेत् पापाणादिभिरेव वा प्रतिचर्य क्षुण्णं द्विपार्श्वोदिति ॥ ११८ ॥
 फकुभवदाघ्रपुक्षकदम्बैः तानिचुलजम्बूवेतसनीपैः । कुरवकतालाशोकमधूकै
 कुलविमिश्रैश्चावृततीराम् ॥ ११९ ॥ द्वारं च नैर्वाहिकमेकदेशे कार्यं शि
 सञ्चितवारिमार्गम् । कोशस्थितं निर्विवरं कपाटं कृत्वा ततः पाशुभिरावृत
 ॥ १२० ॥ अञ्जनमुस्तोर्शरैः सराजकोशातकामलकचूर्णैः । कतकफलम
 युक्तैर्योगैः कूपे प्रदातव्यः ॥ १२१ ॥ कलुषं कटुकं लवणं विरसं सति

बीटके साथ पीसकर मिला ले और इन सबको आकके दूधमें डालकर छेप कर
 शस्त्रपर लगावे और फिर तेलसे मथित टंक (पापाणदारकयंत्र) पर पान देकर ठंडा
 कर ले। शिलापर मारनेसे भी इस शस्त्रकी धार नहीं टूटेगी ॥ ११६ ॥ कदलीके छत
 छाछ मिलाकर एक दिन रहने दे फिर जिस लोहेमें उसको मिलाकर पान दी जा
 और वह भलीभांतिसे तेज धारवाला हो जाय तो फिर वह पत्थरपर भी मारने
 नहीं टूटता और लोहेपर लगनेसे भी खुटला नहीं होता ॥ ११७ ॥ पूर्व पक्ष
 मको लम्बी वापीमें जल बहुत कालतक रहता है और दक्षिण उत्तरको लंबी
 नहीं ठहरता क्योंकि पवनसे उठाये हुए बड़े तरंगोंसे वह टूट जाती है; जो दक्षिण
 उत्तर लंबी पुष्करणी बनाया चाहे तो जलकी चोटका बचाव करनेके लिये सब
 किनारोंको दृढ़ काष्ठसे बांध दे या पत्थर, ईंट आदिते चिनवा दे और बरतने
 समय उसके प्रत्येक मिट्टीके आसारको घोड़े हाथी आदिसे रूंदवाता जाय, किं
 वह मिट्टी दब जाय और जलके घबसे नहीं टूटे ॥ ११८ ॥ अर्जुन, बड़, म
 पिलखन, कदम्ब, निचुल, जामुन, वेतस, नीम (एक प्रकारका कदम्ब), उतर
 ताल, अशोक, महुआ और मौलसिरी ये वृक्ष उस वापीके तटपर लगावे ॥ ११९ ॥
 जल निकलनेके लिये एक ओर एक मार्ग रखे। जिसको पत्थरोंसे बंधवाकर
 पर देवे और उस मार्गकी छिद्ररहित फाटके तखतेसे ढककर ऊपरसे मिट्टीसे ढ
 दे ॥ १२० ॥ अंजन (सुरमा), मोथा, खस, राजकोशातकी (बड़ी तुलसी), अ
 और कतक (निर्मल) इन सबका चूर्ण कर कूपमें डाले ॥ १२१ ॥ जो

यदि वा शुभगन्धि भवेत् । तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धिगुणैरपरैश्च
युतम् ॥ १२२ ॥ हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः । शतभिष-
गित्यास्मिन्ने कूरानां शस्यते भगणः ॥ १२३ ॥ कृत्वा वरुणस्य बलिं घटवेत-
सकीलकं शिरास्थाने । कुसुमेर्गन्धैर्धूपैः सम्पूज्य निधापयेद्वधमम् ॥ १२४ ॥
मेघोद्भवं प्रथममेव मया प्रदिष्टं ज्येष्ठामतीत्य बलदेवमतादि दृष्ट्वा । भौमं दकार्ग-
लभिदं कथितं द्वितीयं सम्यग्बराहमिहिरेण मुनिप्रसादात् ॥ १२५ ॥
इति श्रीबराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां दकार्गलं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

अथ पंचपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

वृक्षायुर्वेदः ।

शान्तछायादिनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशयाः । परमादतो जलप्रान्तेष्वा-
रामान् विनिवेशयेत् ॥ १ ॥ मृद्धी भूः सर्ववृक्षणांहिता तस्यां तिलान् वपेत् ।

गदला, कडुआ, खारा, वेस्वाद या दुर्गन्धदार हो तो वह इस चूर्णके डालनेसे
निर्मल, मोठा, सुगन्ध और भी कई उत्तम गुणों करके युक्त हो जाता है ॥ १२२ ॥
हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी और शतभिषा नक्ष-
त्रमें फूलका आरंभ करना श्रेष्ठ है ॥ १२३ ॥ वरुणकी बलि देकर गंध, पुष्प,
धूप आदिसे घट या बेलवकं काठके कीलका पूजन करे फिर शिराके स्थानमें मधम
उस कीलकी गाड़ दे ॥ १२४ ॥ ज्येष्ठकी पूर्णिमा होनेसे पीछे वर्षाऋतुमें जो जलका
ज्ञान है वह मेघसम्बन्धी उदकार्गल है, वह हमने बलदेव आदि आचार्योंके मतको
देखकर पहलेही कह दिया, वह भूमिसम्बन्धी दूसरा उदकार्गल मुनियोंके प्रसादसे
भलीभांति बराहमिहिरने अर्थात् हमने कहा है, उदक शब्द जलका वाचक है और
अर्गल रुद्रवटका नाम है, जलका रुद्रवट जिस शास्त्रसे जानी जावे वह उदकार्गल
ब्रह्मा है “ नारं नीरं भुवनमुदकं जीवनीयं दकं च ” इति इत्यायुधः ॥ १२५ ॥
इति श्रीबराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयपुरादायादवास्त-
व्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकाचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

रापी, कूप, तालाब आदि जलाशयके ओर पास जो छायासे हीन हो तो
चित्तको आनंद नहीं देते, इस कारण जलाशयोंके किनारोंपर आराम (बगीचे)
लगावें ॥ १ ॥ कोमल भूमि सब वृक्षोंके लिये अच्छी होती है, जिस भूमिमें बाम

पुष्पितांस्तांश्च गृहीयात् कर्मैतत्प्रथमं भुवि ॥ २ ॥ अ.
 सप्रियङ्गवः । मङ्गल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा ॥ ३ ॥ पनसरो
 बलीजम्बूलकुचदाडिमाः । दाशापालीवताश्चैव बीजपूरातिमुक्ताः ।
 एते द्रुमाः काण्डा रोप्या गोमयेन प्रलेपिताः । मूलच्छेदेऽथ वा स्तम्भे
 णीयाः प्रयत्नतः ॥ ५ ॥ अजातशाखांश्छिन्ने जातशाखान् हिमाम्बे ।
 गमे च सुस्कन्धान्यथादिक् प्रतिरोपयेत् ॥ ६ ॥
 गोमयैः । आमूलस्कन्धलिप्तानां सङ्क्रामणविरोपणम् ॥ ७ ॥
 पूजां कृत्वा स्नानानुलेपनैः । रोपयेद्रोपितश्चैव पत्रैस्तैरेव जायते ॥ ८ ॥
 प्रातश्च घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे । वर्षासु च भुवः शोषे सेकन्या
 द्रुमाः ॥ ९ ॥ जम्बूवेतसवानरकदम्बोदुम्बराजुनाः ।
 चाश्च सदाडिमाः ॥ १० ॥ वज्जुलो नक्षमालश्च तिलकः पनसस्तथा ।
 रोऽध्रातकश्चैव पोडशानूपजाः स्मृताः ॥ ११ ॥ उत्तमं विशतिर्हस्ता

लगाना हो पहिले उसमें तिल बोवे, जब वे तिल फूलें तब उनका मर्दन करे
 भूमिका प्रथम कर्म है ॥ २ ॥ नींबू, अशोक, पुष्पाग, शिरष और मिर्चगु
 हैं इस कारण बागमें अथवा घरमें पहिले लगाने चाहिये ॥ ३ ॥ कटहर, कद
 केला, जामुन, लिङ्गुच (बडहर), दाडिम, दाख, पालीवत, बिजौरा और दूध
 इन वृक्षोंकी कलम लेकर उसको गोबरसे लेपकर या दूसरे वृक्षको मूलसे काट
 डालसे काट उसके ऊपर लगावे ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिनके शाखा उत्पन्न होते
 हैं ऐसे वृक्षोंको एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानमें अपनी दिशाके बीच में
 ऋतुमें लगावे. जिनके शाखा हो गई हैं उनको हेमन्तमें और अच्छे २ बरतों
 वृक्षोंको वर्षाऋतुमें लगावे ॥ ६ ॥ घृत, खस, तिल, शहत, वायविडंग, दूध
 गोबर इन सबको पीसकर मूलसे लेकर डालतक वृक्षोंको लेप दे पीछे
 एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानमें लगावे ॥ ७ ॥ पवित्र हो, स्नान अनुलेपन
 वृक्षकी पूजा करे पीछे उस वृक्षको दूसरे स्थानमें लगावे तब वह वृक्ष उत्तम
 करके पुक्त लग जाता है अर्थात् सखता नहीं ॥ ८ ॥ लगाये हुए वृक्षोंमें प्रोप्य
 सांष्ट सयेरे दोनों समय साँचने चाहिये; शीतकालमें एक दिनके अंतरसे दो
 और वर्षाऋतुमें भूमि सूखनेपर साँचना चाहिये ॥ ९ ॥ जामुन, वेतल, कद
 कदम्ब, गूलर, अर्जुन, बिजौरा, दाख, बडहर, दाडिम ॥ १० ॥ वज्जुल, नक्षत्र
 तिलक, कटहर, तिमिर और अंबाडा यह सोलह वृक्ष अनूपज अर्थात् बहुत
 बाले देशमें होते हैं ॥ ११ ॥ एक वृक्षसे बीस हाथके अंतरपर दूसरा वृक्ष

गान्तरम् । स्यानात् स्यानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् ॥ १२ ॥
 पाशजानास्तारवः संस्पृशन्तः परस्परम् । मिमैर्मूलैश्च न फलं सम्प्राप्यञ्छन्ति
 वेताः ॥ १३ ॥ शीतवातात्तपै रोगो जायते पाण्डुरप्रता । अवृद्धिश्च
 तालानां शाखाशोषो रसस्रुतिः ॥ १४ ॥ चिकित्सितमर्थतेषां शस्त्रेणादौ विद्यो-
 षम् । पिडङ्गवृत्तपङ्ककान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥ १५ ॥ फलनाशे कुल-
 पश्च मापेमुद्रैस्तिलैर्यवैः । शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाभिवृद्धये ॥ १६ ॥
 पिकाजशूलचूर्णस्पादके द्वे तिलादकम् । सक्तुप्रस्थो जलद्रोणो गोमंसतु-
 ष्या सह ॥ १७ ॥ सप्तरात्रोपितैरतैः सेकः कार्यो वनरतेः । वल्लीकुन्मलतानां
 च फलपुष्पाय सर्वदा ॥ १८ ॥ वासराणि दश दुग्धभाषितं बीजमाज्ययुतह-
 त्तयोजितम् । गोमयेन बहुशो विरुक्षितं कौडमार्गपिशितैश्च धूपितम् ॥ १९ ॥
 मत्स्यश्च करवसासमन्वितं रोपितं च पारिकर्षितावनौ । क्षीरसंयुतजलावसेचिनं

जाय तो उत्तम है, सोलह हाथ अंतरपर मध्यम और बारह हाथके अंतरपर लगाया
 जाय तो अधम होता है ॥ १२ ॥ जो वृक्ष बहुत समीप उत्पन्न हो, परस्पर स्पर्श
 करे और जिनकी जड़ मिल जावे वे पीड़ित होते हैं और इसी कारणसे भलीभांति
 नहीं फलते ॥ १३ ॥ बहुत शीत पवन और धूपसे वृक्षोंको गोग हो जाता है, तब
 उनके पत्ते पीले हो जावे, अंकुर नहीं बढ़ते, डाली सूखती और रस टपकने लगता
 है ॥ १४ ॥ रोगी वृक्षकी इस भांति विक्रिस्ता करे कि पहले जिस अंगको सड़ा सूखा
 आदि देखे उसको शस्त्रसे काट देवे फिर बायविडंग घृत और कीचको मिलाय-
 कर वृक्षोंके लेप करे पीछे दूध मिले जलसे साँचे ॥ १५ ॥ वृक्षमें फल न लगे तो
 कुलप, उडद, मूंग, तिल और जौ दूधमें डालकर ओढ़ावे, फिर उस दूधको ठंडा
 कर उस दूधसे फल और पुष्पोंकी वृद्धिके लिये वृक्षको साँचे ॥ १६ ॥ भेड़
 और बकरियोंके मगनका चूर्ण दो आदक, तिल एक आदक, सक्तु एक प्रस्थ, जल
 एक द्रोण और गोमंस एक तुला इन सबको एक पात्रमें डालकर ॥ १७ ॥
 ज्ञात रात्रितक रक्त्वे, पीछे फल और पुष्पोंके लिये इस जलसे वृक्ष, बेल, गुल्म
 और छताओंको साँचे ॥ १८ ॥ चाहे जिस वृक्षके बीजको घृतसे चिकने हाथ
 करके चुपड़े पीछे उसको दूधमें डाल दे इसी भांति नित्य दश दिनतक चिकने
 हाथसे चुपड़े दूधमें डालता जाय पीछे उसको गोवासे बहुत बार रूसा करे सूख
 और हरिणके मांसकी उस बीजको धूप देवे ॥ १९ ॥ फिर मत्स्य और सूकरकी

जायते कुसुमयुक्तमेव तत् ॥ २० ॥ तिलिङ्गीत्यपि क्लृप्तेषु
तिलचूर्णतनुभिः । पूनेमांससहितैश्च सेचिता पूरिता च वां
कषित्यवर्द्धाकरणाय मूलान्यास्फोटधात्राधववासिकान्द्र ।
सूर्यवर्द्धी श्यामातिमुक्तैः सहिताटमूली ॥ २२ ॥ क्षीरे मृते क
नाशयतं स्थाप्य कषित्यबीजम् । दिने दिने शोषितमङ्गारिणं
ततोऽधिरोप्यम् ॥ २३ ॥ हस्तायतं तद्वियुगं गर्भिरं सात्तातं तेन
शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषा तत् प्रलेम्बेऽस्मत्तमन्वितेन ॥ २४ ॥
तिलैर्यैश्च प्रदूरयेन्मृत्तिरूपान्तरस्थैः । मस्यऽपि पाण्डुः सार्द्धं च स्त
नत्वं तनुगागनं तत् ॥ २५ ॥ उक्तं च बीजं चतुर्युक्तारो मत्स्य
लेभ निष्कम् । पत्नी भवत्याशु शुभप्रसूता विस्मादनी मण्डमा

[illegible]

अङ्गोष्ठसम्भूतफलकल्केन भावितम् । एतच्चैतेन वा बीजं श्रेष्मातकफलेन
२७ ॥ वापितं करकोन्मिश्रं मृदि तत्क्षणजन्मकम् । फलजाराश्विता
भवतीति किमद्भुतम् ॥ २८ ॥ श्रेष्मातकस्य बीजानि निष्कृष्टीकृत्य
व प्रातः । अङ्गोष्ठविजलाभिश्छायायां समकृत्विवम् ॥ २९ ॥ माहिष-
वृटान्यस्य करीषे च तानि निक्षिप्य । करकाजलमृद्योने न्युनान्यद्वा
राणि ॥ ३० ॥ ध्रुवमृदुमूलविशाखा गुरुतं भ्रमणस्तयाविनीहस्तम् ।
नि दिव्यदग्निः पादपसंरोपणे भानि ॥ ३१ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वृत्तापूर्वशो नाम

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

ये सोये ती क्षीप्रही उत्तम पक्षों करके युक्त रहती हो जाये और भंडपक्षों दुरु-
जितको देखनेसे सबको विस्मय हो ॥ २६ ॥ अंगोष्ठवृत्तके फलके वक्र-
दे) से, अंगोष्ठकलके मेलसे अथवा लसोदेके फलसे अर्थात् उनके वक्र-
या तेलसे चाहे जिस बीजको ती भावना देवे अर्थात् ती बार जित बार ॥ २७ ॥
उसे ओलोंसे भीगी हुई मिट्टीमें बोरे तो उसी क्षण जम आता है, एलोंके
से धुरी हुई लता हो जाती है इसमें क्या अद्भुत है अर्थात् अरहरही होती
२८ ॥ युद्धिमान् मनुष्य लसोदेके बीज लेकर उनका उलटवा उतारे और
तेलफली विजली अर्थात् फलके भीतरका पिच्छिल जल उगरे छायामें उन
को सात भावना देवे अर्थात् भावना दे देकर छायामें गुरुता आवे ॥ २९ ॥
उन बीजोंको भैंसके गोबरसे पितकर भैंसके खुरे गोबरके होमें रख ऊँडे
जय ओले पटनेपर मिट्टी भीज जाये तब उसे ओलोंसे भीगी हुई मिट्टीमें उन
को बोरे तो एवही दिनमें वृक्ष होकर फल लग जावेगा ॥ ३० ॥ तीनों
रा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुषाधा, कुल, विशाखा, पुष्य, धरणि,
थनी और इस्त यह नक्षत्र दिव्य दक्षिणाले सुनोश्चने वृक्ष लगानेके दिने
करे हैं ॥ ३१ ॥

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितयां बृहत्संहितायां पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः
पंडितमलदेवभादनिश्चितः ॥ भाषाटीकायां पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

प्रासादलक्षण.

कृत्वा प्रभुतं सलिलमारामान्विनिवेश्य च । देवतापतनं कुर्यादयोधमात्रं
 वृक्षये ॥ १ ॥ इष्टापूर्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् बुभूषता । देवानामात्म
 कार्यो दयमप्यत्र दृश्यते ॥ २ ॥ सलिलोद्यानयुक्तेषु कृतेष्वकृतकेषु च ।
 स्थानेष्वेतेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः ॥ ३ ॥ सरःसु नलिनीक
 निरस्तगविराशिषु । हंसांसाक्षिभकङ्कारवीचीविमलवारिषु ॥ ४ ॥ हंसका
 ण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराविषु । पर्यन्तनिचुलच्छायाविश्रान्तजलचारिषु ॥ ५ ॥
 कौञ्चकाञ्चौकलापाश्च कलहंसकलस्वनाः । नद्यस्तोयांशुका यत्र शफरी
 कृतमेखलाः ॥ ६ ॥ फुल्लगिरिद्रुमोत्तंसाः सङ्गमश्रोणिमण्डलाः । पुलि
 न्युन्ननोरस्या हंसहासाश्च निम्नगाः ॥ ७ ॥ वनोपान्तनदीधौलनिर्ग

बहुत जल करके युक्त जलाशय बनाकर और उनके तटपर बाग लगाकर सब
 और धर्मकी वृद्धिके लिये देवताका मंदिर बनाना चाहिये ॥ १ ॥ यज्ञादि कर
 इष्ट कहाता है और बापी कूप तडागादि बनाना पूर्ण कहाता है, इष्टापूर्ते से
 उत्तम लोक मिलते हैं उनके पानेकी इच्छावाला पुरुष देवमंदिर बनानेके द्रष्ट
 इष्ट और पूर्ण दोनोंहीका फल मिलता है ॥ २ ॥ जल और उपवनसे युक्त स्था
 चाहि किसीके बनाये हुए हों, चाहे स्वामाविक बने रहें तो उन स्थानोंमें देव
 निवास करते हैं ॥ ३ ॥ ऐसे सरोवरमें देवता सदा विहार करते हैं कि जिन
 कमलरूप छत्रसे सूर्य किरण दूर त्रिये हों, हंसपक्षियोंके कंधोंसे प्रेरित श्वेत रत्न
 कि जिनका मार्ग उसमें है, निर्मल जल जिन सरोवरोंमें मरे हैं ॥ ४ ॥ हंस कर्त
 कौंच और चक्रवाक जिनमें शब्द कर रहे हैं और किनारोंके निचुलवृक्षों
 छायामें जहां जलके जीव विश्राम करते हैं ॥ ५ ॥ कौंचपक्षी जिनका बांघोइस
 है, कलहंसोंका मधुर शब्द जिनका शब्द है, जल जिनका वस्त्र है, मच्छों जिन
 मेखला है, किनारोंपर फूले वृक्ष जिनके कर्णपूर हैं, जल थलका संगम जिन
 श्रोणिमण्डल है, पुलिन जिसके उठे स्तन और हंसही हैं हास्य जिन
 उस नीचेकी बहनेवाली नदियोंके समीपवर्ती स्थानोंमें देवता लोग रह
 हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ वनके निकट नदी पर्वत और सरणोंके समीपकी भूमिमें जिन

मान्तभूमिषु । रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ॥ ८ ॥ भूमयो
 ब्राह्मणादीनां याः प्रोक्ता वास्तुकर्मणि । ता एव तेषां शस्यन्ते देवता-
 पतनेष्वापि ॥ ९ ॥ चतुःषष्टिपदं कार्यं देवतापतनं सदा । द्वारं च मध्यमं तत्र
 समदिक्स्थं प्रशस्यते ॥ १० ॥ यो विस्तारो भवेद्यस्य द्विगुणा तत्समुन्नातिः ।
 उच्छ्रायाद्यस्तृतीयोऽशस्तेन तुल्या कटिः स्मृता ॥ ११ ॥ विस्तारार्धं भवेद्रर्धो
 भित्तयोऽन्याः समन्ततः । गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम् ॥ १२ ॥
 उच्छ्रायात्वादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुद्गम्यरः । विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं
 शाखयोः स्मृतम् ॥ १३ ॥ त्रिषञ्चसप्तनवभिः शाखाभिस्तत्प्रशस्यते । अथः
 शाखाचतुर्भागे प्रतीहारी निवेशयेत् ॥ १४ ॥ शेषं मङ्गल्यविहगैः श्रीवृक्षस्य-
 स्तिकैर्घटैः । मिथुनैः पञ्चवर्षाभिः प्रमथैश्चोपशोभयेत् ॥ १५ ॥ द्वारमानादभा-

देवता रमण करते हैं और उपवनोंसे युक्त नगरोंमें भी देवता विहार करते हैं ॥ ८ ॥
 ब्राह्मण आदि चार वर्णोंको जैसी भूमि पहले गृह बनानेके लिये कह आये हैं
 वैसीही भूमि उन वर्णोंको देवताके मंदिर बनानेके अर्थ श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ देवमंदिरमें
 सदा पूर्वोक्त चौसठ पदका वास्तु करना चाहिये उस देवमंदिरमें मध्यम द्वार सम
 दिशामें स्थित हो तो श्रेष्ठ है ॥ १० ॥ देवमंदिरका जितना विस्तार हो उतसे
 दूनी उसकी ऊंचाई होती है, ऊंचाईको तिहाई बराबर देवमंदिरकी कटि होती है,
 सीढ़ीके ऊपर जहांसे देवगृहका आरंभ होता है उसको कटि कहते हैं ॥ ११ ॥
 विस्तारसे आधा गर्भ होता है, शेष आधे विस्तारमें चारों ओरकी भीत बनती है,
 गर्भकी चौपाईके समान द्वारका विस्तार और द्वारके विस्तारसे द्विगुण द्वारकी ऊंचाई
 होती है ॥ १२ ॥ द्वारकी ऊंचाईकी चौपाईके बराबर शाखा (चौखटका बाजू) और
 उद्गम्यर (चौखटके ऊपरके पगल) की चौड़ाई होती है, शाखाकी चौड़ाईकी चौपा-
 ईके तुल्य शाखाओंकी मोटाई होती है ॥ १३ ॥ शाखाकी जितनी चौड़ाई कही उसके
 बीचमें तीन, पांच, सात अथवा नौ शाखा हों तो द्वार श्रेष्ठ होता है; दोनों शाखाओंके
 नीचेके चतुर्थांशमें देवताओंके दो प्रतिहारोंकी मूर्ति खोदनी चाहिये ॥ १४ ॥ शाखा-
 ओंके शेष तीन चौपाई अंशोंको इसादि मंगलदायक पक्षी, बेल, स्वस्तिक, साँपया,
 फलश, मिथुन (सींगुरुपका जोड़ा), पत्र और छतागणोंसे शोभित करे ॥ १५ ॥
 द्वारकी ऊंचाईके प्रमाणमें उसका अष्टमांश घटाकर जो बचे वह पिंडिका (देवता-
 स्थापनका पीठ) सहित देवप्रतिमाकी ऊंचाईका प्रमाण होता है- उस पीठके सहित
 प्रतिमाकी ऊंचाईके तीन भाग करके दो भागके बराबर ऊंची प्रतिमा और एक-

गोना प्रतिमा स्यात्साविण्डिका । द्वौ भागौ प्रतिमा तत्र तृतीयांशश्चित्रिणी
 ॥ १६ ॥ मेरुमन्दरकैलासविमानच्छन्दनन्दनाः । समुद्रपद्मगुरुनन्दनवर्ध-
 ञ्जराः ॥ १७ ॥ गुरुराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः । सिंहो वृक्षः
 श्कोणः पोटशाष्टाश्रयस्तथा ॥ १८ ॥ इत्येते विंशतिः प्रोक्ताः प्रासादाः सर्व-
 मया । यथोक्तानुक्रमेणैव लक्षणानि वदाम्यतः ॥ १९ ॥ तत्र पद्मभिर्द्वौ
 दशभौमो विचित्रकुहरश्च । द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्द्वारिश्चद्वस्तविस्तीर्णः ॥ २० ॥ वि-
 द्वस्तायामो दशभौमो मन्दरः शिखरयुक्तः । कैलासोऽपि शिखरवान् क-
 विशोऽष्टभौमश्च ॥ २१ ॥ जालगवाक्षकयुक्तो विमानसंज्ञाक्षितमकापा-
 नन्दन इति पद्मभौमो द्वारिश्चः पोटशाण्डयुतः ॥ २२ ॥ वृत्तः समुद्रनाम च
 पद्माकृतिः शयानशौ । शृङ्गेणैकेन भवेदेकैव च भूमिका तस्य ॥ २३ ॥
 गरुडाकृतिश्च गरुडो नन्दति च पट्चतुष्कविस्तीर्णः । कार्यश्च समन्ततो

भागके समान ऊँची पाण्डिका (पोट) बनाना चाहिये, यह प्रमाण तब मात्र
 लिये कहा है ॥ १६ ॥ मेरु, मंदर, कैलास, विमानच्छंद, नंदन, समुद्र, पद्म, वृ-
 न्देवर्धन, कुंजर ॥ १७ ॥ गुरुराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृक्ष, व-
 ष्कोण, पोटशास्त्रि और अष्टाश्रि ॥ १८ ॥ यह बीस नाम हमने प्रासादों के
 अब नामके क्रमसे इनके लक्षण कहते हैं ॥ १९ ॥ छः कोणवाला मेरुना-
 मासाद होता है, जिसमें चारह भूमिका खंड होता है और अनेक भांगिके भांगों
 गराशों परके युक्त होता है; उसमें चार द्वार चारों दिशाओंमें होते हैं और सब
 विस्तार बर्त्ताव हाथ होता है, चौसठ हाथ ऊँचाई होती है ॥ २० ॥
 पद्मकोण तीस हाथके विस्तारवाला, दश भूमिकाओंसे युक्त और शिखर
 मंदर प्रासाद होता है; कैलास प्रासादभी शिखरोंसे युक्त, अष्टाश्रि
 विस्तारवाला, आठ भूमिकाओं परके युक्त और पट्कोण होता है ॥ २१ ॥
 जाली श्लोसंदार इक्ष्मण हाथ विस्तारका और आठ भूमिकाओंसे युक्त
 विमानच्छंद नामक प्रासाद होता है, नंदन प्रासाद पट्कोण, छः भूमिकाओं
 युक्त, बर्त्ताव हाथ विस्तारवाला और सोलह अंशोंके युक्त होता है ॥ २२ ॥
 समुद्रनाम प्रासाद गोष्ठ होता है, वे दोनों प्रासाद आठ हाथ चौड़े होते हैं, सब
 परसे चंग होता है और दोनों एक २ भूमिकासे युक्त होते हैं ॥ २३ ॥ व-
 नासाद गरुडके आकारवासी होता है पल्लु उसके पंख और पूंछ नहीं होते, व-

१ अर्द्ध प्रासादके ऊपर हुआ करते हैं निम्नको शिखर या शृंग कहते हैं ।

विभूषितोऽण्डेभ्य विशत्या ॥ २४ ॥ कुञ्जर इति गजपृष्ठः षोडशहस्तः समन्ततो
मूलात् । गुह्यराजः षोडशकक्षिचन्द्रशाला भवेदलभी ॥ २५ ॥ वृष एकभू-
मिशृङ्गो द्वादशहस्तः समन्ततो वृक्षः । हंसो हंसाकारो षटोऽष्टहस्तः कलशरूपः
॥ २६ ॥ द्वारयुतभटुभिर्बहुधिसरो भवति सर्वतोभद्रः । बहुरुचिरचन्द्रशालः
पङ्क्तिः पञ्चभौमभ्य ॥ २७ ॥ सिंहः सिंहाकान्तो द्वादशकोणेऽष्टहस्त-
विस्तीर्णः । चत्वारोऽञ्जनरूपाः पञ्चाऽण्डयुतस्तु चतुरस्रः ॥ २८ ॥ भूमि-
कांऽण्डुलमानेन मयस्याष्टोत्तरं शतम् । सार्धं हस्तत्रयं चैव कथितं विश्वक-
र्मणा ॥ २९ ॥ प्राहुः स्थपत्यभात्र मतमेकं विषम्वितः । कपोतपालिसंयुक्ता

दोनों मासाद चौबीस हाथ विस्तारके सात भूमियोसे युक्त चौबीस अंठोंसे भूषित
करने चाहिये ॥ २४ ॥ कुंजर मासाद हाथोकी पीठके आकारका होता है और
मूलसे चारों ओर सोलह हाथ विस्तारवाला होता है, गुह्यराज मासाद गुह्य (कर्वा-
केय) के आकार बनता है और सोलह हाथ इसका विस्तार होता है, इन दोनों
मासादोंकी बलभी तीन २ चंद्रशालाओंसे युक्त होती है ॥ २५ ॥ वृष नाम
मासाद एक भूमिका और एक शृंगदार होता है, इसका विस्तार बारह हाथ है
और यह चारों ओरसे गोल (वर्तुल) होता है, हंसमासाद हंसपक्षीके आकारके
चोंच पंख और पूंछसे युक्त होता है; यहभी बारह हाथ चौड़ा, एक भूमिका और
एक शृंगसे युक्त होता है, षट्नामक मासाद कलशके आकारका होता है और
आठ हाथ उसका विस्तार होता है, यहभी एक भूमिका और एक शृङ्गयुक्त
होता है ॥ २६ ॥ सर्वतोभद्रनामक मासाद चारों दिशाओंमें चार द्वारोंसे युक्त
बहुत शिखरों करके शोभित, बहुत और सुन्दर चंद्रशालाओंसे भूषित छव्बीस
हाथका विस्तारमें चतुरस्र और पांच भूमिकाओंसे युक्त होता है ॥ २७ ॥ सिंह
नामक मासाद सिंहकी प्रतिमाके द्वारा भूषित बारह कोणोंसे युक्त और आठ हाथ
चौड़ा होता है, शेष चार मासाद वृक्ष, चतुष्कोण, षोडशाक्ष और अष्टाक्ष अपने
नामके समान आकारवाले होते हैं; यह चारों अंजनरूप होते हैं अर्थात् इनके
भीतर अंधकार रहता है, बाहरसे प्रकाश नहीं पहुँचता ॥ २८ ॥ मयके मतसे
एक भूमिका प्रमाण एक सौ आठ अंगुल होता है और विश्वकर्माने एक २ भूमिका
प्रमाण साठे तीन हाथ कहा है ॥ २९ ॥ विद्वान् कशीगर मय और विश्वकर्माके
मतको एकही करते हैं उनका यह कथन है कि विश्वकर्माने साठे तीन हाथ अर्थात्
चौरासी अंगुल भूमिका प्रमाण कहा, वह कपोतपालिकाको छोड़कर कहा है; जो

न्यूना गच्छन्ति तुल्यताम् ॥ ३० ॥ प्रासादलक्षणमिदं कथितं
यद्विरचितं तदिहास्ति सर्वम् । मन्वादिभिर्विरचितानि पृथूनि यानि तत्स
प्रति मयात्र कृतोऽधिकारः ॥ ३१ ॥

इति श्रीवाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रासादलक्षणं नाम
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

वज्रलेपलक्षण.

आमं तिन्दुकमामं कपित्थकं पुष्पमपि च शाल्मल्याः । बीजादि
क्रीनां धन्वनवल्को वचा चेति ॥ १ ॥ एतैः सालिलद्रोणः काययितव्योऽयम्
शेषश्च । अवतार्योऽस्य च कल्को द्रव्यैरेतैः समनुयोज्यः ॥ २ ॥ श्रीशङ्करः
सद्युग्यलुभल्लतककुन्दुत्तकसर्जरसीः । अतसीविल्वैश्च यतः कल्कोऽयं रत्नो
पात्यः ॥ ३ ॥ प्रासादहर्म्यवलभीलिङ्गप्रतिमासु कुक्ष्यकूपे । सन्तप्तो घटः
वर्षसहस्रायुतस्यापी ॥ ४ ॥ लाक्षाकुन्दुरुग्यलुगृहधूमकरित्यविल्वमग्नौ

उसमें कपोतपालिकाका प्रमाण जोड़ दिया जावे तो वह मयके कड़े प्रमाणके रूप
हो जाता है ॥ ३० ॥ यह प्रासादलक्षण हमने संक्षेपसे कहा. परन्तु गर्गश्रेणीके
प्रासादलक्षण रचा है वह सब इसमें आ गया है और मनु, वसिष्ठ, मय, नन्द
आदि आचार्योंने जो घटे २ प्रासादलक्षणग्रंथ रचे हैं उनसे स्मृतिके लिये
हमने यहां अधिकार किया ॥ ३१ ॥

इति श्रीवाराहमिहिराचार्यविरचितयां बृहत्संहि० पञ्चमोत्तरदेशीयपुण्यद्वारादयान्ति
पंडितवज्रलेपप्रासादमिश्रविर० मापाटीकायां षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

वैदूके कपे फल, कैवके कपे फल, सेमलके फूल, सलसीवृक्षके बीज, वंशस्पृश
छाल और वच ॥ १ ॥ इन सबसे एक द्रोण जलमें काय करे जब आठवां घण्टा
जाय तब उतारे ॥ २ ॥ पीछे उसमें

(देवदारु वृक्षका निर्यास), राख, अल
यह वज्रलेप नामक कह्य है ॥ ३ ॥ इस वज्रलेपको देवप्रासाद, देवो, देव
विजयि, देवप्रतिमा, मिथि और कूर्मोंमें गर्भ करके लगावे. यह छेद करके
स्वच्छ रहता है ॥ ४ ॥ लास, कुन्दरु, गुग्गुलु, घरेके धूपका आज, देवो

।। गवलाफलान्दुर्गमरुतफलमधूकमाजिडाः ॥ ५ ॥ सर्जरसरमातृकानि चेति
 क्लृप्तः कृतो द्वितीयोऽयम् । वज्राख्यः प्रथमगुणैरयमपि तेष्वेव कोपेण ॥ ६ ॥
 शोभहिषानविषाणैः स्वररोम्णा महिषचर्मगव्यैश्च । निम्बकश्चित्थरसैः सह वज्र-
 त्तरो नाम कल्कोऽयः ॥ ७ ॥ अष्टौ सप्तकभागाः कांसस्य द्वौ तु रौतिका-
 भागः । मयकथितो योगोऽयं विज्ञेयो वज्रसङ्गतः ॥ ८ ॥

इति भीमराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वज्रलेतो नाम
 सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

प्रतिमादक्षिण.

जालान्तरगे धानी यदष्टनरं दर्शनं रजो याति । तद्विद्यतारवाणं प्रथमं तद्वि-
 प्रमाणानाम् ॥ १ ॥ परमाणुरजो बालाप्रलितयूका यवोऽष्टलं चेति । अष्टगु-

बेलस्य गिरी, नागपाल (गंगेण) के फल, महुए के फल, मञ्जीठ ॥ ५ ॥ रात
 बोल, आंरले इन सब वस्तुओं के करकसंभी परली भांति सिद्ध नि ये द्रोणमर जलमें
 मिलानेसे दृक्ता वज्रलेप सिद्ध होता है, इसमें भी वही गुण है जो पहले वज्रलेपमें बड़े
 हैं और यह भी माताद आदिके लेपमें हो पहले वज्रलेपमें भांति फल आता है ॥ ६ ॥
 गो, भैंस और बकरा इन तीनोंके सींग, गर्दम, माहिष और गो इन तीनोंके चर्म,
 नींबके फल केपके फल और नील इन सबने पहले भांति तीसरा करक सिद्ध
 होता है, इसका नाम वज्रतर है, इसमें भी पहले बड़े हुए गुण हैं और पहले
 कापोंमें फल आता है ॥ ७ ॥ आठ भाग सीता, दो भाग कांगा, एक भाग
 पीतल इन सबसे एकका बलावे यह मयका का हुआ योग है और इसका
 नाम वज्रसंघात है ॥ ८ ॥

इति श्रीभारहमिहिराचार्यविरचितार्वा बृहत्संहितायां पद्मिनोत्तरदेशीयपुत्र-

दासादनास्तस्य-पण्डितवत्तदेवप्रसादामेवविरचितार्वा भाषाटीकस्य

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

जालोंके बीचसे खरबका प्रकाश आता है, उसमें जो अत्यन्तसूक्ष्म रज देख पड़ता
 है, उससे परमाणु आने, वही सब मयकाओंमें पड़ता है ॥ १ ॥ आठ परमाणु

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ २
 यस्तृतीयोऽंशः । तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्विद्युणपरिमाणा ॥ ३ ॥
 गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम् । नग्राजिता तु चतुः
 कथितम् ॥ ४ ॥ नासाललाटाचिबुकग्रीवाश्वतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुलौ
 हनुके चिबुकं तु व्यंगुलं विस्तृतम् ॥ ५ ॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्तृतम् ।
 परे शंसौ । चतुरंगुलौ तु शंसौ कर्णौ तु व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णयोः
 कार्योऽर्धपञ्चमे भूतमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनवन्दनम्
 ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तर्कर्णयोर्विवरम् । अष्टांगुलं
 माणस्तत्स्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुर्गुला

रज, आठ रजका बालाग्र, आठ बालाग्रकी लिखा, आठ लिखाकी यूका, आठ
 यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण
 है । एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका
 घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का
 है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥
 नितनी ऊँचाई प्रतिमाकी आवे उसके चारह भाग कर एक २ भागके कि
 माग करे, वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल
 एक सौ आठ अंगुल होती है, प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे चार
 चौड़ा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्राजित नाम आचार्यने कहा है ।
 मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोड़ी, गारदन और
 अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये, हनु दो २
 लम्बे बनाने, चिबुककी चौड़ाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल
 माया होता है; मायेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी)
 कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रखने, कर्ण दो दो अंगुल चौड़े बनाने ॥
 कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भू सम सूत्रसे, साठे चार अंगुल
 करना चाहिये; कर्णका छेद और मुकुमारक अर्थात् कर्णोत्तरे के समीप
 मग नेत्रप्रबन्धके सशान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र
 कर्णांतरा अंतर चार अंगुल करना ठीक है, नीचेका ओष्ठ एक अंगुल
 ऊपरका ओष्ठ माय अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल
 बन्धने चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और देह अंगुल चौड़ा रखना और

र्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्याचम्यंगुलं व्याचम्य ॥ ९ ॥ व्यंगुलतुल्यो
सापुटी च नासा पुटाग्रतो द्वेया । स्याद् व्यंगुलमुच्छ्रापधतुरंगुलमन्तरं
दिणोः ॥ १० ॥ व्यंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तत्रिणागिका तारा । दृक्
रापत्रांशो नेत्रविकारोऽगुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश ध्रुवोऽ-
गुलं ध्रुवोर्लखाः । भूमध्यं व्यंगुलकं भूर्दध्यैर्णांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥
गर्भा तु केशरेखा भ्रूयन्धसमांगुलार्धाविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसे-
गुलमतिमम् ॥ १३ ॥ द्वार्धिशत्पारिणाहाचतुर्दशापामतोऽगुलानि शिरः ।
तदश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेशानिचयं
गोदश दध्यैर्ण नम्रजित्प्रोक्तम् । ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्विंशतिः सैका
॥ १५ ॥ कण्ठाद्वादश हृदयं हृदयात्ताभिश्च तत् प्रमाणेन । नाभीमध्यान्मेढ्रा-
न्तरं च तनुल्पमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरु चांगुलमानेभ्यतुर्युता विंशतिस्तथा

इत्यु अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौड़ा करे ॥ ९ ॥
नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकामी दो अंगुल
माने, नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल अन्तर
रखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दाना दो २ अंगुल, नेत्रकी
तेहईके तुल्य तारा, ताराके पचमांशके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी चौड़ाई
एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक मौँके अन्तसे दूसरे मौँके अन्ततक दश
अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भूकी चौड़ाई दोनों भूका मध्यभाग दो अंगुल
और एक मौँकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर
केशरेखा भ्रूयन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौड़ी केशरेखा रखे, नेत्रके
अंतमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसको भूपिकामी कहते हैं ॥ १३ ॥ बचीस
अंगुल लम्बा, चौदह अंगुल चौड़ा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाया जाय
तो उसमें शिर बारह अंगुल दिखलाई पड़ता है और बीस अंगुल जो पिछड़ी
और रहते हैं वह नहीं दीख पड़ते ॥ १४ ॥ नम्रजित्माचार्यने केशरेखासहित
मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी
लम्बाई इक्कीस अंगुल कही है ॥ १५ ॥ कंठके आधे भागसे हृदयतक बारह
अंगुल अंतर रखे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे उगिके मध्यतक बारह
अंगुलही अंतर कहा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौबीस २ अंगुल लम्बे
करने चाहिये, गोरोके ऊपरकी पाठी चार अंगुल और पादमी चार

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याष्टांशो
 यस्तृतीयोऽंशः । तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ स्तंभ
 गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च सुखम् । नम्राजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण श्रुति
 कथितम् ॥ ४ ॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्वत्थुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले
 हनुके चिबुकं तु व्यंगुलं विस्तृतम् ॥ ५ ॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् व्यंगुलं
 परे शंसौ । चतुरंगुलौ तु शंसौ कर्णौ तु व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णोक्तान्
 कार्योऽर्धपञ्चमे भूतमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनमन्यतन
 ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अधरोऽंगुल
 माणस्तत्स्यार्धेनोत्तरोऽष्टम् ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्रं चतुरंगुला

रज, आठ रजका घालाग्र, आठ घालाग्रकी लिखा, आठ लिखाकी यूका, आठ यूका
 यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उत्तरोत्तर आठ गुना
 है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका अष्टमांश
 पदाकार जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण
 है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥
 जितनी ऊँचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके फिर नौ नौ
 भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सद्य प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे
 एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल
 चौड़ा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नम्राजित् नाम आचार्यने कहा है. पर
 मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोड़ी, गरदन और कर्ण
 अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो १ अंगुल
 लम्बे बनाने, चिबुककी चौड़ाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल चौड़ा
 माया होना है; मायेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) बनाने,
 कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रखने, कर्ण दो दो अंगुल चौड़े बनाने ॥ ६ ॥
 कर्णका उत्पान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साठे चार अंगुल
 दिये, कनका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णोत्तरेके समीपका उदा
 रणके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और
 कर्ण चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका श्रोत्र एक अंगुल चौड़ा
 माथे अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा माथे अंगुल लम्बा
 , मुख चार अंगुल लम्बा और चेहरे अंगुल चौड़ा रखना और

कार्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्यात्तत्र्यंगुलं व्यात्तम् ॥ ९ ॥ व्यंगुलतुल्यो
नासापुटौ च नासा पुटाग्रतो ज्ञेया । स्याद् व्यंगुलमुच्छ्रायश्चतुरंगुलमन्तरं
चाक्ष्णोः ॥ १० ॥ व्यंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तन्निभागिका तारा । दृक्
तारापञ्चांशो नेत्रविक्षाणोऽंगुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश भ्रुवोऽ-
र्धंगुलं भ्रुवोर्लखाः । भ्रूमध्यं व्यंगुलकं भूर्ध्वर्षणांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥
कार्या तु केशरेखा भ्रूवन्धसमांगुलार्धविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसे-
दंगुलप्रतिमम् ॥ १३ ॥ द्वात्रिंशत्पारिणाहाद्यतुर्दशायामतोऽंगुलानि शिरः ।
द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेशनिचयं
षोडश दैर्घ्येण नम्रजित्भोकम् । ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्द्विंशतिः सैका
॥ १५ ॥ कण्ठाद्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तत् प्रमाणेन । नाभीमध्यान्मेढ्रा-
न्तरं च तनुत्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरु चांगुलमानेभ्यतुर्युता विंशतिस्तथा

मुख अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौड़ा करे ॥ ९ ॥
नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकाभी दो अंगुल
जाने । नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल अन्तर
रखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दाना दो २ अंगुल, नेत्रकी
तिहाईके तुल्य तारा, ताराके पचमांशके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी चौड़ाई
एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक मौँके अन्तसे दूसरे मौँके अन्ततक दश
अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भ्रूकी चौड़ाई दोनों भ्रूका मध्यभाग दो अंगुल
और एक मौँकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर
केशरेखा भ्रूवन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौड़ी केशरेखा रखे, नेत्रके
अंतमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसको भ्रूषिकाभी कहते हैं ॥ १३ ॥ बचीस
अंगुल लम्बा, चौदह अंगुल चौड़ा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाया जाय
तौ उसमें शिर बारह अंगुल दिखलाई पड़ता है और बीस अंगुल जो पिछली
ओर रहते हैं वह नहीं दीख पड़ते ॥ १४ ॥ नम्रजित्नाचार्यने केशरेखासहित
मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उत्तकी
लम्बाई इक्कीस अंगुल कही है ॥ १५ ॥ कंठके आधे भागसे हृदयतक बारह
अंगुल अंतर रखे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिंगके मध्यतक बारह
अंगुलही अंतर कहा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौबीस २ अंगुल लम्बे
करने चाहिये, गोडोंके ऊपरकी पाली चार अंगुल और पादभी चार

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्थाश्रोतस्य
यस्तृतीयोऽंशः । तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ सौ-
गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च सुखम् । नम्राजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण शक्ति-
कथितम् ॥ ४ ॥ नासाललाटचिबुकश्रीवाश्वतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले च
हनुके चिबुकं तु व्यंगुलं विस्तृतम् ॥ ५ ॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् व्यंगुलं
परे शंसौ । चतुरंगुलौ तु शंसौ कर्णौ तु व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णोत्त-
कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनबन्धनम्
॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अधरोऽष्ट-
माणस्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु मोच्छा वक्त्रं चतुरंगुलपरं

रज, आठ रजका बालाग्र, आठ बालाग्रकी लिखा, आठ लिखाकी चूका, आठ पूरक
यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उत्तरोत्तर आठगुण
है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका अष्टमंश
घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण
है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥
जितनी ऊँचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके किर नौ नौ
भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे
एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल
चौड़ा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नम्राजित नाम आचार्यने कहा है. वा-
मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोड़ी, गारदन और कर्ण
अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो २ अंगुल
लम्बे बनाने, चिबुककी चौड़ाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल चौड़ा
माया होता है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) बनाने,
कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रखने, कर्ण दो दो अंगुल चौड़े बनाने ॥ ६ ॥
कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साठे चार अंगुल
करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णश्रोतके समीपका रज
मग नेत्रबन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वसिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र दो
कर्णान्तका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल और
ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ मोच्छा आध अंगुल लंबा
करनी चाहिये, मुत्त चार अंगुल लम्बा और देह अंगुल चौड़ा रखना और

कार्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्याचक्ष्ण्यंगुलं व्याचक्ष्ण्य ॥ ९ ॥ व्यंगुलतुल्यो
नासापुटौ च नासा पुटायतो ज्ञेया । स्याद् व्यंगुलमुच्छ्रायश्चतुरंगुलमन्तरं
चाक्ष्णोः ॥ १० ॥ व्यंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तन्निभागिका तारा । दृक्
तारापञ्चाशो नेत्रविकासोऽंगुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश भ्रुवोऽ-
धोऽंगुलं भ्रुवोर्ललाटाः । भ्रूमध्यं व्यंगुलकं भ्रूर्ध्वर्ध्वांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥
कार्या तु केशरेखा भ्रूवन्धसमांगुलार्धविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसे-
दंगुलप्रतिमम् ॥ १३ ॥ द्वात्रिंशत्परिणाहाद्यतुर्दशायामतोऽंगुलानि शिरः ।
द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेशानिचयं
षोडशैर्ध्वेण नम्रजित्युक्तम् । ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्भिंशतिः सैका
॥ १५ ॥ कण्ठाद्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तद् प्रमाणेन । नाभौ मध्यान्मेढ्रा-
न्तरं च तनुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरु चांगुलमानैश्चतुर्गुता विंशतिस्तथा
शुक्ल अर्पात् नृसिंह आदि देवतामोका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौड़ा करे ॥ ९ ॥
नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकामी दो अंगुल
जाने । नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल अन्तर
रखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दाना दो २ अंगुल, नेत्रकी
विहार्ईके तुल्य तारा, ताराके पचमांशके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी चौड़ाई
एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक भौके अन्तसे दूसरे भौके अन्ततक दश
अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भ्रूकी चौड़ाई दोनों भ्रूका मध्यभाग दो अंगुल
और एक भौकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर
केशरेखा भ्रूवन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौड़ी केशरेखा रखे, नेत्रके
अंतमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसकी भ्रूपिकामी रहते हैं ॥ १३ ॥ पचीस
अंगुल लम्बा, चौदह अंगुल चौड़ा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाया जाय
तो उसमें शिर बारह अंगुल दिखलाई पड़ता है और बीस अंगुल जो पिछली
ओर रहते हैं वह नहीं दीख पड़ते ॥ १४ ॥ नम्रजित्वाचार्यने केशरेखासहित
मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी
लम्बाई इषोस अंगुल कही है ॥ १५ ॥ कंठके आधे भागसे हृदयतक बारह
अंगुल अंतर रखे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिङ्गके मध्यतक बारह
अंगुलही अंतर कहा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौबीस २ अंगुल लम्बे
करने चाहिये, गोढोंके ऊपरकी पाली चार अंगुल और पादभी चार

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवानगरद्वारस्याद्यंगोस्त
यस्तृतीयोऽंशः । तत्पिण्डकाप्रमाणं प्रतिमा तद्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ तै
गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च सुखम् । नम्रजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण शक्ति
कथितम् ॥ ४ ॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्वत्थुरंगुलास्तया कर्णौ । द्वे अंगुले च
हनुके चिबुकं तु व्यंगुलं विस्तृतम् ॥ ५ ॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् व्यंगुलव
परे शंसौ । चतुरंगुली तु शंसौ कर्णौ तु व्यंगुलं पृथुली ॥ ६ ॥ कर्णोत्तम
कार्योऽर्धपञ्चमे भूसमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनबन्धनम्
॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तर्कर्णयोर्विवरम् । अधरोऽष्टा
माणस्तस्यार्धोत्तरोऽष्टश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु मोच्छा वक्त्रं चतुरंगुलपरं

रज, आठ रजका वालाग्र, आठ वालाग्रकी लिखा, आठ लिखाकी यूका, आठ यूका
यव और आठ यवका एक अंगुल होता है.

है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥

घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण
है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥
जितनी ऊँचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके फिर नौ नौ
भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे
एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल
चौड़ा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नम्रजित नाम आचार्यने कहा है. पर
मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोड़ी, गरदन और कर्ण
अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. ॥ ५ ॥ आठ अंगुल लम्बे
लम्बे बनावे, चिबुककी चौड़ाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल लम्बे
माया होता है; मायेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) बनाने,
कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रखने, कर्ण दो दो अंगुल चौड़े बनाने ॥ ६ ॥
कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढ़े चार अंगुल
करना चाहिये; कर्णका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णस्रोतके समीपका उन्नत
भाग नेत्रप्रबन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और
कर्णान्तका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल की
ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ मोच्छा आध अंगुल विस्तीर्ण
करनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और ढेढ़ अंगुल चौड़ा रखना और

कार्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्याचम्यंगुलं व्याचम्य ॥ ९ ॥ व्यंगुलं तु
 नासापुटी च नासा पुटायतो ज्ञेया । स्याद् व्यंगुलमुच्छ्रायभतुरंगुलम
 चाक्षोः ॥ १० ॥ व्यंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तन्निभागिका तारा । द
 तारापश्चातो नेत्रविकारोऽंगुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्यन्तं दश भुवो
 र्धांगुलं भुवोर्लखाः । भूमध्यं व्यंगुलकं भूर्दध्यंणांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥
 कार्या तु केशरेखा भूषणसमांगुलार्धविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुत्पन्ने
 दंगुलमतिमम् ॥ १३ ॥ द्वात्रिंशत्परिणाहापतुर्दशायामतोऽंगुलानि शिरः ।
 द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं स्रक्शेनिचयं
 षोडश द्रव्येण नमजित्युक्तम् । ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्दिशतिः स्रक्
 ॥ १५ ॥ कण्ठाद्वादश हृदयं हृदयान्नाभिभ्य तव प्रमाणेन । नाभिमध्यान्मैत्रा-
 नं च तनुत्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरु चांगुलमानं भतुर्गुणा विंशतिरुत्था
 पुरा अर्थात् नृसिंह आदि देवताभोज्य फेला दुआ मुख तीन अंगुल पीडा करे ॥ १७ ॥
 नासिकाके दोनो पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोके अग्रसे नासिकाभी दो अंगुल
 जाने । नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनो नेत्रोके बीच चार अंगुल अन्तर
 रखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दाना दो १ अंगुल, नेत्रकी
 तिहारके तुल्य तारा, ताराके पचमासके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी पीडाई
 एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक भौके अन्तसे दूसरे भौके अन्ततक दस
 अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भूकी चौड़ाई दोनो भूक मध्यभाग दो अंगुल
 और एक भौकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर
 केशरेखा भूषणके तुल्य करे और आध अंगुल पीडी केशरेखा रखे, नेत्रके
 अग्रसे एक अंगुलका करवीरक करे जिसको मूषिकभी कहते हैं ॥ १३ ॥ कर्णों
 के अंगुल लम्बा, पीदह अंगुल चौड़ा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाया जाय
 उसमें शिर पारह अंगुल दिसऊई पडता है और बीच अंगुल जो स्रक्की
 रखते हैं वह नहीं दीख पडते ॥ १४ ॥ नमजित्वाचार्यने केशरेखाके
 पारह अंगुल की है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी
 पीडाई इतना अंगुल की है ॥ १५ ॥ कंठके आगे माथेके हृदयतक बारह
 अंगुल रखे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिङ्गके मध्यतक बारह
 अंगुल की है ॥ १६ ॥ ऊरु और अंगुली चौड़ी २ अंगुल दम्बे
 की अंगुली चौड़ी २ अंगुल और पादकी चौड़ी २ अंगुल और पादकी अंगुली चौड़ी २ अंगुल
 चाहिये, मोड़ोके ऊपरकी पादकी चार अंगुल और पादकी अंगुली चौड़ी २ अंगुल

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याद्यंगुलं
 यस्तृतीयोऽंशः । तत्पिण्डकाप्रमाणं प्रतिमा तद्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ तैत्ति
 र्यगुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम् । नम्राजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येन शक्ति
 कथितम् ॥ ४ ॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले च
 हनुके चिबुकं तु व्यंगुलं विस्तृतम् ॥ ५ ॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् व्यंगुलं
 परे शंसौ । चतुरंगुलौ तु शंसौ कर्णौ तु व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्मांत
 कार्पोऽर्धपञ्चमे भूतमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनवन्धनम्
 ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अर्धोऽष्टम
 माणस्तत्स्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुला

रज, आठ रजका बालाग्र, आठ बालाग्रकी लिखा, आठ लिखाकी यूका, आठ यूका
 यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उच्चोत्तर आठ अंगुल
 है। एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका अर्ध
 पदाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण
 है और पिण्डका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥
 नितनी ऊँचाई प्रतिमाकी आवे उसके चारह भाग कर एक २ भागके किरा नौ
 भाग करे, वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाण
 एक ही आठ अंगुल होती है। प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे चार अंगुल
 चौड़ा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नम्राजित नाम आचार्यने कहा है।
 मान द्विददेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोड़ी, गारदन और
 अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये। हनु दो २ अंगुल
 लम्बे बनाने, चिबुककी चौड़ाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल प्रमाण
 माया होता है; मादसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) बनाने,
 कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रखने, कर्ण दो दो अंगुल चौड़े बनाने ॥ ६ ॥
 कर्णों का उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भू सम सूत्रसे, साठे चार अंगुल
 करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णोत्तरे के समीप का रज
 मय नेत्रवन्धन के समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वसिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र दो
 कर्णान्तरा अंतर चार अंगुल करना ठीक है। नीचेरा ओष्ठ एक अंगुल और
 ऊपरका ओष्ठ आठ अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल
 रखनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा रखना और

कार्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्याचङ्ग्यंगुलं व्याचम ॥ ९ ॥ ब्यंगुल
 ॥ सापुटी च नासा पुटायतो ज्ञेया । स्याद् ब्यंगुलमुच्छ्रायभतुरंगुलम
 चाक्षोः ॥ १० ॥ ब्यंगुलमितोऽक्षिकोयो द्वे नेत्रे तन्निभागिका तारा ।
 तारापञ्चांशो नेशविकासोऽंगुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश ध्रुवो
 धांगुलं ध्रुवोर्लखाः । भूमध्यं ब्यंगुलकं भूर्देर्ध्वेर्णांगुलचतुष्कम् ॥ १२
 कार्या तु केशरेखा भूबन्धसमांगुलार्धावितिर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसे-
 दंगुलप्रतिमम् ॥ १३ ॥ द्वात्रिंशत्पारिणाहापतुर्दशायामतोऽंगुलानि शिरः ।
 द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेशनिचयं
 षोडश देर्ध्वेण नम्रजित्मोकम् । ग्रीवा दश विस्तिर्णां पारिणाहाद्विंशतिः श्लेका
 ॥ १५ ॥ कण्ठाद्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तत् प्रमाणेन । नाभिमध्यान्नेत्रा-
 न्तरं च तनुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरु चांगुलमानेभतुर्पुना विंशतिस्तथा
 भुज अर्धात् तृसिह भावे देवतामोक्ष फेला दुमा मुख तीन अंगुल चौडा करे ॥ १७ ॥
 नासिकाके दोनो पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोके अग्रते नासिकाभी दो अंगुल
 जाने. नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनो नेत्रोके बीच चार अंगुल अन्तर
 रखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दाना दो १ अंगुल, नेत्रकी
 एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक भौके अन्तसे दूसरे भौके अन्ततक दश
 अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भूकी चौड़ाई दोनो भूका मध्यभाग दो अंगुल
 और एक भौकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर
 शिरोरेखा भूबन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौड़ी केशरेखा रखे, नेत्रके
 अग्रते एक अंगुलका करवीरक करे जिसको शूषिकामी कहते हैं ॥ १३ ॥ कर्णके
 अग्रते शिर पारह अंगुल दिसलाई पडता है और बीच अंगुल जो दिठकी
 कहते हैं वह नहीं दीख पडते ॥ १४ ॥ नम्रजित्भाचार्यने केशरेखेके द्वे
 विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उचकी
 शिरोरेखा अंगुल कहा है ॥ १५ ॥ कंठके आधे मागसे हृदयतक बारह
 अन्तर रखे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिङ्गके मध्यतक बारह
 अन्तर रखा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौरीच २ अंगुल टन्ने
 चाहिये, गोरोके ऊपरकी पाखी चार अंगुल और पादकी चार

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याष्टोत्तस्र
यस्तृतीयोऽंशः । तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ त्रि-
गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च सुखम् । नम्राजिता तु चतुर्दश दीर्घेण श्रुतिं
कथितम् ॥ ४ ॥ नासाललाटचिबुकश्रीवाश्वतुरंगुलास्तया कर्णौ । द्वे अंगुले च
हनुके चिबुकं तु व्यंगुलं विस्तृतम् ॥ ५ ॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् व्यंगुलं
परे शंसौ । चतुरंगुली तु शंसौ कर्णौ तु व्यंगुलं पृथुली ॥ ६ ॥ कर्णोत्त-
कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनबन्धनपर
॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अथरोगुल-
माणस्तस्यार्धनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अष्टांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुला

रज, आठ रजका बालाग्र, आठ बालाग्रकी लिखा, आठ लिखाकी यूका, आठ पूरुष
यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उच्चोत्तर आठ अंगुल
है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका अन्तर
घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण
है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥
जितनी ऊँचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके लिए नौ भाग
माग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे
एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल
चौड़ा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नम्राजित नाम आचार्यने कहा है. नास
मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोड़ी, गरदन और हनु
अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो २ अंगुल
लम्बे बनावे, चिबुककी चौड़ाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल चौड़ा
माथा होता है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) बनाने,
कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रखने, कर्ण दो दो अंगुल चौड़े बनाने ॥ ६ ॥
कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रान्तसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढ़े चार अंगुल
करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णस्रोतके समीपका रज
भाग नेत्रप्रबन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वाशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और
कर्णान्तका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल और
ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल चौड़ा
करनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और डेढ़ अंगुल चौड़ा रखना भी ठीक

कार्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्याचम्यंगुलं व्याचम्य ॥ ९ ॥ द्व्यंगुलतुल्यं
नासापुटौ च नासा पुटप्रतो ज्ञेया । स्याद् द्व्यंगुलमुच्छ्रायश्चतुरंगुलमन्तरं
चाक्ष्णोः ॥ १० ॥ द्व्यंगुलमितोऽक्षिकोथो द्वे नेत्रे तन्निर्मागिका तारा । दृक्
तारापश्चांशो नेत्रविकारोऽंगुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्वन्तात्पर्यन्तं दश तुवोऽ-
र्धंगुलं भ्रुवोर्लेखाः । भ्रूमध्यं द्व्यंगुलकं भूर्द्धर्घ्यणांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥
कार्पा तु केशरेखा भ्रूमन्धसमांगुलार्धविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसे-
दंगुलप्रतिमम् ॥ १३ ॥ द्वार्शित्यारिणाद्वाघतुदंशानामनोऽंगुलानि शिरः ।
द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेयनिचयं
षोडश दैर्घ्येण नम्रजित्प्रोक्तम् । ग्रीवा दश विस्तीर्णा पारिणाद्वाद्द्विशतिः सैका
॥ १५ ॥ कण्ठाद्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तत् प्रमाणेन । नाभौ मध्यान्मैत्रा-
न्तरं च तनुत्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरु पांगुलमानिभतुर्गुणा विंशतिस्तथा
मुल अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौड़ा करे ॥ १७ ॥
नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके मध्यसे नासिकाभी दो अंगुल
जाने । नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल बनना
रखना चाहिये ॥ १८ ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दाना दो १ अंगुल, नेत्रकी
विहाईके तुल्य तारा, ताराके पञ्चमांशके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी चौड़ाई
एक अंगुलकी करे ॥ १९ ॥ एक भौके अन्तसे दूसरे भौके अन्ततक दस
अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भ्रुवी चौड़ाई दोनों भ्रुव मध्यभाग दो अंगुल
और एक भौकी छम्माई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ २० ॥ माथेके ऊपर
केशरेखा भ्रूमन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौड़ी केशरेखा रखे, नेत्रके
अन्तमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसको सूचिकाभी कहते हैं ॥ २१ ॥ कर्ण
अंगुल छम्मा, चौड़ा अंगुल चौड़ा शिर बनाना चाहिये, ओ चित्र बनाना २५
वी उसमें शिर चार अंगुल दिसलाई पड़ता है और बीच अंगुल ओ १७वी
और रहते हैं वह नहीं दीख पड़ते ॥ २२ ॥ नम्रजित्-भाषाचने केशरेखाके
मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उरकी
छम्माई इकोस अंगुल करी है ॥ २३ ॥ कंडके आगे माथेके हृदयतक करी
अंगुल अंतर रखे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे टिपके मध्यतक चार
अंगुलकी अंतर कहा है ॥ २४ ॥ ऊरु और जंघा चौड़ी २ अंगुल टिके
करने चाहिये, गोडोंके ऊपरकी पाखी चार अंगुल और पाखी चार

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याधोऽंशः
 यस्तृतीयोऽंशः । तत्पिण्डकाप्रमाणं प्रतिमा तद्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ सै-
 गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च सुखम् । नम्रानिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण श्रुतिं
 कथितम् ॥ ४ ॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले
 हलुके चिबुकं तु व्यंगुलं विस्तृतम् ॥ ५ ॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् व्यंगुलं
 परे शंखौ । चतुरंगुलौ तु शंखौ कर्णौ तु व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णोत्तर-
 कार्पोऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनमवन्धनम्
 ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अथोऽष्टम-
 माणस्तत्स्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुला

रज, आठ रजका बालाग्र, आठ बालाग्रकी लिखा, आठ लिखाकी यूका, आठ यूका
 यव और आठ यवका एक अंगुल होता है...
 हैं. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥
 घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डका (मूर्तिकी पीठ) का मन्त्र
 है और पिण्डका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥
 जितनी ऊँचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके कि नौवें
 भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे
 एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल
 चौड़ा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नम्रजित् नाम आचार्यने कहा है. स
 मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोड़ी, गारदन और होंठ
 अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. इन दो २ अंगुल
 लम्बे बनावे, चिबुककी चौड़ाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल दूना
 माया होता है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) बनने,
 कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रखने, कर्ण दो दो अंगुल चौड़े बनाने ॥ ६ ॥
 कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर श्रु सम सूत्रसे, पाठे चार अंगुल
 करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णश्रोतके समीपका रज
 भाग नेत्रमवन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और
 कर्णान्तरा अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल और
 ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल बिताने
 करनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और ढेढ़ अंगुल चौड़ा रखना और ना

कार्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्यान्तरमंगुलं व्याचमम् ॥ ९ ॥ अंगुलतुल्यो
नासापुटो च नासा पुटायतो ज्ञेया । स्याद् अंगुलमुच्छ्रायधतुरंगुलमन्तरं
चाक्ष्णोः ॥ १० ॥ अंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तन्निजागिका तारा । दृक्
तारापञ्चाशो नेशविकाशोऽंगुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश ध्रुवोऽ-
धंगुलं ध्रुवोर्दशाः । भूमध्यं अंगुलकं भूर्दध्यंणांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥
कायां तु केशरेखा भूमन्धसमांगुलार्धविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुत्पन्म-
दंगुलप्रतिमम् ॥ १३ ॥ द्वाविंशत्यारिणाद्वापतुर्दशापामनोऽंगुलानि गिरः ।
द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरक्षराः ॥ १४ ॥ आस्यं मृक्केशनिचयं
षोडश देर्घ्येण नमजित्युक्तम् । प्रीया दश विस्तीर्णा परिणाद्वाविंशतिः स्रका
॥ १५ ॥ कण्ठाद्वादश हृदयं हृदयाग्राभिश्च तत् प्रमाणेन । नाभोमध्यान्मे-
न्तरं च तनुत्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरु चांगुलमानिधतुर्गुणा विंशतिस्त्वया
मुख अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौड़ा करे ॥ १७ ॥
नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके भ्रमसे नासिकाकी दो अंगुल
जाने । नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच पार अंगुल अन्तर
रखना चाहिये ॥ १८ ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दाना दो ९ अंगुल, नेत्रकी
तिहाईके तुल्य तारा, ताराके पञ्चमांशके तुल्य दृक् बनाने और नेत्रकी चौड़ाई
एक अंगुलकी करे ॥ १९ ॥ एक भीके अन्तसे दूसरे भीके अन्ततक दश
अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भूकी चौड़ाई दोनों रूख मध्यभाग दो अंगुल
और एक भीकी लम्बाई चार पार अंगुल करनी चाहिये ॥ २० ॥ मापके ऊपर
केशरेखा भूमन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौड़ी केशरेखा रखे, नेत्रके
अन्तमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसकी मुखिकाभी रहते हैं ॥ २१ ॥ वलित
अंगुल छम्बा, चौदह अंगुल चौड़ा शिर बनाना चाहिये, ओ चित्र बनाना ४५
तौ ऊपरमें शिर चारह अंगुल दिसलाई पड़ता है और नीचे अंगुल को १८० की
ओर रहते हैं वह नहीं दीख पड़ते ॥ २२ ॥ नमजित्वाकापने के दोहरे दोहरे
मुखका विस्तार सोलह अंगुल बरा है, दीराका विस्तार दश अंगुल और उबरी
छम्बाई इफ्तिस अंगुल बड़ी है ॥ २३ ॥ कंठके आगे मागते दृक्पदक बराह
अंगुल अंतर रखे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे उदरेके मध्यतक बराह
अंगुलकी अंतर बरा है ॥ २४ ॥ ऊरु और जंघा चौदह ९ अंगुल छोटे
करने चाहिये, गोडोके ऊपरकी दाबी चार अंगुल और पादकी उर

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याष्टोत्तर
यस्तृतीयोऽंशः । तत्पिण्डकाप्रमाणं प्रतिमा तद्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ त्रि-
गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च सुखम् । नग्नजिता तु चतुर्दश देव्येव शक्ति
कथितम् ॥ ४ ॥ नासाललाटचिबुकश्रीवाश्वतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले
हनुके चिबुकं तु व्यंगुलं विस्तृतम् ॥ ५ ॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् व्यंगुलम्
परे शंसौ । चतुरंगुलौ तु शंसौ कर्णौ तु व्यंगुलं पृथुली ॥ ६ ॥ कर्णोत्त-
कार्योऽर्धपञ्चमे भूतमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनवन्धनम्
॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तर्कर्णयोर्विवरम् । अधरोऽङ्गु-
माणस्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुलात्

रज, आठ रजका बालाग्र, आठ बालाग्रकी लिखा, आठ लिखाकी यूका, आठ यूका
यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उत्तरोत्तर बढ़ता
है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका अन्त
घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डका (मूर्तिकी पीठ) का रज
है और पिण्डका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥
जितनी ऊँचाई प्रतिमाकी आवे उसके चारह भाग कर एक २ भागके फिर नौ
भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाण
एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे चार अंगुल
चौड़ा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्नजित नाम आचार्यने कहा है. न
मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोड़ी, गारदन और हनु
अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो २ अंगुल
लम्बे बनाने, चिबुककी चौड़ाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल लम्बा
माया होता है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) रखी,
कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रखने, कर्ण दो दो अंगुल चौड़े बनाने ॥ ६ ॥
कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साठे चार अंगुल
करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णोत्तके समीपका रज
भाग नेत्रवन्धनके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और
कर्णान्तका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल लम्बा
ऊपरका ओष्ठ माथे अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा माथे अंगुल लम्बा
करनी चाहिये, मुत्त चार अंगुल लम्बा और डेढ़ अंगुल चौड़ा रखना और

प्रतिवाहू त्वंगुलचतुष्कम् ॥ २५ ॥ पौडय बाहू मूले परिणाहाद्वा-
हो च । विस्तारेण कस्तलं पङ्गुलं सप्त दैव्येण ॥ २६ ॥ पञ्चाङ्गु-
ला प्रदेशिनी मध्यपर्वदलहना । अनया तुल्या चानामिका कनिष्ठा तु
२७ ॥ पर्वद्वयमङ्गुः शेषाङ्गुलपञ्चिभिर्भिभिः कार्याः । नखपरिमाणं
विंशतिं परमोर्ध्वम् ॥ २८ ॥ देशानुरूपमङ्गुलवेतालङ्कारमूर्तिभिः कार्या ।
लक्षगण्डिका सन्निहिता वृद्धिदा भवति ॥ २९ ॥ दशरथनयो रामो
वेरोचनिः शतं विंशम् । द्वादशहान्या शेषाः प्रवरसमन्यूनपरिमाणाः
कार्पोऽङ्गुलानां भगवांश्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णुः । श्रीरत्नाङ्गित-
स्तुभमणिभूपिनोरस्कः ॥ ३० ॥ अतस्तीक्ष्णमश्यामः पीताम्बरनिवसनः

बाहुका चार अंगुल रखना चाहिये ॥ २५ ॥ बाहुके मूलमें सोलह अंगुल
नमें अर्थात् प्रक्षोष्ठके समीप चारह अंगुल परिणाह रखना चाहिये और
विंश चौड़ाई छः अंगुल और लम्बाई सात अंगुल रखनी चाहिये ॥ २६ ॥
समीपकी अंगुली प्रदेशिनी, उसके आगेकी मध्यमा, उसके आगे अना-
मिक और अनामिकासे आगेकी अंगुली कनिष्ठा कहाती है और एक २ अंगुलीमें
न पौडये होने हैं । मध्यमा पाँच अंगुल लम्बी करे, मध्यमाके निचले पीठ-
गाथा घटा देवे तो प्रदेशिनीकी लम्बाई होती है और प्रदेशिनीके मुहुरी
का होती है, जनानिष्ठमें एक पीठका घटानेसे कनिष्ठाकी लम्बाई होती
७ ॥ अंगुलीके दो पीठये और शेष चार अंगुलियोंके तीन २ पीठये करने
और सब अंगुलियोंके नखोंकी लम्बाई अपने २ पर्वके अर्थके मुहुर
२८ ॥ अपने २ देशके अनुसार प्रतिमाके भूषण, वेष, अलंकार (हाथार)
और पनाये, लक्षगण्डिका प्रतिमामें देरताम्र साभिष्य होना है, इसके वर
लक्ष्मी सब प्रसरते वृद्धि करती है ॥ २९ ॥ दशरथके पुत्र
रामजीकी और विरोचनके पुत्र बालेकी प्रतिमा एक ही
मुँह लम्बी पनाये और सब प्रतिमा एक ही आठ अंगुल लंबी उठान,
हैं अंगुल लम्बी मध्यमा, चौगुली अंगुल लम्बी प्रतिमा निरुद्ध होती है-
रामाजीकी प्रतिमा अष्टभुज, चतुर्भुज जपरा द्विभुज बनाने, श्रीरत्नाङ्क
और श्रीस्तुभमणिले प्रतिमाके वक्षःस्थलकी सोमायमान करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥
के पुष्पके समान प्रतिमाका रंग करे, पीठ रत्न परिणये, प्रतिमा मउछ-
रुद्ध, ठीठ पदने हो और प्रतिमाके हाथने तीन हाथोंमें सङ्घ, पदा,

जंहे । जानुकपिच्छे चतुरंगुले च पादौ च तनुल्यौ ॥ १७ ॥
 पट् पृथुनया च पादौ त्रिकायतांगुलौ । पञ्चांगुलपरिणाहौ
 दीर्घा ॥ १८ ॥ अष्टांशाष्टांशोनाः शेषांगुलयः क्रमेण कर्तव्याः ।
 गुलमुत्तरेषां गुलकस्योक्तः ॥ १९ ॥ अंगुष्ठनतः कपिपृष्ठे
 तज्जैः । शेषस्तानामर्धांगुलं क्रमात् किञ्चिद्गुणं वा ॥ २० ॥
 हस्ततुर्दशोक्तस्तु विस्तरः पञ्च । मध्ये तु सप्त विपुला परिणाहौ
 सप्त ॥ २१ ॥ अष्टौ तु जानुमध्ये वैपुल्यं व्यष्टकं तु परिणाहौ ।
 दशोक्तं मध्यं द्विगुणश्च तत्परिधिः ॥ २२ ॥ कटिदशविपुला
 शचतुर्युता परिधौ । अंगुलमेकं नाभिर्विधेन तथा प्रमाणेन ॥ २३ ॥
 शब्दद्वियुता नाभिमध्येन मध्यपरिणाहः । स्तनयोः पौष्ठ ॥
 पङ्गुलिके ॥ २४ ॥ कार्याष्टावन्तौ द्वादश बाहु तथा प्रवह ॥

अंगुल परे ॥ १७ ॥ चारह अंगुल लम्बे और छः अंगुल चौड़े
 पादिये, दोनों पांशोंके अंगुले तीन अंगुल लम्बे बनाने
 (अंगुष्ठके समीपकी अंगुली) तीन अंगुल लम्बी रखते ॥ १८ ॥
 अंगुली प्रदेशोंमें अष्टांश अष्टांश कम करके कमके अनुसार बनाने
 ऊँचाई तथा अंगुल कही है, इसी हिसाबसे और अंगुलियोंकी ऊँचाई
 प्रतिमाका लक्षण जाननेवालोंने अंगुलेके नखकी लम्बाई पौन अंगुल
 शेष अंगुलियोंके नखोंकी लम्बाई आध २ अंगुल करे जयता बनाने
 न्यून बनाना जाय जिसमें अंगुली और नख सुन्दर दीरों ॥ २० ॥
 मागकी विशालता चौदह अंगुल और विस्तार पांच अंगुल परा है,
 मागका विस्तार सात अंगुल और विशालता इक्कीस अंगुल परा है
 जानुके मध्यका विस्तार आठ अंगुल और विशालता चौबीस अंगुल
 मध्यमागमें चौदह अंगुलविस्तीर्ण होते हैं और अष्टांश अंगुल परा
 है ॥ २२ ॥ कटिका विस्तार सटारह अंगुल और कटिकी पाँच
 शोभा है; नाभिका विस्तार और वेध (गहराई) एक २ अंगुल
 नाभि की बीचमें लेकर मध्यमागका परिणाह यथाशक्ति अंगुल
 स्तनोंका मध्य पोट्टा अंगुल और स्तनोंके ऊपर शिरो छः छः
 है ॥ २४ ॥ कटिकी लम्बाई गान्धर्वमें लेकर मातृ अंगुल
 परा २ अंगुल लम्बे बाहु और प्रवह करने दी है, बाहुका विस्तार

पूजां वृक्षं संस्पृश्य च ब्रूयात् ॥९॥ अर्चयाममुकस्य त्वं देवस्य परिकल्पितः ।
नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत्संप्रगृह्यताम् ॥ १० ॥ यानीह हूतानि वसन्ति नानि
बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् । अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु तान्यद्य
नमोऽस्तु तेभ्यः ॥ ११ ॥ वृक्षं प्रभाते सलिलेन सिस्त्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि
सन्निकृत्य । मध्वाज्जपतिमेन कुठारकेण प्रदक्षिणं शेषमनोऽभिहन्यात् ॥ १२ ॥
पूर्वेण पूर्वोत्तरतोऽथबोदक् पतेद्यदा वृद्धिकरस्तथा स्यात् । आप्रयकोणात्
क्रमतोऽग्निदाहः क्षुरोगरोगास्तुरगक्षयश्च ॥ १३ ॥ यन्नोक्तमस्मिन्वनमं वदेते
निपातविच्छेदनवृक्षगर्भाः । इन्द्रध्वजे वास्तुनि च प्रदिशः पूर्वं मया तेऽत्र
तथैव योज्याः ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वनसंप्रवेशो नाम-

कोनपाठिनमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

विनायकादिकी रात्रिके समय पूजा करके वृक्षको स्पर्श करके यह मंत्र पढ़े ॥ ९ ॥
हे वृक्ष । तुम अमुक देवताकी पूजाके लिये कहेरत हुए तुमको नमस्कार है, इस
पूजाको विधिविधानसे ग्रहण करो. इस वृक्षपर जो प्राणी वास करने हैं, वे दिशि-
युक्त पूजाको ग्रहण करके और कहीं वास कल्पित करें आज वह क्षमा करें जिनको
नमस्कार करता हूँ. 'अमुकस्य' के स्थानमें वक्षसंव देवताका नाम लग्य ले
॥ १० ॥ ११ ॥ प्रभातके समय वृक्षको जलसे सींच कुठारको छोट और पंछे
छुपड़े और फिर उस कुठारसे ईशानकोणमें पढ़के वृक्षको कट्टे पीछे प्रदक्षिण
क्रमसे शेष वृक्षको काट ले ॥ १२ ॥ क्या हुआ वृक्ष जो पूर्व ईशानकोण अथवा
उत्तरदिशामें गिरे तो पूछि करनेवाला होता है; आप्रयकोण आदि पांच दिशाओंमें
गिरे तो क्रमसे अग्निदाह, रोग और घोड़ोंका नाश यह फल होते हैं ॥ १३ ॥
इस वनमवेशाध्यायमें जो हमने नहीं कहा अर्थात् वृक्षके निपात, विच्छेदन, वृक्ष-
घर्म आदिके. तुम अशुभ फल नहीं करें, वह सब पढ़के इन्द्रध्वजाध्याय और
वास्तुविद्याध्यायमें हम कहा आये हैं, उसी भांति यहाँभी उनको समझना चाहिये
अपवाद बेगारी तुम अशुभ फल यहाँभी आने ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयवृक्षादिकारणवृक्ष-
पद्धतिवत्तदेवमसाहमिहिरविरचितायां माषादीकसंहितायां वनसंप्रवेशोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

मजाः । चैत्यसरित्सङ्गमसम्भवाश्च घटतोयसिक्काश्च ॥ २ ॥ कुञ्जातुजातरङ्गी
 निपीडिता वज्रमारुतोपहृताः । स्वपातितहस्तिनिपीडितशुष्कान्निष्ठमधुनिलया
 ॥ ३ ॥ तरवो वर्जयितव्याः शुभदाः स्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः । अतिमत्तवृक्ष
 गत्वा कुर्यात् पूजां सबलिपुष्पाम् ॥ ४ ॥ सुरदारुचन्दनशमीमधुकतरवः शुभ
 दिजातीनाम् । क्षत्रस्याऽरिष्टाश्वत्थसदिराबिल्वा विवृद्धिकराः ॥ ५ ॥ वैशाखा
 जीवकसदिरासिन्धुकस्यन्दनाश्च शुभफलदाः । तिन्दुककेसरतर्जाऽर्जुनाश्व
 लाश्च शूद्राणाम् ॥ ६ ॥ लिङ्गं वा प्रतिमा वा द्रुमवत् स्थाप्या यथारि
 यस्मात् । तस्माच्चिह्नयितव्या दिशो द्रुमस्योऽर्ध्वमथवाऽधः ॥ ७ ॥ परमाप्तो
 दकौदनदधिपललोष्ठोपिकाभिर्भक्ष्यैः । मद्यैः कुसुमैर्धूपैर्गन्धैश्च तर्पणं समत्पन्नं
 ॥ ८ ॥ सुरपितृपिशाचराक्षसभुजगासुरगणविनायकाद्यानाम् । कृत्वा एषां

याग, तपास्त्रियोंके आश्रम, चैत्य और नदियोंके सङ्गमस्थानोंमें उत्पन्न हुए वृक्ष,
 घटोंके जलसे सिंचे हुए वृक्ष, कुण्डे वृक्ष, एक वृक्षके सहारेसे उपजे हुए वृक्ष,
 बेलोंसे पीडित वृक्ष, बिजलीके मारे वृक्ष, पवन करके तोड़े हुए वृक्ष, हाथियोंके
 तोड़े हुए, सखे, आगिसे जले हुए वृक्ष और मधुनिलय अर्थात् जिनमें नारियल
 छत्ता लगा हो ॥ २ ॥ ३ ॥ ऐसे वृक्ष त्यागने चाहिये; इनके काटने से शरीर
 बनानेमें अशुभ होता है; जिन वृक्षोंके पत्ते, फूल, फल स्निग्ध हों वे वृक्ष शुभ होते
 हैं। वनमें इस भाँति शुभ वृक्ष देखकर उसके समीप जाय बलि और पुष्पांजलि
 उस वृक्षकी पूजा करे ॥ ४ ॥ देवदारु, चन्दन, शमी और महुआ परा
 ब्राह्मणोंके लिये शुभ हैं अर्थात् ब्राह्मण इनके काटनी देवप्रतिमा बनाने, दई,
 पीपल, खैर और येल यह क्षत्रियोंके वृद्धि करनेवाले वृक्ष हैं ॥ ५ ॥ जीवक, त्रि
 त्तिपुल और स्यन्दन यह वृक्ष वैश्योंके शुभ फल देते हैं। तेंदु, नागकेसर, वने
 अर्जुन और साल यह शूद्रोंके लिये शुभदायक हैं ॥ ६ ॥ लिङ्ग अथवा प्रतिमा
 वृक्षकी दिशाओंके अनुसार स्थापित करे; इसी भाँति वृक्षके ऊपरके भागमें दई
 माके पद बनाने चाहिये, इस कारण काटनेसे पहले वृक्षमें चाँद दिशाके
 ऊर्ध्वभाग अथवा अधोभागके चिह्न कर देने उचित हैं ॥ ७ ॥ खैर, कड़ू, महुआ,
 उल्लोपिष्ठ (एक प्रकारका भोजनपदार्थ) आदि मद्य, मध, पुष्प, धूप
 स्नपसे वृक्षकी पूजा करे ॥ ८ ॥ देस्ता, पितर, पिशाच, राक्षस, नाग, अमुल

भद्रासनकृतशीर्षोरपानपादां न्यसेत्प्रतिमाम् ॥ ७ ॥ शुक्लाश्वत्थोदुम्बरशिरिषं-
 वटसम्भवेः कपायजलैः । मङ्गलसंज्ञिताभिः सर्वापधिभिः कुशाद्याभिः ॥ ८ ॥
 द्विपट्टपत्रोद्धृतपर्वतवल्मीकसारित्समागमवटेषु । ११सरःसु च मृद्धिः सपञ्चग-
 ध्यैश्च तीर्थजलैः ॥ ९ ॥ पूर्वशिरस्कां स्नातां सुवर्णरत्नाम्बुभिश्च समुगन्धैः ।
 नानातूर्यनिर्नादैः पुण्याहर्षेदनिर्घोषैः ॥ १० ॥ ऐन्द्र्यां दिशीन्द्रलिङ्गा मन्त्राः
 प्राग्दक्षिणेऽभिलिङ्गाश्च । जप्तप्या दिनमुख्यैः पूज्यास्ते दक्षिणाभिश्च ॥ ११ ॥
 यो देवः संस्थाप्यस्तन्मन्त्रैश्चानलं दिजो जुहुयात् । अग्निनिमित्तानि मया
 प्रोक्तान्द्रव्यजोच्छ्राये ॥ १२ ॥ धूमाकुलोऽसद्यो मुहुर्मुहुर्विस्फुलिङ्गकृत्
 शुभः । होतुः स्मृतिलोपो वा प्रसर्पणं वाशुभं प्रोक्तम् ॥ १३ ॥ स्नातामभुक्त-
 पक्षां स्वलङ्कृतां पूजितां कुमुदगन्धैः । प्रतिमां स्वास्तीर्णायां शय्यायां स्थापकः
 कुर्यात् ॥ १४ ॥ सुप्तं सुनृत्यगीतिर्जागरणैः सम्यगेवमाधिवार्य । देवज्ञसम्प्रदिष्टे
 सिंहासन) के ऊपर रखते और प्रतिमाके पांख उपधान तर्कियाके ऊपर रखते ॥ ७ ॥
 पाकर, पीपल, गूडर, सिरस और घड इन वृक्षोंके पत्रोंका कपायजल कुशाकी
 आदि लेकर मंगल नामवाली जपा, पुनर्नवा, विष्णुराता आदि औषधि ॥ ८ ॥
 हाथों और धूपकी उदकादी मृत्तिका, कमलपुक्त सरोवर्गोंकी मृत्तिका, संचगव्य
 सहित तीर्थोंके जल ॥ ९ ॥ सुवर्ण और रत्नपुक्त जल इन सबसे प्रतिमाको स्नान
 करावे, उसका निर पूर्वकी ओर परके स्थापन करे, उस समय भांति २ के तुलसी
 आदि घांते वज्रें, पुण्याहवाचन और वेदध्वनि ब्रह्मण करे ॥ १० ॥ उत्तम ब्राह्मण
 पूर्वादिशामें इन्द्रके मंत्र और अग्निर्कोणमें अग्निके मंत्र जर्गे, मजमान उन ब्राह्मणोंकी
 दक्षिणासे पूजा करे ॥ ११ ॥ जिस देवताकी प्रतिष्ठा काली हो उसमें मंत्रोंमें
 ब्राह्मण अग्निमें हवन करे, अग्निके शुभ अशुभ लक्षण हवने इन्द्रध्वजाध्यायमें कहे
 हैं ॥ १२ ॥ जो हवनके समय अग्नि धूमसे आकुल हो, उसकी जाला बाई और
 धूमती हो, बारंवार शब्द करे और उसमें चिनगारो उठे तो वह शुभ नहीं होता, हवन
 करनेवालेकी स्मृतिलोप हो जाय (मंत्र आदिका स्मरण न रहे) अथवा उसका
 प्रसर्पण हो अर्थात् जहां हवन करने पहले बैठा है वहांमें सरक जाय तो भी अशुभ
 है ॥ १३ ॥ प्रतिमाको स्नान कराव नये वस्त्र धारण कराव, भूषण अर्थात्
 अलङ्कृत कर, पुष्प और गंधसे उसकी पूजन कर उत्तम भांतिसे बिजो हुई
 शय्याके ऊपर उस प्रतिमाको प्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष स्थापन करे ॥ १४ ॥
 सोई हुई उस प्रतिमाका नृत्यगीतसादेव जागरणों करके इस प्रकार मलीभांति

अथ पण्डितमोऽध्यायः

प्रतिमाप्रतिष्ठापन.

दिशि सौम्यायां कुर्यादधिवासनमण्डपं बुधः प्राग्वा । तोरणचतुष्टयञ्च
 शस्तद्रुमपल्लवच्छत्रम् ॥ १ ॥ पूर्वं भागे चित्राः स्रजः पताकाश्च मण्डपस्योत्तराः ।
 आग्नेय्यां दिशि रिक्ताः कृष्णाः स्युर्याम्यनेकतयोः ॥ २ ॥ श्वेता दक्षिणतः
 वायव्यायां तु पाण्डुरा एव । चित्राश्चोत्तरार्धे पीताः पूर्वोत्तरे कार्याः ॥ ३ ॥
 आयुःश्रीबलजयदा दारुमयी मृण्मयी तथा प्रतिमा । लोकहिताय मणिमयी
 सौवर्णी पुष्टिदा भवति ॥ ४ ॥ रजतमयी कीर्तिकरी प्रजाविद्वद्धिं करोति वात्र-
 मयी । भूलाभं तु महान्तं शैली प्रतिमाऽथवा लिङ्गम् ॥ ५ ॥ शंखहता
 प्रतिमा प्रधानपुरुषं कुलं च घातयति । श्वभोगहता रोगान् उपद्रवांश्चाक्षय-
 कुरुते ॥ ६ ॥ मण्डपमध्ये स्थण्डिलमुपलिप्यास्तीर्ण्य सिकतयाऽथ कुण्डे ।

प्रतिष्ठा करनेवाला विद्वान् पूर्वदिशामें अधिवासन नामक प्रतिमाका संस्कार ।
 नेको मंडप बनावे, वह चारों दिशाओंमें चार तोरणोंसे युक्त हो और वृक्षोंके कटे-
 पत्रोंसे ढका हो ॥ १ ॥ उस मंडपकी पूर्वदिशामें पुष्पमाला और पताकादि
 णकी लगावे, आग्नेकोणमें लाल रंगकी, दक्षिण और नैऋतकोणमें कृष्णवर्ण ॥ २ ॥
 पश्चिममें श्वेत, वायव्यकोणमें पाण्डुर, उत्तरमें चित्रवर्ण और मंडपके ईशानकोण
 शोभाके लिये पीले रंगकी पुष्पमाला और पताका लगानी उचित है ॥ ३ ॥
 काठकी और मिट्टीकी देवप्रतिमा, आयुष, लक्ष्मी, वरु और जय देती है. मणि
 यनाई देवप्रतिमा लोगोंका हित करती है, सुवर्णकी प्रतिमा शरीरपुष्टि देती है ॥ ४ ॥
 चांदीकी कीर्ति करती है, तांबेकी संतानकी वृद्धि करती है. शिला अथवा पत्थ-
 णकी बनी प्रतिमा अथवा शिवालिंग बहुत भूमिका लाभ करते हैं ॥ ५ ॥
 वह प्रतिमा जिसके किसी अंगमें कील जैसा खड़ा रह जाय वह प्रतिमा मुला
 पुरुषका और वंशका नाश करती है और जिस प्रतिमामें गदा हो वह अनाथ
 रोग और अनेक प्रकारके उपद्रव करती है ॥ ६ ॥ अधिवासन मंडपके केंद्रमें
 स्थण्डिल बनाय उसको गोबर आदिसे लीपे, उसके ऊपर कलु रेत और कलु रेतके
 ऊपर कुश बिछाय प्रतिमाको उसकेऊपर मुला दे प्रतिमाका शिर मद्रासन (पद्म)

शस्तम् ॥ २१ ॥ सामान्यमिदं समासतो लोकानां हितदं मया कृतम् । अधि-
वासनसंनिवेशने सावित्रे पृथगेव विस्तरात् ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृता बृहत्सं० प्रतिष्ठापनं नाम पक्षिमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

अथैकपष्टितमोऽध्यायः ।

गोलक्षण.

पराशरः प्राह बृहद्व्याय गोलक्षणं यत्कियते ततोऽयम् । मया समाप्तः
शुभलक्षणास्ताः सर्वास्तथाप्यागमतोऽभिधास्ये ॥ १ ॥ साक्षाविलक्षणाद्व्यो
मूषकनयनाश्च न शुभदा गावः । प्रचलचिपिदविषाणाः करटाः स्तरसदृशवर्णाः
॥ २ ॥ दशसप्तचतुर्वन्त्यः प्रलम्बमुण्डानना विनतपृष्ठाः । ह्रस्वस्थूलर्मावा यव-
मध्या दारितरसुराश्च ॥ ३ ॥ श्यावातिदीर्घजिह्वा गुल्फरतितनुभिरतिबृहद्भिर्वा ।

स्वाति नक्षत्र हों, मंगलके मिवाय और चार हो, प्रतिष्ठा करनेवालेवर अनुकूल दिन
हो तो ऐसे समयमें देवताका स्थापन शुभ है ॥ २१ ॥ सर्वे देव साधारण प्रतिमा
प्रतिष्ठाविधान लोगोंको कष्टपूर्ण देनेवाला जो हमने संक्षेपसे कहा है, सूर्यप्रतिमावर
अधिवासन और प्रतिष्ठापनविधान विस्तारपूर्वक अलगही है अथवा मारिच
(सौरशास्त्र) में सब देवताओंका अधिवासन और प्रतिष्ठापन अलग २
विस्तारसे कहा है ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पक्षिमोक्षदेशोपपुरा-
दाबादवास्तव्यपण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकाया
पष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

पराशरमुनिने अपने शिष्य बृहद्व्याको जो गोलक्षण कहा है, उस ग्रन्थसे लेकर
हम संक्षेप करते हैं. सबही गौ शुभलक्षण होती हैं सभी शास्त्रसे उनके शुभ
अशुभ लक्षण करते हैं ॥ १ ॥ जिन गौओंकी आँखें आंशुओंसे भरी हों, गदगदी
हों और कर्तरी हों वह गौ शुभ नहीं होती, मूषकके समान नेत्रवाली भी शुभ नहीं,
जिनके सींग दिखते हों और चपटे हों वह गौ शुभ नहीं. काल्य और लाठ मिला
हुआ जिनका रंग हो और यथेके तुल्य जिनका रंग हो, वह गौभी शुभ नहीं होती
है ॥ २ ॥ जिनके श्रुतमें दस, सात या चार दाँव हों, जिनका मुँह लम्बा और
शुंड अर्थात् बिना सींगका हो, जिनकी पीठ ऊँची हुई हो, जिनकी गरदन छोटी

काले संस्थापनं कुर्यात् ॥ १५ ॥ अभ्यर्च्य कुसुमवस्त्रानुलेपनैः शंततू
 र्घोपैः । प्रादक्षिण्येन नयेदायतनस्य प्रयत्नेन ॥ १६ ॥ कृत्वा बलिः
 सम्पूज्य ब्राह्मणांश्च सभ्यांश्च । दत्त्वा हिरण्यशकलं विनिक्षिपेत्तिमि
 श्रमे ॥ १७ ॥ स्थापकदैवज्ञाद्विजसभ्यस्थपतन् विशेपतोऽभ्यर्च्य । कल्प
 प्राणी भवतीह परत्र च स्वर्गी ॥ १८ ॥ विष्णोर्भागवतान् मगांश्च सां
 शम्भोः सप्तस्माद्विजान् मातृणामपि मण्डलक्रमाविदो विभ्रांन्विदुर्मह
 शाक्यान् सर्वहितस्य शान्तमनसो नम्रान् जिनानां विदुर्यं यं देवमुपासि
 स्वविधिना तेस्तस्य कार्या क्रिया ॥ १९ ॥ उदगयने सितपक्षे शिशिरगत
 च जीववर्गस्थे । लघे स्थिरे स्थिरांशे सौम्यैर्धीधर्मकेन्द्रगतेः ॥ २० ॥ पारी
 चयसंस्थैर्ध्रुवमृदुद्वारतिष्पवायुदेवेषु । विकुजे दिनेऽनुकूले देवानां स्था

अधिवासन कर ज्योतिषीके बतलाये हुए शुभ मुहूर्तमें उसका स्थापन करे ॥ १५ ॥
 उस प्रतिमाको पुष्प, वस्त्र और चन्दनादि अनुलेपनोंसे पूजित कर अधिक
 मंडपसे उठाप प्रासादसे प्रदक्षिण हो यत्रपूर्वक गर्भगृहमें ले जावे उस समय ई
 सूर्य आदि बाजे बजाये जायें ॥ १६ ॥ वहां जाय बहुतसा बलि देकर ऋष
 और सभ्य अर्थात् उस समामें स्थित मनुष्योंका वस्त्र दाक्षिणा आदिसे पूजन
 पिंडिका (पीठ) के गढेमें सोनेका टुकड़ा डाल उसके ऊपर प्रतिमाको स्थापन करे ॥ १७ ॥
 स्थापक (प्रतिष्ठा करनेवाला), ज्योतिषी, ब्राह्मण, तभ्य (कर्तार) इन सब
 विशेष पूजन करे । इस भांति देवप्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष इस लोकमें कल्याण
 मागी होता है और परलोकमें स्वर्गवास पाता है ॥ १८ ॥ विष्णुकी प्रतिष्ठा भस्मा
 (रेष्णर) करे, सूर्यकी प्रतिष्ठा मग (शाकदीपके रहनेवाले ब्राह्मण) करे, शिवकी
 प्रतिष्ठा भस्म धारण करनेवाले ब्राह्मण करे, ब्राह्मी आदि मातृकाओंकी प्रतिष्ठा मंत्र
 कम अर्थात् उनके पूजनका विधान जाननेवाले ब्राह्मण करे, ब्रह्माकी प्रतिष्ठा रीति
 ब्रह्मण करे, गरुडिनकी अर्थात् बुद्धिकी प्रतिष्ठा शान्त विचाराले शास्त्र (रक्षा)
 करे, जिनकी प्रतिष्ठा नम्र (दिग्गंबरक्षणक) करे, जो मनुष्य जिन देवोंके
 उद्गम भक्त हों वे उन देवताकी प्रतिष्ठा आदि मय क्रिया स्वकल्याण विधानों से
 ॥ १९ ॥ उदगयन हो, शुद्धाक्ष हो, चन्द्रमा चंद्रस्यातिके पदसंगमें स्थित हो, नि
 कृष्ट और स्थिर नवांग हो, सौम्य ग्रह, पंचम, 'नम्र, लघु, चतुर्थ, सप्तम की
 दशम स्थानमें हो ॥ २० ॥ पापग्रह दुर्गाय, पत्र, दशम और पञ्चम स्थानों
 हो, दोनो उदग, गौरीजी, मृगशिरा, रेवती, विशा, अनुगधा, ध्रुव, इन्द्र

तनुहस्तोचभ्रवणाः सुकुक्षपः सप्तजंघाश्च ॥ १० ॥ आत्राप्रसंहनपुरा व्यूढोरस्का
 वृद्धत्कुरुयुक्ताः । स्निग्धशृङ्गानुत्त्वमोमाणस्ताम्रतलुश्च ॥ ११ ॥ तनुभू-
 स्पृग्वालपयो रक्तान्तविलोचना महोच्छासाः । सिंहस्कन्धस्तन्वलाकवम्लाः
 पूजिताः सुगताः ॥ १२ ॥ वामावर्तवामे दक्षिणपार्श्वे च दक्षिणार्श्वे । शुभदा
 सवन्त्यनङ्गुहो जंघाभिर्भ्रूणकनिष्ठाभिः ॥ १३ ॥ वैदूर्यमणिः कण्ठदुरेक्षणाः स्थूल-
 भ्रूवर्मणः । पार्श्वभिस्स्फुटिताभिः यस्ताः सर्वेऽपि भारवहाः ॥ १४ ॥
 घ्राणोद्देशे सवलिर्जिह्वामुखाः सितश्च दक्षिणतः । कमलोत्तललाक्षाभः सुवाला-
 धिर्वाजितुल्यजवः ॥ १५ ॥ लम्बैर्वृषणर्मणोदरश्च संक्षिप्तशंखणाक्रोडः । जेषो
 भाराघ्वसहो जवेऽश्वतुल्यश्च शस्तफलः ॥ १६ ॥ सितवर्णः विह्वाक्षस्ताम्र-

छोटे पतले और ऊंचे जिनके कान हों, सुन्दर पेट हो, सीधी जंघा हो ॥ १० ॥
 तांबेके वर्ण और मिले हुए खुर हों, छाती दृढ़ हो, बड़ा ककुद (धूरी) हो,
 स्निग्ध (चिकने) कोमल और तनु (पतले) जिनके त्वचा और रोम हों, तांबेके
 रंगके शरीर और सींग हों ॥ ११ ॥ पतला और भूमिको स्पर्श करनेवाली जिनकी
 पूँछ हो, जिनके नेत्रोंके अंत लाल हों, बड़ा श्वास लेनेवाले हों, सिंहकेते जिनके
 कंधे हों, पतला और छोटा जिनका गलबेल, सुन्दर जिनकी गति हो ऐसे वृषभ
 अच्छे होते हैं ॥ १२ ॥ जिनके वामभागमें बाईं ओर घूमे हुए आवर्त (मीरी)
 और दक्षिणभागमें दहिनी ओर घूमे हुए आवर्त और जिनकी जंघा भेदेकी जंघा-
 ओंके समान हों ऐसे बैल शुभ होते हैं ॥ १३ ॥ वैदूर्यमणिभी समान जिनके नेत्र
 हों, निवारीपुष्पके समान जिनके नेत्र हों अर्थात् नेत्रोंके बाहिर चारों ओर शुद्ध
 रेखा हों, जल बुद्बुदके समान जिनके नेत्र हों, जिनके नेत्र और शरीर स्थूल हों,
 छुरके पिछले भाग जिनके कूटे हुए न हों सो सब बैल शुभ होते हैं और भार
 उठा सकते हैं ॥ १४ ॥ जिस बैलकी नाकमें बलि पड़े, पिछावके तुल्य जिसका
 झुल हो, दहिना भाग जिसका श्वेत हो, कमल (नीलकमल) या लालके समान
 जिसकी कांति हो, अच्छी पूँछ हो, गमनमें घोड़ेवासा वेग हो ॥ १५ ॥ लम्बे
 वृषण हों, भेदेकासा पेट हो, वंक्षण (पिछली जंघा और वृषणोंका मध्यभाग)
 और मोड़ (मगली जंघाओंका मध्यभाग) जिसके संकुचित हों ऐसा बैल भार
 उठानेमें और मार्ग चलनेमें समर्थ होता है, घोड़ेकी बगलर जिसका वेग हो वह
 बल शुभही होता है ॥ १६ ॥ जिस बैलका श्वेत वर्ण हो, तांबेके रंगके सींग

अथ पंचषष्टितमोऽध्यायः ।

छागलक्षण.

छागशुभाशुभलक्षणमभिधास्ये नवदशाष्टरन्तास्ते । धन्याः स्थाप्या वेश्मनि
 त्पाज्याः सप्तदन्ता ये ॥ १ ॥ दक्षिणपार्श्वे मण्डलमसितं शुक्लस्य शुभफलं
 ॥ २ ॥ कृष्णनिभकृष्णलोहितवर्णानां श्वेतमपि शुभदम् ॥ ३ ॥ स्तनयदवलम्बते
 कण्ठेऽज्ञानां मणिः स वित्तेयः । एकमणिः शुभफलकृद्बन्धतमा द्विप्रिमणयो
 ॥ ४ ॥ मुण्डाः सर्वे शुभदाः सर्वसिताः सर्वकृष्णदेहाश्च । अर्धासिताः सिता-
 धन्याः कपिलार्धकृष्णाश्च ॥ ५ ॥ विचरति यूथस्यामे प्रथमं चाऽम्भोऽर-
 हिते योऽजः । स शुभः सितमूर्धा वा मूर्धनि वा कचिका यस्य ॥ ६ ॥ सपू-
 कण्ठशिरा वा तिलपिष्टनिभश्च ताम्रदक् शस्तः । कृष्णचरणः सितो वा

अथ पञ्चषष्टिः शुभ अशुभ लक्षण कहते हैं, जिनके नौ या दस या आठ दाँत
 वह छाग शुभ होते हैं और घासमें रखने चाहिये, जिनके सात दाँत हों उनको न
 ले कारण कि वे अशुभ होते हैं ॥ १ ॥ श्वेत रंग के छाग के दाँतों में पार्श्वों
 में मंडल हो तो शुभ होता है, जिस छाग का रंग कृष्णमृग के तुल्य नीला, काला
 या लाल हो तो उसके दक्षिण पार्श्वों में श्वेतमण्डलभी शुभ होता है ॥ २ ॥
 गौ के गले में जो स्तनरी भाँति लटकता है उसे मणि कहते हैं, जिस छाग के एक
 ग हो वह शुभ फल फरता है और जिसके दो अथवा तीन मणि हों वे छाग तो
 तभी शुभ होते हैं ॥ ३ ॥ बिना सींग के सब छाग शुभ होते हैं, जिनका सब शरीर
 ही अथवा सब शरीर कृष्ण हो वे छाग शुभ होते हैं, जो छाग आधे काले और
 वे श्वेत हों वे शुभ होते हैं, जो छाग आधे कृष्ण और आधे कृष्ण हों वे भी
 होते हैं ॥ ४ ॥ जो छाग अपने पूँथ के आगे चले और सबसे पहले अङ्गुली
 शुभ होता है या जिसका शिर श्वेत हो अथवा जिसके शिर में कृष्ण रंग नलकरी
 से दीया हो अर्थात् छः बिन्दु हों वह शुभ होता है ऐसे छाग का नाम उडुट
 ॥ ५ ॥ जिसके कंठ और शिर में दूसरे रंग के बिन्दु हों, तिलपिष्ट के समान कपड़
 से श्वेत और पीत मिठा दूधा जिसका रंग और तारे के रंग के तुल्य जिसके कंठ नेत्र
 नीले वर शुभ होता है, जिसके शरीर का रंग श्वेत हो और चारों पैर काले हों अथवा

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

कूर्मलक्षण.

रुद्रादिकरजतवर्णो नीलराजीविचित्रः कलशसदृशमूर्तिभारुवंशश्च कूर्मः ।
 अरुणसमवपुर्वा सर्पपाकारचित्रः सकलनृपमहत्त्वं मन्दिरस्थः करोति ॥ १ ॥
 अञ्जनतृङ्गश्यामतनुर्वा बिन्दुविचित्रोऽव्यङ्गशरीरः । सर्पशिरा वा स्यूतजो
 यः सोऽपि नृपाणां राष्ट्रविबुद्धये ॥ २ ॥ वैदूर्यत्विद् स्थूलकण्ठस्त्रिभुजो
 गूढच्छिद्रभारुवंशश्च शस्तः । क्रीडावाप्यां तोयपूर्णं मणी वा कार्या कूर्मो
 मङ्गलार्थं नरेन्द्रः ॥ ३ ॥

इति श्रीबाराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कूर्मलक्षणं
 नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

सुन्दर हो ऐसी कुडुआ राजाओंको चिरकालतक लक्ष्मी, यश, विजय, वर
 सम्पादि देती है ॥ ३ ॥

इति श्रीबाराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशोपगु-
 दावादाशस्तभ्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां
 त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

जो कुडुआ रुद्रादिक अथवा चांदीके तुल्य शुद्ध वर्ण हो और नीली रेशमें
 चित्रित हो, कलशके समान जिसका आकार हो, सुन्दर जिसका
 (पीठकी हड्डी) हो अथवा लाल रंगका कुडुआ हो और सरसोंके सिन्धुके
 चित्रित हो ऐसा कूर्म घामें स्थित हो तो सब राजाओंमें यशार्थ करता है ॥ १ ॥
 अञ्जन या भ्रमरके तुल्य जिस कूर्मका श्याम शरीर हो और बिन्दुके
 चित्रित हो, तम्पूरुग अंग पूर्ण हो, सर्पके समान जिसका शिर हो और मन्त्र
 हो ऐसा कूर्म राजाओंका राज्य बढ़ानेके लिये होता है ॥ २ ॥ वैदूर्यमणिके मण
 जिस कुडुआकी कानि हो, कंठ स्थूल हो, त्रिशूण आकार हो, राव छिद्र उसके हो
 हो और पृथ्वीसुन्दर हो ऐसे कूर्मको मंगलके लिये राजा अपनी कीर्ति
 अथवा जलमें भी बड़े मटेमें रखे ॥ ३ ॥

इति श्रीबाराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशोपगु-
 दावादाशस्तभ्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां
 चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

तनयो लिङ्गे शिरासन्तते स्थूलग्रन्थियुते सुखी मृदु करोत्यन्तं प्रमेहादिभिः
॥ ७ ॥ कोपनिगूढेर्भूया दीर्घर्भग्रैश्च वित्तपरिहीनाः । अजुवृत्तशोफसो लघुशिरा-
लशिश्नाश्च धनवन्तः ॥ ८ ॥ जलमृत्युरेकवृषणो विषमैः घ्नीलंपटः समैः क्षि-
तिपः । ह्रस्वायुधोद्वेजैः प्रलम्बवृषणस्य शतमायुः ॥ ९ ॥ रक्तेराट्वा मणि-
भिर्निर्व्याः पाण्डुरैश्च मलिनैश्च । सुखिनः सशब्दमूत्रा निःस्वा निःशब्दधाराश्च
॥ १० ॥ द्वित्रिचतुर्धाराभिः प्रदक्षिणावर्तवलितमूत्राभिः । पृथ्वीपतयो ज्ञेया
विकीर्णमूत्राश्च धनहीनाः ॥ ११ ॥ एकैव मूत्रधारा वलिता रूपप्रधानसुत-
दात्री । स्निग्धोन्नतसममणयो धनवनितारजभोक्ताः ॥ १२ ॥ मणिभिश्च
मध्यनिघ्नैः कन्यापितरो भवन्ति निःस्वाश्च । बहुपशुभाजो मध्योन्नतैश्च नात्यु-

त्तौ पुत्रवान् होता है, जिसका लिंग नीचेको बहुत मुका हो वह दाखी होता है।
नादियोंसे व्याप्त लिंग हो तो वह पुरुष अल्पपुत्रवाला होता है अर्थात् उसके
छोटे पुत्र होते हैं। स्थूल ग्रन्थिसे युक्त जिसका लिंग हो वह सुखी होता है, मृदु
लिंगवाला पुरुष प्रमेह आदि रोगोंसे मरता है ॥ ७ ॥ कोश (चर्मकी पैलीसी)
में जिनका लिंग निगूढ़ हो वे राजा होते हैं; दीर्घ और दूढ़े हुए लिंगवाले धन-
हीन होते हैं, सीधे और गोल व छोटे या नादियोंसे व्याप्त लिंगवाले पुरुष धन-
वान् होते हैं ॥ ८ ॥ एकही वृषणवाला पुरुष जलमें डूबकर मरता है, विषम
(छोटे बड़े) वृषण हों तो स्त्रीलंपट होता है, वृषण समान हों तो राजा होता है,
ऊपरको खींचे हुए वृषणवाला हो तो अल्पायुष होता है और जिस पुरुषके वृषण
ऊँचे हों उसका आयुष सौ वर्ष होता है ॥ ९ ॥ लिंगके अग्रभागको मणि कहते
हैं। लाल रंगकी मणिवाले पुरुष धनवान् होते हैं श्वेत और मलिन मणि हो तो
धनहीन होते हैं, मूत्र करनेके समय शब्द हों वे पुरुष सुखी होते हैं। शब्दरहित
जिनकी मूत्रधारा हो वे निर्धन होते हैं ॥ १० ॥ जिनके मूत्रकी धारा दो तीन
अथवा चार हों और दक्षिणावर्त करके वे धारा मूत्रकी गेरें तो वे पुरुष राजा
होते हैं। मूत्र करनेके समय जिसका मूत्र विलरता हो वे धनहीन होते हैं ॥ ११ ॥
एक धार मूत्रकी हो और वह वलित (वेष्टित) हो तो रूपवान् पुत्र देती है, जिन
पुरुषोंके मणि स्निग्ध, ऊँचे और समान हों वे पुरुष धन, श्री और रत्नोंकी भोग
करनेवाले होते हैं ॥ १२ ॥ जिनके मणि मध्यभागमें निघ्न हो वे कन्याओंके
पिता होते हैं अर्थात् उनके घरमें कन्याही जन्मती हैं और वे पुरुष निर्धनभी होते
हैं, जिनके मणि मध्यके ऊँचे हों वे बहुत पशुओंके स्वामी होते हैं। बहुत

दुःखप्रदौ । मार्गायोत्कटकौ कपायसदृशौ वंशस्य विच्छिन्तिदौ महौ ॥
 पकमृद्ध्युतितलौ पीतावगम्यारतौ ॥ ३ ॥ प्रविरलतनुरोमवृचजङ्घादिरस्य
 तिमैर्धरोरुभिश्च । उपचितसमजानवश्च भूपा धनराहिताः स्वशृगालतुल्यम
 ॥ ४ ॥ रोमैकेकं कूपके पार्थिवानां द्वे ज्ञेये पाण्डितश्रोत्रियाणाम् । मांस
 निःस्वा मानवा दुःखभाजः केशाभैवं निन्दिता भूजिताश्च ॥ ५ ॥ निपांस्य
 म्रियते प्रधासे सौभाग्यमल्पैर्विकटैर्दारिद्र्यः । स्त्रीनिर्जिताश्चापि भवन्ति
 राज्यं समांसेश्च महाविरायुः ॥ ६ ॥ लिङ्गेऽल्पे धनवानपत्यराहितः स्थूले लिङ्गे
 धनैर्मद्वे वामनते सुतार्थराहितो वकेऽन्यथा पुत्रवान् । दारिद्र्यं विनते तपोऽन्यथा

आगेसे चौड़े, श्वेतरंगके नखोंसे युक्त, टेढ़े, नाडियोंसे व्याप्त, सूखे और
 अंगुलियोंवाले चरण हों तो दारिद्र और दुःख देते हैं। मध्यसे जंच मेंडकसे
 चरण हों तो सदा मार्गमें चलाते हैं। कपायरंग (थोड़ेसे लाल) के चरण हों
 वंशका विच्छेद करते अर्थात् जिस पुरुषके कपाय रंगके चरण हों उसका
 नहीं चलाता। परिपक्व (अग्रिमें पकी हुई) मृत्तिकाके तुल्य जिसके पाद
 कांते हो वह पुरुष मज्जहत्या करता है और पीले रंगके चरणवाला पुरुष
 श्रीमें आसक्त होता है ॥ ३ ॥ विरल और सूक्ष्म रोमोंवाला, गोल हाथीकी
 समान मुन्दर ऊरुवाला, मांसयुक्त और समान जानुवाला यह सब छायाओंवाला
 होता है। श्वान और शृगालके तुल्य जिनकी जंघा हो वे धनहीन होते हैं ॥ ४ ॥
 जिनकी जंघाओंके रोमकुण्डोंमें एक २ रोम हो वह राजा होते हैं, जिनके
 रोमकुण्डोंमें दो दो रोम हों वह पाण्डित और श्रोत्रिय होते हैं, जिनके एक २ के
 कूपमें तीन २ चार २ आदि रोम हों वे मनुष्य निर्धन और दुःखी
 होंगे नस्तकके केशोंसमीं गुन अशुभ फल जाने ॥ ५ ॥ निपांस्य मानुष
 न हो वह पुरुष मयासमें मरता है, छोटे जानुवाला गौमागी होता है।
 छोटे दंतियों होने हैं, जिनके जानु निम्न (नीचे) हों वह पुरुष
 हैं, मांसयुक्त जानुवालेको गम्य मिलता है और पड़े जानु जिन
 हों वे दीर्घायु पाते हैं ॥ ६ ॥ छोटे डिगवाला पुरुष धनराज और
 नष्ट होता है। स्थूल डिगवाला धनहीन होता है। निपांस्य जो
 दुःख हो वह पुरुष धन और पुत्रोंमें रहित होता है। दाहिनी ओर

ठिनाः स्युर्मानवा विषमकुक्षाः । तर्पेदरा दरिद्रा भवन्ति बद्धाशिनश्चैव
 २० ॥ परिमण्डलोन्नताभिर्विस्तीर्णाभिश्च नाभिभिः सुखिनः । स्यत्वा त्वद-
 पनिम्ना नाभिः क्लेशावहा भवति ॥ २१ ॥ बलिमध्यगता विषमा शूलावाधं
 रोजि नैःस्व्यं च । शाठ्यं वामावर्ता करोति मेधां प्रदक्षिणतः ॥ २२ ॥
 श्वायता चिरायुपसुपारिष्टाच्चेश्वरं गवाढ्यमधः । शतपत्रकर्णिकात्रा नाभिर्मनु-
 श्वरं कुरुते ॥ २३ ॥ शस्त्रान्तं सीभोगिनमाचार्यं बहुसुतं यथासंख्यम् ।
 कद्वित्रिचतुर्भिर्वलिभिर्विद्यान्तृपं त्वबलिम् ॥ २४ ॥ विषमबलयो मनुष्या
 भवन्त्यगम्याभिगाभिनः पापाः । ऋजुबलयः सुःप्रभाजः परदारद्वेषिणश्चैव
 ॥ २५ ॥ मांसलमृदुभिः पार्श्वैः प्रदक्षिणावर्तरोमभिर्भूपाः । विपरीतैर्निर्द्रव्याः
 सुखपरिहीनाः परमेष्ठ्याः ॥ २६ ॥ सुभगा भवन्त्यनुद्वज्जुचुका निर्धना विषम-

हुत लम्बा हो वे पुरुष दरिद्रा होते हैं और बहुत भोगन करते हैं ॥ २० ॥
 गोल, ऊंची और विस्तीर्ण नाभिवाले सुखी होते हैं, छोटी अदृश्य (न देख पड़े)
 और अनिम्न अर्थात् गहरी न हो ऐसी नाभि दुःखदायक होती है ॥ २१ ॥
 जेसकी नाभि पेटकी बलिके बीच आवे और विषम हो, वह पुरुष शूलोपर चढ़ाया
 जाता है और निर्धनभी होता है, वामावर्त जिसकी नाभि हो वह पुरुष शठ होता
 है, दक्षिणावर्त नाभि हो तो उसकी उत्तम बुद्धि हो, दोनों ओर लम्बी नाभि
 हीर्यायुष करती है, ऊपरकी नाभि दीर्घ हो तो ऐश्वर्ययुक्त पुरुषको करता है,
 सीधेकी लम्बी हो तो बहुत भोगोंसे युक्त करती है, कमलकी कर्णिकके तुल्य
 नाभि हो तो पुरुषको राजा करती है ॥ २२ ॥ २३ ॥ उदरके मध्यमें जो रेखा हो
 इनको बलि कहते हैं, जिस पुरुषको एक बलि हो उसकी भृत्य दससे होती है,
 दो बलि हो तो वह पुरुष बहुत धियोंसे भोग करनेवाला होता है, तीन बलि हो तो
 आचार्य (उपदेशकर्त्ता) होता है और चार बलि जिस पुरुषके उदरमें हो उसके
 बहुत पुत्र होते हैं, जिसका उदर बलिसहित हो वह राजा होता है ॥ २४ ॥ जिनके
 उदरमें कोई छोटी कोई बड़ी बलि हो वह पुरुष अशुभ्या रोगोंमें गमन करते हैं,
 जिनके उदरमें सीधी बलि हो वे सुखी और परस्त्रीसे विमुख होते हैं ॥ २५ ॥
 मांसद्वारा पुष्ट बाल और दक्षिणावर्त रोगोंसे युक्त जिनके पार्श्व हो वे पुरुष राजा
 होते हैं और मांससे हीन बटोर और वामावर्त रोगोंसे युक्त जिनके पार्श्व हो वे
 निर्धन मुखसे हीन और दूसरे पुरुषोंके दास होते हैं ॥ २६ ॥ रत्नके अन्नमांसको
 सूचक कहते हैं, जिनके सूचक ऊपरकी रीति नहीं हो वे पुरुष मुन्य होते हैं,

न्वर्णैर्निनः ॥ १३ ॥ परिशुष्कवस्तिशीर्षा धनरहिता दुर्भगाश्च विज्ञेयः
 कुसुमसमगंधशुक्रा विज्ञातव्या महीपालाः ॥ १४ ॥ मधुगन्धे बहुविज्ञा स्तः
 सगन्धे बहून्यपत्यानि । तनुशुक्रः स्त्रीजनको मांससगन्धो महामोगी ॥ १५ ॥
 मदिरागन्धे यज्वा क्षारसगन्धे च रेतसि दरिद्रः । शीघ्रं मैथुनगामी शीर्षाशुक्रो
 न्यथाल्पायुः ॥ १६ ॥ निःस्वोऽतिस्थूलस्फिक् समांसलस्फिक् सुस्तानि
 भवति । व्याघ्रान्तोऽध्यर्धस्फिग्मण्डूकस्फिग्मराधिपतिः ॥ १७ ॥ सिंहकर्मि
 जेन्द्रः कपिकरजकटिर्धनैः परित्यक्तः । समजठरा भोगयुता घटपिठरनिभोर
 निःस्वाः ॥ १८ ॥ अधिकलपाश्वा धनिनो निर्वैर्वकैश्च भोगसन्त्यक्ताः । क
 कुक्ष्या भोगाढ्या निम्नाजिर्भोगपरिहीनाः ॥ १९ ॥ उन्नतकुक्षाः शिरीष

स्थूल जिनके मणि न हों वे धनी होते हैं ॥ १३ ॥ लिंग और नाभिके मन्
 रको वस्ति कहते हैं, जिनके वस्तिका उपरिभाग मांसराहित हो वे पुरुष ध
 हीन और सब मनुष्योंके श्रेष्ठ होते हैं, पुष्पके समान सुगन्धित शरीर
 राजा होते हैं ॥ १४ ॥ शहतके समान गंध वीर्यमें हो तो बहुत ध
 वान् हो, मत्स्यांके समान गंध वीर्यमें हो तो बहुत संतान हो, घोडा वीर्य
 तो कन्याओंका पिता हो, मांसके समान गंध वीर्यमें हो तो महामोगी हो ॥ १५ ॥
 मद्यके समान गंध वीर्यमें आती हो तो पुरुष यज्ञ करनेवाला हो, तारके तुल्य
 वीर्यमें आती हो तो पुरुष दरिद्री हो, शीघ्रही जो पुरुष मैथुन करे वह शीघ्र
 होता है और जो पुरुष बहुत काल पर्यंत मैथुन करे वह अरुणायुष होता है ॥ १६ ॥
 जिस पुरुषके स्फिक् (कटिस्थ मांसपिण्ड) अति मोटे हों वह निर्धन होता है
 सुन्दर मांसयुक्त स्फिक्वाला सुखी होता है, जिस पुरुषके उमोटे हों उसको
 मारना है, मेंढरके समान जिसके स्फिक् हों वह पुरुष राजा होता है ॥ १७ ॥
 जिसके शरीर में मणि न हो वे धनी होते हैं, वानर अथवा उष्ट्रके समान वरिष्ठ
 म ऊंचा और न नीचा) उदरवाला पुरुष मोगी होता है
 पेट हो तो वे पुरुष निर्धन होते हैं ॥ १८ ॥ धन
 कहते हैं, और उदरके मध्यमागरी कक्ष्या ध
 है, जिस वीर्य रेरे पार्श्व हो तो धनहीन
 पुरुष मोगी होने है, निम्न कक्ष्या हो तो मोगी
 कक्ष्या हो तो राजा होने है, शिपम (पादमाध) नि
 होने है, जिन पुरुषों का उदर पर्यंके उदर

सीस्यवीर्यवताम् ॥ ३४ ॥ करिकरसदृशी वृत्तावाजान्वलम्बिनौ समौ पीनौ ।
बाहू पृथिवीस्थानामधमानां रोमयौ ह्रस्वौ ॥ ३५ ॥ हस्तांगुलयो दीर्घाभिरा-
युषामवल्लिताश्च सुभगानाम् । मेधाविनां च सूक्ष्माभिपिटाः परकर्मनिरतानाम्
॥ ३६ ॥ स्थूलाभिर्धनरहिता बहिर्नतानिश्च शस्त्रनिर्याणाः । कपित्थशकरा
धनिनो व्याघ्रोपमपाणयः पाशाः ॥ ३७ ॥ मणिवन्धनैर्निगूढैर्दंष्ट्रैश्च सुश्लिष्टसन्धि-
भिर्भूषाः । ह्रीर्नैर्हस्तच्छेदः श्लथैः सशब्दैश्च निर्द्रव्याः ॥ ३८ ॥ पितृविचेन
विहीना ज्ञवन्ति निम्नेन करतलेन नराः । संवृत्तनिर्धनैर्धनिनः प्रोत्तानकराश्च
दातारः ॥ ३९ ॥ विषमैर्विषमा निःस्वाश्च करतलैरीश्वरास्तु लाक्षाभिः । पीतै-
रगम्यवानिताभिर्गामिनो निर्धना रुक्तेः ॥ ४० ॥ तुषसदृशनखाः क्लीबाभिपिटैः
स्तुटितैश्च वित्तसन्पक्ताः । कुनखविवर्णः परतर्कुकाश्च ताम्रिश्च भूपतयः ॥ ४१ ॥

सुरी और बली पुरुषोंके होते हैं ॥ ३४ ॥ हस्तोकी गुंडके समान, वर्तुळ, जानुतक
छंवे, सम, मोटे पैसे बाहु पृथ्वीपतियोंके होते हैं और निर्धनोंके रोमोंसे युक्त,
ह्रस्व होते हैं ॥ ३५ ॥ दीर्घायुवाले पुरुषोंकी अंगुली लम्बी होती है। सीधी
अंगुली भुमग पुरुषोंकी होती है। बुद्धिमानोंकी अंगुली पतली होती है। परसेवा
करनेवालोंकी अंगुली चपटी होती है ॥ ३६ ॥ मोटी अंगुली हो तो निर्धन होते
हैं, जिनकी अंगुली बाहरकी झुकी हो उनकी शस्त्रसे मृत्यु होती है। बंदरके तुल्य
हाथवाले धनवान् होते हैं। व्याघ्रके तुल्य हाथवाले पापी होते हैं ॥ ३७ ॥ हस्तके
मूलकी मणिवंध अर्थात् पट्टुवा कहते हैं। जिनके मणिवंध निगूढ दंड व सुश्लिष्ट
संधि हो वह राजा होते हैं, छोटे मणिवंध हो तो उनसे हाथ काटे जाते हैं, दीले
और शब्दसे युक्त जिनके मणिवंध हो वह निर्धन होते हैं ॥ ३८ ॥ जिनकी
हथेली निम्न (नीची) हो वह पिताके धनसे रहित होते हैं। सम, मोठ और निम्न
जिनकी हथेली हो वह धनवान् होते हैं। जिनकी छंची हथेली हो वह पुरुष दाता
होते हैं ॥ ३९ ॥ विषम हथेली जिनकी हो वह क्रूर और निर्धन होते हैं,
लाखके समान लाल रंगकी जिनकी हथेली हो वह ऐश्वर्यवान् होते हैं। पीले रंगकी
हथेलीवाले अगम्या स्त्रोमें गमन करते हैं, रूखी हथेलीवाले निर्धन होते हैं ॥ ४० ॥
तुषोंके समान रेखाओंसे युक्त जिनके नख हो वह नपुंसक होते हैं। चपटे
और हूटे जिनके नख हो वह निर्धन होते हैं। बुरे नखवाले और रंगने दीन नखवाले
पुरुष दूसरेकी बातमें तर्क करनेवाले होते हैं, तांबेके समान लाल रंगके जिनके

दीर्घैः । पीनोपचितनिमग्नैः क्षितेपतयभूचुकैः सुस्तिनः ॥ २७ ॥ इत्थं समुप-
 पृष्टु न वेपनं मांसलं च नृपतीनाम् । अधमानां विपरीतं स्वररोमचितं शिरातं च
 ॥ २८ ॥ समवक्षसोऽर्थवन्तः पीनैः शूरास्त्वकिञ्चनास्तनुभिः । विपनं रतो
 पेयां ते निःस्वाः शस्त्रनिधनाश्च ॥ २९ ॥ विपर्मविपमो जनुभिर्यविहीनोऽपि
 सन्धिपरिणद्धैः । उन्नतजनुर्भोगी निम्नैर्निःस्वोऽर्थवान् पीनैः ॥ ३० ॥ विस्ति-
 र्ग्रीवो निःस्वः शुष्का सरोरा च यस्य वा ग्रीवा । महिषग्रीवः शूरः शङ्खो
 वृषसमग्रीवः ॥ ३१ ॥ कम्बुग्रीवो राजा प्रलम्बकण्ठः प्रभक्षणो भवति । पञ्चम-
 प्रमरोमशमर्थवतामशुभदमतोऽन्यत् ॥ ३२ ॥ अस्वेदनर्पानोन्नतसुगन्धिसरो-
 ममंकुलाः कक्षाः । विज्ञातग्या धनिनामतोऽन्यथार्थैर्विहीतानाम् ॥ ३३ ॥
 निमांसी रोमचिती भग्नावली च निर्धनस्यांसी । विपुलाव्युच्छिन्नी सुस्थि-
 तिनके घुचरु छोटे बड़े और लम्बे हों वे निर्धन होते हैं, जिनके घुचरु बड़े हों
 और निमग्न अर्थात् ऊंचे न हो वे राजा होते हैं और सुली रहते हैं ॥ २७ ॥
 ऊंचा, विस्तारण, कंधे हीन और मांसल हृदय राजाओंका होता है और नीचे
 मुकुरा हुआ और कुरा हृदय अधम पुरुषोंका होता है, कठोर, रोमांसे युक्त और
 नाटियों करके व्याप्त हृदयभी अधमोंकाही होता है ॥ २८ ॥ न ऊंची न कंधे
 छातीगळे धनवान् होते हैं, छोटी छातीगळे पुरुषार्थसे हीन होते हैं, विपन गले
 गळे धनहीन होते हैं और शस्त्रसे उनका मृत्यु होता है ॥ २९ ॥ कंधोंके मोड़ोंसे
 जनु रहते हैं, विपम जनुगळा पुरुष शूर होता है, अस्थियोंकी संधिमें बड़े हों
 जनु ही तो धनहीन होता है, ऊंचे जनुगळा भोगी, निम्न जनु ही तो निर्धन
 पान जनु ही तो पुरुष धनवान् होता है ॥ ३० ॥ चपटी ग्रीवागळा पुरुष निर्धन
 होता है, मूर्ख और नाटियोंसे युक्त जिसकी ग्रीवा ही बहमी निर्धन होता है
 महिषके समान मरदन होय वह शूर वीर्य होता है, घुचके समान विपम हीन
 हो उलझी शस्त्रसे मृत्यु होता है ॥ ३१ ॥ शंखके तुल्य तीन रोमजोने हुए
 जिनकी ग्रीवा ही वह राजा होता है, जिसका रूठ लम्बा हो वह शूर होता है
 उन कोटका नहीं, कमर (टूटी हुई नहीं) और रोमांसे छवि पांड धनवान्
 होता है, मग्न और रोमांसे युक्त पांड निर्धनहीन होती है ॥ ३२ ॥ पंखोंके
 छवि, निम, ऊंचे, कुरंगयुक्त, गुम और ऐनयुक्त कक्षा (शीप) धनवान्
 होता है और इनके विरुद्ध कक्षा निर्धनहीन होती है ॥ ३३ ॥ नागदंते, शंख
 दंते, नर और ऊंचे कंधे निर्धनके होते हैं, विस्तारण कमर और कुरंग

त्रिकोणाभिः । अंगुष्ठमूलरेखाः पुत्राः स्युर्दारिकाः सूक्ष्माः ॥ ४९ ॥ रेखाः
 देशिनीगाः शतायुषां कल्पनीयमूनान्निः । छिन्नाभिर्द्रुमपतनं बहुरेखारेखिणो
 रेखाः ॥ ५० ॥ अतिरुशर्दार्धैश्चिबुकैर्निर्द्रव्या मांसलेर्धनोपेताः । बिम्बो-
 मरधकरधरेर्भूपास्तनुभिरस्वाः ॥ ५१ ॥ ओष्ठैः स्फुटितविस्रण्डितविवर्णरुक्षैश्च
 नपरित्यक्ताः । स्निग्धा घनाश्च दशनाः सुतीक्ष्णदंष्ट्राः समाश्च शुभाः ॥ ५२ ॥
 जिह्वा रक्ता दीर्घा श्लक्ष्णा सुसमा च भोगिनां ह्येषा । श्वेता रुष्णा परुषा निर्द्र-
 व्याणां तथा तालु ॥ ५३ ॥ वक्त्रं सौम्यं संवृतममलं श्लक्ष्णं समं च भूपानाम् ।
 विपरीतं क्लेशभुजां महामुखं दुर्भगाणां च ॥ ५४ ॥ स्त्रीमुखमनपत्यानां
 प्राग्व्यवतां मण्डलं परिज्ञेयम् । दीर्घं निर्द्रव्याणां भारुमुक्ताः पापकर्माणः ॥ ५५ ॥

आकरकी रेखा हो और त्रिकोण रेखा हो तो वे धर्म करते हैं। अंगुष्ठमूलकी रेखा
 संतानकी है, उनमें जितनी रेखा सूक्ष्म हों उतनी कन्या होती हैं, जितनी रेखा स्थूल
 हों उतने पुत्र होते हैं ॥ ४९ ॥ तर्जनी अंगुलीतक जिनकी रेखा पहुँचे वे स्त्री
 वक्त्र आयु पाते हैं। छोटी रेखा हो तो अनुमानसे आयु जाने, टूटी रेखा हाथमें
 हो तो धृक्से गिरे, जिनके हाथमें बहुत रेखा हों अथवा रेखा न हो वे निर्धन होते
 हैं ॥ ५० ॥ बहुत कृश और लंबी ठोड़ी हो तो निर्धन होते हैं, मांससे चिबुक पुष्ट
 हो तो धनवान् होते हैं, कट्टरीके समान रक्तवर्ण और अबक नीचेका ओष्ठ हो
 तो राजा होते हैं। छोटा अधर (नीचेका ओष्ठ) हो तो निर्धन होते हैं ॥ ५१ ॥
 फूटे हुए, खंडित, घुरे रंगके और रुखे ओष्ठ हों तो वे पुरुष धनहीन होते हैं।
 स्निग्ध, घन (गहरे), तीखी दाढ़ोंसे युक्त और समान दांत शुभ होते हैं ॥ ५२ ॥
 रक्तवर्ण, लंबी, श्लक्ष्ण और समान जीभ हो तो भोगी होते हैं। श्वेत, कृष्ण
 और रुखी जिह्वा हो तो धनहीन होते हैं। यही लक्षण तालुकाभी जाने ॥ ५३ ॥
 सौम्य, संवृत, निर्मल, श्लक्ष्ण और सम वक्त्र (चेहरा) राजाओंका होता है।
 इससे विरुद्ध अर्थात् असौम्य, असंवृत, अश्लक्ष्ण और विपन वक्त्र हेरा भोगने-
 वाले पुरुषोंका होता है, बहुत फैला हुआ मुख दुर्गम पुरुषोंका होता है ॥ ५४ ॥
 स्त्रीकासा मुख भिन्न पुरुषोंका हो वह संतानसे हीन होते हैं, गोल मुखवाले पुरुष
 नाठ होते हैं। लंबे मुखवाले धनहीन होते हैं। भयभीत दाँव पडे दाँव पारी होने

१ इस रेखाया त्रिभुज स्थान अनुपात करके जितने वर्गों में बँटती है उतने वर्गों में
 वह वृक्षसे गिरेगा ।

अंगुष्ठयवैराह्याः सुतवन्तोऽष्टमूलगैश्च यवैः । दीर्घांगुलिपराङ्गः ॥
 दीर्घांगुपरश्चैव ॥ ४२ ॥ स्निग्धा निम्ना रेखा धनिनां तद्व्यत्ययेन निःस्पन्द
 विरलांगुल्यो निःस्वा धनसञ्चयिनो धनागुलयः ॥ ४३ ॥ तिस्रो रेखा मन्त्र
 न्वनोत्थिताः करतलोपगा नृपतेः । मीनयुगाङ्कितपाणिर्नित्यं सञ्चरते धान्ये ॥
 ॥ ४४ ॥ वज्राकारा धनिनां विद्याभाजां तु मीनपुच्छानिभाः । शंखान्तरे
 विकाननाश्वदघोषमा नृपतेः ॥ ४५ ॥ कलशमृणालपताकाङ्कुशोन्मादि
 षन्ति निधिरालाः । दामनिभाभिश्चाह्व्याः स्वस्तिकरूपाभिरैश्वर्यम् ॥ ४६ ॥
 चक्रातिरश्वतोमरशक्तिधनुःकुन्तसन्निभा रेखाः । कुर्वन्ति चमूनायं धनम्
 सुन्दरलाकाराः ॥ ४७ ॥
 निम्नेन चैवाग्निहोत्रिणो ब्रह्म ॥ ४८ ॥

रेसानुनादं च । दीर्घायुषां प्रमुक्तं विज्ञेयं सहतं चैवं ॥ ६३ ॥
 नो रक्तान्तविलोचनाः त्रियोभाजः । मधुपिङ्गलैर्महार्था मार्जार-
 ताः ॥ ६४ ॥ हरिणाश्चा मण्डललोचनाश्च जिह्वैश्च लोचनैश्चोराः ।
 रेखा गजसदृशदृशश्चमूपतयः ॥ ६५ ॥ ऐश्वर्यं गम्भीरैर्नीलोत्प-
 लैर्विद्वांसः । अतिछण्णतारकाणामक्ष्णामुत्पादनं भवति ॥ ६६ ॥
 धूलदृशां श्यावाक्षाणां च भवति सौभाग्यम् । दीना दग्निःस्वानां
 पुटार्थमोगवताम् ॥ ६७ ॥ अभ्युन्नताभिरल्पायुषो विशालोन्नता-
 वनः । विषमभ्रवो दरिद्रा बालेन्दुनतभ्रवः सधनाः ॥ ६८ ॥ दीर्घा-
 र्थिनः खण्डाभिर्धनरहीनाः । मध्यविनतभ्रवो ये ते सक्ताः स्त्रीष्व-
 ॥ ६९ ॥ उन्नतत्रिपुलं शंसैर्धन्या निम्नैः सुतार्थसन्त्यक्ताः । विषमल-
 र्थिना धनवन्तोऽर्धेन्दुसदृशे ॥ ७० ॥ शुक्तिविशालैराचर्यता शिरास-

॥ इना ह्मादे अनुनाद करके युक्त प्रयुक्त (अतिदीर्घ) और संहत जो पुरुष
 दीर्घायु होते हैं ॥ ६३ ॥ कमलदलके तुल्य नेत्रवाले धनवान् होते हैं,
 प्रोके अंत लाल हों वे लक्ष्मीवान् होते हैं, शहतके तुल्य पिंगल रंगके
 बड़े धनवान् होते हैं, बिल्लीके तुल्य कुंजे नेत्र हों तो पापी होते हैं ॥ ६४ ॥
 तुल्य नेत्र हों और मोल नेत्र हों और जिह्वा (अचल) नेत्र जिसके हों वे
 होते हैं, भेगे नेत्र हों तो क्रूर होते हैं, हाथीके तुल्य नेत्र हों तो सेनापति होते हैं,
 ॥ गहरे नेत्र हों तो ऐश्वर्य होता है, नील कमलके समान कान्तिके नेत्र विद्वान्
 होते होते हैं, जिन नेत्रोंका तारा अति कृष्ण हो वे नेत्र उखाड़े जाते हैं ॥ ६५ ॥
 नेत्र हों तो राजाके मंत्री होते हैं, कपिश रंगके नेत्र हों तो सौभाग्य होता है,
 नेत्र दीन हों वह निर्धन होते हैं, स्निग्ध और बड़े नेत्रवाले धनवान् और
 होते हैं ॥ ६७ ॥ मध्यसे जिनकी भ्रू उंची हो वे अल्पायु होते हैं, बड़ी
 उंची भ्रू हो तो अतिमुखी होते हैं, छोड़ी बड़ी भ्रू हो तो दागिरी होते हैं,
 बंदरमाकी भांति जिनकी भ्रूकी भ्रू हो वे धनवान् होते हैं ॥ ६८ ॥ लम्बी
 परस्पर न मिली हुई जिनकी भ्रू हो वे धनवान् होते हैं, टूटी हुई भ्रू हो तो
 न होते हैं, मध्यसे जिनकी भ्रू न हो वे पुरुष अगम्य स्त्रियोंमें आसक्त
 हैं ॥ ६९ ॥ उंची और बड़ी कनपटी हों तो धनी होते हैं, निम्न शंख हो
 ने और धनसे हीन होते हैं, जिनका ललाट टेढ़ा हो वे निर्धन होते हैं, अर्ध-
 ने तुल्य जिनका ललाट हो वे धनवान् होते हैं ॥ ७० ॥ सीपके समान

चतुरश्रं धूर्तानां निम्नं वक्त्रं च तनयराहितानाम् । कृपणानामतिहस्तं कर्णं
भोगिनां कान्तम् ॥ ५६ ॥ अस्फुटिताग्रं स्निग्धं श्मश्रु शुभं मृदु च कर्णं
चैव । रक्तैः परुषैश्चौराः श्मश्रुतिरलम्ब्य विज्ञेयाः ॥ ५७ ॥ निर्मांसैः कर्णैः
पातमृत्यवश्चपटैः सुबहुभोगाः । कृपणाश्च ह्रस्वकर्णाः शंकुभ्रवणाभ्युदयः
॥ ५८ ॥ रोमशकर्णा दीर्घायुपस्तु धनभागिनो विपुलकर्णाः । कूराः शिखर-
क्ष्व्यालम्ब्यमांसलैः सुखिनः ॥ ५९ ॥ भोगी त्वनिम्नगण्डो मन्त्री सम्पूर्णनासपुष्प-
यः । सुखभाक् शुक्लपनासधिरजीवी शुष्कनासश्च ॥ ६० ॥ छिन्नादु-
यागम्यगामिनो दीर्घया तु सौभाग्यम् । आकुञ्चितया चौरः सीमृत्युः स्पा-
पिटनासः ॥ ६१ ॥ धनिनोऽग्रवक्त्रनासा दक्षिणवक्त्राः प्रभक्षणाः कूराः । कर्ण-
स्वल्गच्छिन्ना सुपुटा नासा सभाग्यानाम् ॥ ६२ ॥ धनिनां श्रुतं सकृद् वि-
द्वे ॥ ५५ ॥ धूर्तका मुख चौखुंदा होता है, निम्न मुख पुत्रहीन पुरुषों का होता
है, कंजूपों का मुख बहुत छोटा होता है, सम्पूर्ण और मनोहर जिनका मुख होता
है भोगी होते हैं ॥ ५६ ॥ जिनके बाल आगेसे फटे न हों, स्निग्ध हों, कोमल, लस-
वर्णात् मली भांति नीचेको झुकी हुई दाढ़ी हो तो शुभ है, लाल रंगकी कर्णों से
अल्प दाढ़ी जिनकी हो वे चोर होते हैं ॥ ५७ ॥ जिनके कर्ण मांसगदित मृ-
मृत्यु पापकर्ममें होती है, चपटे कानवाले बड़े भोगी होते हैं, छोटे कानवाले
होने हैं, शंकुके तुल्य आगेसे तीरे कर्णवाले सेनापाते होते हैं ॥ ५८ ॥ लम्बे
गुच्छ कर्ण हों तो दीर्घायु पाते हैं, बड़े कानवाले धनवान् होते हैं, नादिके
कानवाले हों तो वे पुरुष दूर होते हैं, लम्बे और मांससे पुष्ट कानवाले भोगी
हैं ॥ ५९ ॥ जिसके कर्णों ऊंचे हों वह भोगी होता है, मांससे पुष्ट जिसके
हों वह राजाका मंत्री होता है, शुरु (तोते) के समान जिसकी नासिका
भोगी होता है, मूली अर्थात् निर्मांस जिसकी नासिका होय वह दीर्घायु होता
है ॥ ६० ॥ जिसकी नासिका कटीसी दिखती दे वे अगम्या आसि मन्त्र-
राजे होने हैं, लम्बी नासिका हो तो सौभाग्य होता है, आकुञ्चित (अ-
र्थात् छोटी) नासिकवाला चोर होता है, चपटी नासिकवाला श्रीके
जाता है, आगेसे टेढ़ी जिनकी नासिका हो वे धनी होते हैं, दाहिनी
जिनकी नासिका हो वे धनी होते हैं, दाहिनी और टेढ़ी जिनकी नासिका
— और दूर रहते हैं, चौंधी छोटे छिन्नेसे गुच्छ सुन्दर पुरुषों का होता
होने हैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ एक बार छोटे वे धनवान् होते हैं

सत्पायुर्नूनाभिश्चान्तरे कल्प्यम् ॥ ७८ ॥ परिमण्डलेर्गवाद्याश्छत्राकारैः
 शिरोभिरवनीशाः । चिन्तिः पितृमातृघ्नाः करोदिशिरसां चिरान्मृत्युः ॥ ७९ ॥
 घटमूर्धा ध्यानरुचिर्दिमस्तकः पापकृद्धनेस्त्यक्तः । निघ्नं तु शिरो महतां बहु-
 निघ्नमनर्थदं भवति ॥ ८० ॥ एकैकभवेः स्निग्धः कृष्णैराकुञ्चितैराभिनायिः ।
 मृदुभिर्न चातिबहुभिः केशैः सुखभाग् नरेन्द्रो वा ॥ ८१ ॥ बहुमूलविषमक-
 पिला स्थूलस्फुटिताग्रपरुषहस्वाभ । अतिकुटिलाभ्यानिघनाभ मूर्धना विनही-
 नानाम् ॥ ८२ ॥ यद्यद्रात्रं रुक्षं मांसविहीनं शिराघनञ्च च । तत्तन्निष्टं शोकं
 विपरीतमनः शुभं सर्वम् ॥ ८३ ॥ त्रिष्टु विष्टुलो गम्भीराक्षिष्वेव पदुज्ज्वलस्तु-
 र्ह्रस्वः । सतसु रक्तो राजा पञ्चसु दीर्घश्च सूक्ष्मश्च ॥ ८४ ॥ उरो ललाटे
 वदनं च पुंसां विस्तीर्णमेतद्विषयं प्रशस्तम् । नाभिः स्वरः सन्त्यमिति परिष्टं
 हे. वामभागमें देवी रेखा हो ता चास वर्षकी आयु होती है छोटी रेखा हो नी बीच
 वर्षसेभी कम आयु होती है, म्यून रेखा अर्थात् एक दो रेखा हो भीभी बीचसे म्यूनही
 आयु होती है, इन रेखाओंमें मध्यमें कल्पना करके आयु जान लो. जैसा तीन रेखा
 होनेसे सौ वर्ष और चार रेखा होनेसे पिचानवें वर्षकी आयु कटना, साठे तीन रेखा होनेसे
 साठे सत्तानवें वर्ष आयुकी कल्पना करनी चादिये, ऐसेही औरभी जानो ॥ ७८ ॥
 गोळ शिर जिनका हो वह बहुत मायोसे युक्त होते हैं, छत्रके आकार ऊपरसे
 विस्तीर्ण शिर हो ती राजा होते हैं. घटके शिरके पुरुष माना पिनाकर बंध करने हैं,
 करोटके आकार जिनका शिर हो वे बहुत दिन जीते हैं ॥ ७९ ॥ घटके आकार
 जिनका शिर हो वह पापी और निर्धन होते हैं. निघ्न शिर जिनका हो वे मांसहित
 पुरुष होते हैं. परन्तु अतिनिघ्न हो ती अनर्थ करता है ॥ ८० ॥ एक रोम रूपमें एक २
 रोम उत्पन्न हो, कृष्ण, स्निग्ध, आकुञ्चित (जोड़ेसे कुटिल) अत्र जिनके, नदी घटे
 हुए, कोमल और बहुत घने नहीं ऐसे केश जिन मनुष्योंके हो वह सुखी होते हैं अपरा
 राजा होते हैं ॥ ८१ ॥ एक २ रोमरूपसे बहुतसे उत्पन्न हुए हो, कोई घटे, कोई छोटे,
 कपिल रंग, मोटे, आगेसे फटे हुए, रुखे, छोटे व बहुत कुटिल और बहुत घने केश
 निर्धनोके होते हैं ॥ ८२ ॥ जो जो अंगरूखा, मांससे दीन और नादियोंसे व्यग्र हो वह
 अंग अग्रिम होता और जो अंग स्निग्ध, पुष्ट और नादियोंसे रहित हो वह शुभ होता
 है ॥ ८३ ॥ जिसके अंग विस्तीर्ण हो, तीन अंग यंभीर हो छः अंग ऊँचे हो, चार
 अंग दृढ़ (छोटे) हो, सात अंग रत्नार्ण हो, पांच अंग दीर्घ हो और पांच अंग सूक्ष्म
 हो वह राजा होता है ॥ ८४ ॥ छाती, लक्ष्मट और वदन पर तीन अंग विस्तीर्ण

न्तैरधर्मरताः । उन्नतशिराभिराढ्याः स्वस्तिकवत्संस्थिताभिश्च ॥ ७१ ॥
 निम्नललाटा वधवन्धभागिनः क्रूरकर्मनिरताश्च । अशुभैश्च भूताः कृपा-
 स्थुः संवृत्तललाटाः ॥ ७२ ॥ रुदितमदीनमनश्च स्निग्धं च शुभावहं मनुष्या-
 गाम् । तृप्तं दीनं प्रचुराशु चैव न शुभप्रदं पुंसाम् ॥ ७३ ॥ हसितं भुवन-
 कम्पं सनिमीलितलोचनं च पापस्य । दुष्टस्य हसितमसकृद् सोन्मादराज-
 त्वान्ते ॥ ७४ ॥ तिस्रो रेखाः शतजीविनां ललाटायताः स्थिता यदि दा-
 चतसृभिरवनशित्वं नवतिभ्यायुः सप्तश्चाब्दा ॥ ७५ ॥ विच्छिन्नाभिभागन्य-
 मिनो नवतिरप्यरेखेण । केशान्तोपगताभी रेखाभिरशीतिवर्षायुः ॥ ७६ ॥
 पञ्चाभिरायुः सप्ततिरेकाग्रावस्थिताभिरपि षष्टिः । बहुरेखेण शतायं चत्वारि-
 शच्च वक्राभिः ॥ ७७ ॥ त्रिशद्भूलग्राभिर्विंशतिकभ्येव वामवक्राभिः । शुभार्ति-

विस्तीर्ण जिनके ललाट हों उनको आचार्यता होती है, नाडियोंसे व्याप्त जिनके
 ललाट हो वे अधर्म करनेमें तैयार रहते हैं. ललाटके बीच ऊंची नाडी हो वे
 स्वास्तिककी भांति स्थित हो वे पुरुष धनाढ्य होते हैं ॥ ७१ ॥ जिनके ऊपर
 निम्न हों वे वध और बन्धनके भागी होते हैं और क्रूर कर्म करनेमें तत्पर होते हैं.
 ऊंचे ललाट हों वे पुरुष राजा होते हैं. गोल ललाट होनेसे कृपाण होते हैं ॥ ७२ ॥
 दीनतासे हीन, अशुओंसे हीन और स्निग्ध रोदन (रोना) मनुष्योंको शुभ देने
 है. रुद्र, दीन और बहुत अशुओं करके युक्त रोदन पुरुषोंको शुभदाई नहीं करता है.
 इसनेके समय शरीर न काँगे तो इसना शुभ होता है, नेत्र भूंदकर इसनेकाडे को
 होते हैं. दोषयुक्त पुरुष बारंबार इसता है. इसनेके अंतमें बारंबार इसना शुभ
 युक्त पुरुषका लक्षण है ॥ ७४ ॥ ललाटमें लम्बी रेखा तीन हों तो पुरुष सप्त
 सप्त वर्ष होता है और चार रेखा ललाटमें हों तो राजा होता है और पचास वर्ष
 आयु होता है ॥ ७५ ॥ दूरी हुई रेखा ललाटमें हो तो पुरुष नवत्य वर्ष
 गमन करनेवाले होने हैं और नव्ये वर्ष उनका आयु होता है, ललाटमें पन्द्रह
 रेखा न हो तो नव्ये वर्ष आयु होता है, केशोंकी जहां ग्राहि हो उत
 केजान वही है. ललाटमें केशांतक रेखा पहुँची हो तो अस्सी वर्षकी आयु
 है ॥ ७६ ॥ पाँच रेखा ललाटमें हों तो सत्तर वर्षकी आयु होती है, सत्रह
 वर्ष की आयु होती है तो ग्राह्य वर्षकी आयु होती है. छः मात्र रेखा ललाटमें
 ललाटमें हो तो पचास वर्षकी आयु होती है, देशी रेखा ललाटमें हो तो
 वर्षकी आयु होती है ॥ ७७ ॥ भूय रेखा लग आय तो शीघ्र वर्षकी आयु

सर्वार्थसिद्धिजननी जननीव चाप्या छाया फलं तनुभृतां शुभमादधाति ॥ ९१ ॥
चण्डाधृप्या पद्मेहमाग्निवर्णा युक्ता तेजोविक्रमैः सप्रतापैः । आग्नेयीति प्राणिनां
स्याज्जयाय क्षिप्रं सिद्धिं वाञ्छितार्थस्य धत्ते ॥ ९२ ॥ मलिनरूपकृष्णा पाप-
गन्धानिलोत्था जनयति बधवन्धव्याध्यनयार्थनाशान् । स्फटिकसदृशरूपा
भाग्ययुक्तात्पुदारा निधिरिव गगनोत्था श्रेयसां स्वच्छवर्णा ॥ ९३ ॥ छायाः
क्रमेण कुजलाघ्यनिलाम्बरोत्थाः केचिद्वदन्ति दश ताव यथानुपूर्व्या ।
सूर्याब्जनाभपुरुहूतयमोदुपानां तुल्यास्तु लक्षणफलैरिति तत्समाप्तः ॥ ९४ ॥
इति मृजा ॥ करिवृषरथौघमेरीमृदङ्गसिंहाब्जनिस्वना भूपाः । गर्दभजर्जरत्न-
स्वराब्ध धनसौख्यसन्त्यक्ताः ॥ ९५ ॥ इति स्वरः ॥ सप्त भवन्ति च सारा

छता, मुख और अम्युदय करती है, सब कार्योंकी सिद्धि करनेवाली होती है और
माताकी मांति पुरुष आदि जीवोंको शुभ फल देती है ॥ ९१ ॥ अग्निकी छाया
(क्रोधशील) अधृप्या (जिसका कोई तिरस्कार न कर सके), कमल, मुवर्ण और
अग्निके तुल्य वर्ण, तेज, पराक्रम और प्रतापसे युक्त होती है, ऐसी अग्निकी
छाया जीवोंको जय देती है, शीघ्रही बांछित अर्थकी सिद्धि करती है ॥ ९२ ॥
वायुकी छाया मलीन, रूखी, काली और दुर्गन्धदार होती है, वह छाया मरण
बन्धन, रोग, अनप और धनका नाश करती है. आकाशकी छाया स्फटिकके
समान अति निर्मल होती है. वह छाया भाग्ययुक्त और अति उदार होती है
और कल्याणोंका मानो निधान होती है और स्वच्छ होती है ॥ ९३ ॥ क्रमसे
भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाशकी पांच छाया कहीं और गर्गादि
कोई मुनि दश छाया कहते हैं. उनके मतमें पांच छाया तो भूमि आदिकी
और पांच छाया सूर्य, विष्णु, इन्द्र, यम और चन्द्रकी हैं, परन्तु इन छायाओंके
लक्षण और फल भूमि आदिकी छायाओंके बराबरही है कारण हमने दश छायाका
संक्षेप करके पांच छाया रखी हैं, यह मृजा (पंचमहाभूतमयी छाया) का
लक्षण कहा है ॥ ९४ ॥ हाथी, घृष, रघसमूह, मेरी, मृदंग, सिंह और मेघके तुल्य
जिनका शब्द हो, वे भूष होते हैं. जर्जर और रूखा जिनका स्वर हो वे धन और
सुरसे दीन होते हैं. यह स्वरका लक्षण कहा ॥ ९५ ॥ मेघ (आस्थियोंके मोतरका
सेह), मज्जा (कपालके मोतरका सेह), त्वचा (चर्म), आस्थि, बीर्य, रुधिर
और मांस यह सात प्राणियाक शरीरमें सार होते हैं, अब संक्षेपसे इनका फल